₹ 30/-

साहित्य अमृत

RNI No. 62112/95

अक्तूबर 2024 • साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक • मासिक • पृष्ठ 84 • ISSN 2455-1171

साहित्य अमृत

आश्विन-कार्तिक, संवत्-२०८१ ❖ अक्तूबर २०२४ **मासिक**

वर्ष-३० ❖ अंक-०३ ❖ पृष्ठ ८४ | यू.जी.सी.-केयर लिस्ट में उल्लिखित | RNI No. 62112/95 | ISSN 2455-1171

संस्थापक संपादक

पं. विद्यानिवास मिश्र

निवर्तमान संपादक

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

संस्थापक संपादक (प्रबंध)

श्री श्यामसुंदर

प्रबंध संपादक

पीयूष कुमार

संपादक

लक्ष्मी शंकर वाजपेयी

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

उप संपादक

उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-०२

फोन : ०११-२३२८९७७७

०८४४८६१२२६९

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

शुल्क

एक अंक—₹ ३०

वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००

वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००

विदेश में

एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)

वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

साहित्य अमृत के बैंक खाते का विवरण

बैंक ऑफ इंडिया

खाता सं. : **600120110001052**

IFSC : **BKID0006001**

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी पीयूष कुमार द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं न्यू प्रिंट इंडिया प्रा.लि., ८/४-बी, साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया, साइट-IV, गाजियाबाद-२०१०१० द्वारा मुद्रित।

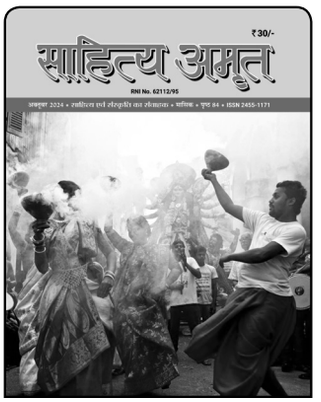

इस अंक में

✍ **संपादकीय**

कवि-सम्मेलनों की कविता ४

✍ **प्रतिस्मृति**

बोलने वाला बुत/ *आनंद प्रकाश जैन* ६

✍ **कहानी**

मुक्ति/ *भगवान अटलानी* १०

अंगुलिमाल/ *अमर नाथ* १६

संकल्प/ *अश्विनीकुमार दुबे* २६

कालचक्र/ *श्यामसुंदर मिश्र* ३६

नरक से वापसी/ *प्रिया राणा* ६०

✍ **लघुकथा**

पारिवारिक प्रवक्ता/ *सेवा सदन प्रसाद* ८

पितृ-शांति/ *मुकेश शर्मा* ३१

देशभक्ति/ *मोहम्मद तारिक असलम* ३५

बेटियाँ/ *मोहम्मद तारिक असलम* ५९

बार्गेनिंग/ *सेवा सदन प्रसाद* ७४

✍ **आलेख**

ओमशिला से ॐ लुप्त हुआ/ *प्रमोद भार्गव* १४

साहित्य अपने भीतर की दुनिया को स्पष्टता देने का माध्यम : निर्मल वर्मा/ *सदानंदप्रसाद गुप्त* २०

तुलसी की मानस एवं मानस के राम/ *अमन सिंह* २९

बुंदेलखंड में रामकथा/ *विभा नायक* ४०

लोकगीतों में प्रगतिशील तत्त्व/ *हरीश कुमार शर्मा* ४६

कला, संस्कृति और सिनेमा/ *विजय कुमार मिश्र* ६३

असम के चाय श्रमिकों के जीवन की संघर्ष गाथा : एक सांस्कृतिक मूल्यांकन/ *दीपिका दास* ६८

✍ **कविता**

चार गजलें/ *बालस्वरूप राही* ९

साँस फिर उदास है/ *कमलेश कुमार दीवान* १३

निहत्थी सड़कें/ *प्रमोद झा* १५

दो कविताएँ/ *रचना मीना* १८

सात गजलें/ *नरेश शांडिल्य* १९

हाइकु/ *सुषमा सहरावत* ५५

शरद ऋतु/ *माणक तुलसीराम गौड़* ७१

✍ **व्यंग्य**

गरीब क्या अमेरिका में नहीं ?/ *हरि जोशी* २५

✍ **ललित निबंध**

कहाँ चला गया मेरा भोला मन/ *सनत* ३२

✍ **राम झरोखे बैठ के**

लोहे-पत्थर की बस्ती में काँच के घर/ *गोपाल चतुर्वेदी* ४३

✍ **यात्रा-संस्मरण**

ऋष्यमूक पर्वत के आर-पार/ *पद्मावती* ५०

✍ **साहित्य का भारतीय परिपार्श्व**

महायान/ *एच.एस. वेंकटेशमूर्ति* ५६

✍ **साहित्य का विश्व परिपार्श्व**

सौ पत्ते-सौ साल/ *जॉन गल्सवर्थी* ६६

✍ **लोक-साहित्य**

बस्तर : लोक-जीवन का पर्व—ककसाड़/ *चुन्नीलाल* ७२

✍ **बाल-संसार**

करूँगा मैं भी खोज/ *लाल देवेंद्र कुमार श्रीवास्तव* ७५

खजाने की आय/ *तरुण कुमार दाधीच* ७६

✍ पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ७८

✍ वर्ग-पहेली ७९

✍ साहित्यिक गतिविधियाँ ८०

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

कवि-सम्मेलनों की कविता

पिछले दिनों सोशल मीडिया पर दशकों पहले दिल्ली में आयोजित एक कवि-सम्मेलन का पत्रक (पोस्टर) बहुत चर्चित हुआ। कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में महाकवि सुमित्रानंदन पंतजी का नाम है। अन्य ग्यारह कवियों में डॉ. भगवतीचरण वर्मा, सोहनलाल द्विवेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, शिवमंगल सिंह 'सुमन' सहित सारे नाम साहित्य-जगत् में प्रतिष्ठित एवं समादृत कवियों के हैं। देश के मूर्धन्य कवि जनता के समक्ष अपनी कविताएँ प्रस्तुत करें, यह कितना सुखद एवं श्रेष्ठ है। युवा पीढ़ी को कवि-सम्मेलनों का वर्तमान स्वरूप देखकर अवश्य ही अचरज होगा, किंतु पहले कवि-सम्मेलनों का स्वरूप ऐसा ही होता था। महाकवि निराला, महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, दिनकरजी जैसे कवि भी कवि-सम्मेलनों में जाते थे। श्रेष्ठ कविताओं की प्रस्तुति ही तब कवि-सम्मेलनों का एकमात्र लक्ष्य होता था। भारत की महान् वाचिक परंपरा का यह एक अत्यंत उज्ज्वल रूप था। कवि-सम्मेलनों का स्वरूप कैसे निरंतर परिवर्तित होता गया, यह अध्ययन का विषय है।

यह भी निर्विवाद है कि कवि-सम्मेलन कभी लोकरंजन का सर्वाधिक सशक्त माध्यम होते थे। पुराने दिनों में न रेडियो का प्रसार हुआ था, न ही टेलीविजन आया था, इसलिए लोकनाट्य, जैसे नौटंकी या धनुषयज्ञ लीला आदि कुछ ही आयोजन थे, जहाँ जनता जुटती थी। कवि-सम्मेलन का आयोजन अपेक्षाकृत आसान रहा है। उन दिनों किसी शहर या कस्बे में कवि-सम्मेलन हो तो आसपास के छोटे शहरों, कस्बों से लोग सिर्फ कवि-सम्मेलन सुनने आते थे। ये कवि-सम्मेलन प्राय: तीन चक्र में संपन्न होते थे। दो चक्रों के कवितापाठ के पश्चात् तीसरे चक्र में कुछ कवि अपनी चुनिंदा रचनाएँ सुनाते थे। धीरे-धीरे कवि-सम्मेलनों की लोकप्रियता बढ़ती गई तथा आयोजनों की संख्या भी बढ़ती गई। कवि-सम्मेलनों में गीतकारों, लोकगीतकारों, वीर रस के कवियों के साथ हास्यकवि भी शामिल होने लगे। तब इनकी भूमिका रस परिवर्तन के लिए उसी तरह होती थी, जैसे गंभीर हिंदी फिल्मों में हास्य कलाकार वातावरण की गंभीरता को सहज कर देते थे। कुछ बरसों बाद कवि-सम्मेलनों का आयोजन गैर-हिंदीभाषी प्रांतों में भी होने लगा तथा वहाँ की जनता की समझ के अनुरूप कविता भी आसान हुई, हास्य का प्रभाव बढ़ा। गैर-हिंदी प्रांतों में पारिश्रमिक भी बहुत बढ़ा और इस कारण कवि-सम्मेलनों में धन की भूमिका भी बढ़ने लगी। इस प्रकार कवि-सम्मेलनों का व्यावसायिक रूप प्रबल होता गया। आकाशवाणी केंद्रों की बढ़ती संख्या के साथ कवि-सम्मेलनों में श्रेष्ठ कवियों तथा श्रेष्ठ कविताओं को मंच प्रदान करने का दायित्व आकाशवाणी ने सँभाल लिया। कुछ साहित्यिक संस्थाओं ने भी कवि-सम्मेलनों में कविता के स्तर को बनाए रखने का प्रयास किया, लेकिन समय के साथ 'कवि-सम्मेलनों' का स्वरूप आमूलचूल बदल गया। वर्तमान समय में तो 'कवि-सम्मेलन' नाम भी सही सलामत नहीं बचा है। कभी कवि-सम्मेलनों के लिए 'अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन', 'राष्ट्रीय कवि-सम्मेलन', 'विराट् कवि-सम्मेलन' जैसे शब्द प्रयोग किए जाते थे, अब उन्हें प्राय: 'हास्य कवि-सम्मेलन' का नाम दिया जाता है और प्रमुखता भी तथाकथित हास्य कवियों को ही दी जाती है। औपचारिकता पूर्ति की तरह प्राय: एक-दो गीतकार तथा एक-दो कवयित्रियों को रख लिया जाता है, किंतु केंद्र में हास्य कविताएँ ही रहती हैं। हालाँकि यहाँ भी एक बहुत बड़ी समस्या रहती है! हास्यरस भी एक रस है तथा हास्य कविता का भी महत्त्व है, किंतु हास्य के नाम पर प्राय: चुटकुलों की बरसात की जाती है या फिर अनावश्यक किस्से परोसे जाते हैं। पुराने कवि-सम्मेलन की ओर लौटें तो आज इस बात की कल्पना भी कठिन है कि कोई मुख्यधारा का या साहित्य से जुड़ा कवि इस प्रकार के आज के कवि-सम्मेलनों में भाग ले सकेगा। कवि-सम्मेलनी कवि तथा कवि-सम्मेलनी कविता बिल्कुल अलग ही रूप ले चुकी हैं।

इस प्रसंग में वेनेजुएला में आयोजित विश्व कविता महोत्सव का स्मरण हो आता है। जब कोई विशाल आयोजन हुआ तो साथ में वाद्ययंत्रों का एक दल (आर्केस्ट्रा) रहता था, जो दो-तीन धुनें सुनाता था, फिर चार-पाँच देशों के कवि कविताएँ सुना देते थे। यही क्रम चलता रहता था।

यदि छोटे स्तर का आयोजन हुआ तो एक गिटारवादक यही कार्य करता था। वह एक-दो धुनें सुनाता, फिर कविताएँ हो जातीं। कुछ स्थानों पर नाट्य विधाओं का सहारा लिया गया अर्थात् सीधे-सीधे कविता पाठ की बजाय कविता को संगीत या नाट्य विधा का सहारा लेना पड़ा। दुनिया के दो सौ देशों में सिर्फ भारत है, जहाँ हजारों लोग रात-रात भर कविताएँ सुनते हैं।

इसीलिए भारत की इस वाचिक परंपरा का संरक्षण आवश्यक है। यह कितना विचित्र और विडंबनापूर्ण है कि जो कविता की गरिमा को क्षति पहुँचा रहे हैं, उसे प्रदूषित कर रहे हैं, वही मान-सम्मान पा रहे हैं। लोकप्रियता के कुचक्र के कारण टी.वी. चैनल इस प्रकार की कविताओं को बढ़ावा दे रहे हैं, जिनका उद्देश्य सस्ता मनोरंजन है।

यहाँ एक और पहलू पर भी ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। भारत के बाहर कई देशों में आयोजित होने वाले मुशायरों में हिंदी कवियों को भी आमंत्रित किया जाता है। जहाँ उर्दू से ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित शहरयार जैसे कवि या साहित्य अकादेमी सम्मान से सम्मानित निदा फाजली या अन्य कवि शामिल होते हैं, वहाँ हिंदी से वही लतीफे सुनाने वाले या सस्ती हास्य कविताएँ सुनाने वाले कवि हिंदी का प्रतिनिधित्व करते हैं। ऐसे में हिंदी और हिंदी कविता की क्या छवि बनती है, यह प्रश्न गहन विचार की माँग करता है। क्या १०० करोड़ लोगों की विराट् हिंदी की कविता इतनी सस्ती है! हिंदी कविता के सच्चे शुभचिंतकों, कविता-प्रेमियों को एक नई पहल करनी होगी तथा सच्ची कविता को जनता के मध्य ले जाना होगा। सिर्फ धन कमाने के उद्देश्य से कवि-सम्मेलनों में जमे तथाकथित कवियों से कवि-सम्मेलनों को मुक्त करना होगा। कवि-सम्मेलनों में सच्चे कवियों तथा कविताओं की वापसी देश एवं समाज, दोनों के लिए शुभ होगी।

प्रेरणा का अक्षय स्रोत

भारतीय सेना के कैप्टन अरुण जसरोटिया की तैनाती सेनाध्यक्ष की सुरक्षा में तय की गई थी। यह न केवल अत्यंत प्रतिष्ठा भरी पोस्टिंग थी वरन् राजधानी दिल्ली में सुविधा युक्त भी थी। लेकिन कैप्टन अरुण ने फरियाद की, उन्हें वहाँ तैनात कर दिया जाए, जहाँ उनकी यूनिट के साथी सरहद पर आतंकवादियों से जूझ रहे हैं। सेना उनकी प्रार्थना स्वीकार कर लेती है। कैप्टन सुविधाओं वाली पोस्टिंग छोड़कर सरहद पर पहुँच जाते हैं। कैप्टन अरुण को जिस अभियान का दायित्व सौंपा गया, उसे उन्होंने अदम्य साहस और पराक्रम से सफल बनाया तथा 'लोलाबघाटी' से आतंकवादियों का खात्मा कर दिया। इस अभियान के दौरान कैप्टन अरुण गंभीर रूप से घायल हुए तथा देश के लिए उन्होंने अपना सर्वोच्च बलिदान दे दिया। एक बार कैप्टन अरुण किसी ट्रेनिंग से लौट रहे थे। रास्ते में स्टेशन से मात्र २ किलोमीटर पर उनका घर था। माँ ने फोन पर कहा भी कि एक घंटे का ब्रेक ले लेते। लेकिन कैप्टन अरुण ने कहा कि ड्यूटी सर्वोपरि है माँ।

ऐसी ही कर्तव्यनिष्ठा, अटूट देशप्रेम, अदम्य साहस, वीरता, पराक्रम, धीरज और हिम्मत की गाथाएँ हैं सेना में उच्चाधिकारी (सेवानिवृत्त) की पत्नी एवं सुप्रसिद्ध लेखिका शशि पाधा की 'शौर्यगाथाएँ' नामक किताब में।

आम नागरिक सेना तथा सैन्य जीवन के विषय में बहुत कम ही जानकारी रखता है। आए दिन सरहद से वीर सपूतों की शहादत के समाचार मिलते हैं। इन वीर सपूतों के अंतिम संस्कार के दृश्य हम अवश्य टी.वी. चैनलों पर देख लेते हैं या गणतंत्र दिवस पर सम्मान की एक झलक माननीय राष्ट्रपति द्वारा वीरता अलंकरण प्रदान करने के समय बहुत थोड़ी सी झलक पा लेते हैं। सैनिकों तथा उनके परिवारों का पूरा जीवन कितनी चुनौतियों से जूझता है, हम सब नहीं जानते।

यह सुखद है कि हिंदी में अब ऐसी किताबें आई हैं, जो सैनिकों के जीवन की रोमांचक कहानियों से परिचित कराती हैं। सैनिकों के परिवारों के संघर्ष पर एक उपन्यास 'कितने मोरचे' आया, 'सैनिक पत्नियों की डायरी' नामक किताब आई। वर्तमान समय में जब समाज में तरह-तरह के अपराध, हिंसा, क्रूरता, संवेदनहीनता, अमानवीयता के समाचार हमारे सभ्य होने पर प्रश्नचिह्न खड़े कर रहे हैं, तो सैनिकों की शौर्यगाथाएँ हमें एक नए मनुष्य से परिचित कराती हैं।

वह मनुष्य जो देशप्रेम, अनुशासन, धैर्य, परिश्रम, त्याग, बलिदान परोपकार की साकार मूर्ति है। शौर्यगाथाओं का एक नायक लांस नायक रमेश खजूरिया एक अभियान में आतंकवादियों के ठिकाने नष्ट करके आता है तो पता चलता है कि एक साथी वहीं छूट गया।

रमेश पुनः साथी को खोजने जाते हैं, जहाँ छुपे हुए आतंकवादी के हमले से घायल हो जाते हैं, किंतु घायल अवस्था में भी अपने बेहोश साथी को सुरक्षित पहुँचा देते हैं और स्वयं दम तोड़ देते हैं। नायक जगपाल सिंह की दोनों आँखें तथा दोनों टाँगें आतंकवादी हमले में बेकार हो जाती हैं। वे जीवन के प्रति इसलिए निराश हैं कि नई-नई शादी करके आई उनकी पत्नी के लिए वे एक बोझ बन जाएँगे। लेकिन पत्नी कहती है कि उनका होना ही बहुमूल्य है, वे जैसे हैं, उसी रूप में स्वीकार्य हैं।

'शौर्यगाथाएँ' का एक प्रसंग अत्यंत हृदयविदारक है। एक युवा सैनिक अधिकारी मेजर राठौर अपने मित्र कैप्टन मलिक को लेकर शशिजी के घर आते हैं कि इनकी नई-नई शादी हुई है और इनका सरहद से बुलावा आ गया है तो हमने इनकी पत्नी को ५ दिसंबर को बुला लिया है कि वे कुछ दिन आपके घर रुक जाएँ तो कैप्टन मलिक कभी-कभार मिल लेंगे।

अचानक युद्ध शुरू हो जाता है और ५ दिसंबर को कैप्टन मलिक की पत्नी नहीं आ पातीं। मेजर राठौर से शशिजी को पता लगता है कि कैप्टन मलिक ४ दिसंबर को ही शहीद हो गए थे।

इन शौर्यगाथाओं में शहीदों के माता-पिता का धैर्य, उनका देशप्रेम, अपने दूसरे बेटे को या शहीद के बेटे को भी सेना में भेजने का संकल्प रोमांच पैदा कर देता है। आम लोग जरा सी असुविधा से परेशान हो जाते हैं, लेकिन हमारे वीर सैनिक रात-दिन तपते रेगिस्तान, दुर्गम बर्फीली चोटियों, दुरूह जंगलों आदि में डटे रहते हैं। इन वीर सैनिकों में एक प्रेम, करुणा, संवेदना से भरे मनुष्य का दिल धड़कता है। इनके भीतर भी तरह-तरह की प्रतिभाएँ तथा कलाएँ होती हैं, लेकिन देशप्रेम के यज्ञ में ये सबका बलिदान कर देते हैं। 'शौर्यगाथाएँ' की हर गाथा एक अनूठा रंग, अनूठा संदेश लिये हुए है। काश ये गाथाएँ युवा पीढ़ी तक पहुँचें, छात्र-छात्राओं तक पहुँचें। इन मार्मिक गाथाओं से निश्चय ही ऐसी प्रेरणा मिलेगी, जो कभी भी मानसपटल से मिट नहीं सकेगी। एक प्रेरक कथा किसी का जीवन बदलने में सक्षम होती है, शौर्यगाथाएँ की सत्रह प्रेरक गाथाएँ तो निश्चय ही युवा पीढ़ी को बदल देंगी।

(लक्ष्मी शंकर वाजपेयी)

बोलने वाला बुत

● आनंद प्रकाश जैन

श्री आनंद प्रकाश का जन्म उ.प्र. के मुजफ्फरनगर जनपद के कस्बा शाहपुर में १५ अगस्त, १९२७ को हुआ था। उनकी पहली कहानी 'जीवन नैया' सरसावा से प्रकाशित मासिक 'अनेकांत' में सन् १९४१ में प्रकाशित हुई थी। श्री जैन ने अनेक पत्र-पत्रिकाओं का कुशल संपादन किया। वे सन् १९५९ से १९७४ तक उस समय की प्रसिद्ध बाल पत्रिका 'पराग' के संपादक रहे। उन्होंने 'चंदर' उपनाम से अस्सी से अधिक रोमांचकारी उपन्यासों का लेखन किया। उन्होंने अनेक ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यास लिखे जिनमें प्रमुख हैं—'कठपुतली के धागे', 'तीसरा नेत्र', 'कुणाल की आँखें', 'पलकों की ढाल', 'आठवीं भाँवर', 'तन से लिपटी बेल', 'अंतर्मुखी', 'ताँबे के पैसे' तथा 'आग और फूस'। उन्हें अपने इस सामाजिक उपन्यास 'आग और फूस' पर उत्तर प्रदेश सरकार का श्लाघनीय पुरस्कार प्राप्त हुआ।

एक बार गुजरात के नहरवासा नगर पर राय जयसिंह का शासन स्थापित हुआ। राजा जयसिंह बड़ा न्यायप्रिय, प्रजावत्सल तथा बुद्धिमान शासक था, जिसने 'राय' की बड़ी पदवी धारण की थी। इसका कारण यही था कि वह अपने प्रदेश पर ही नहीं, अपनी प्रजा के मन पर भी एकच्छत्र शासन करता था और लोग उसे 'राय' कहकर खुश भी बहुत होते थे।

धीरे-धीरे उसकी प्रसिद्धि चारों दिशाओं में फैल गई। फैलते-फैलते एक द्रविड़ देश के सम्राट् की राजसभा में भी पहुँची। उसकी पदवी भी 'राय' के नाम से ही जानी जाती थी। द्रविड़ देश के राजा को इस पर बड़ा क्रोध आया। उसने तुरंत अपने कुछ राजदूत राजा जयसिंह के पास भेजे। उनके हाथों उसने यह संदेश भी भेजा—

''नहरवासा पर आज तक कोई 'राय' नहीं हुआ। यह केवल चोरों और लुटेरों की भूमि रही है। यहाँ पर क्या मरने और लुटने के लिए तुम 'राय' का बुत बन बैठे हो? तो तुम्हें सूचित किया जाता है कि यह खेल बड़ा खतरनाक है। हमारा संदेश पाते ही तुमने 'राय' की इस महत्त्वपूर्ण पदवी को अपने अपवित्र तन से अलग न किया, तो हमारे इतने अश्वारोही गुजरात के ऊपर चढ़ दौड़ेंगे और उनके अश्वों की तरनालों से गुजरात की पृथ्वी ही उलट जाएगी।''

दो-तीन दिन उन राजपूतों की ऐसी सेवा हुई कि वे अपने-आप को राजदूत न समझकर छोटे-मोटे राजा ही समझने लगे। तीन दिन बाद उन्हें राय जयसिंह की राजसभा में उपस्थित होने का निमंत्रण मिला। समय काटे न कट रहा था, इसलिए वे सहर्ष राजा जयसिंह की सभा में जा पहुँचे।

कुछ देर राजा जयसिंह सामान्य कामकाज निबटाते रहे। इसके बाद फरियादी के रूप में एक नर्तकी को राजसभा में प्रस्तुत किया गया।

नर्तकी का आरोप था कि पिछली रात को उसके घर एक रईसजादा आया था। उसने उसका नृत्य देखा, गाना सुना और रात भर उसके घर अतिथि बनकर रहने की प्रार्थना की। जब उसको अनुमति मिल गई और उसे सोने को जगह दे दी गई, तो नर्तकी भी विश्राम करने चली गई। फिर न जाने रात में किस समय उसने उठकर घर का सारा कीमती सामान समेटा और कूच कर गया। नर्तकी का आरोप था कि उसके लिए शहर कोतवाल उत्तरदायी है। उसे उसका चुराया हुआ धन वापस किया जाए तुरंत!

राय जयसिंह ने शहर कोतवाल को हाजिर होने का हुक्म दिया। जब उसके सामने राय जयसिंह ने नर्तकी का आरोप रखा और उसे आज्ञा दी कि वह नर्तकी के नुकसान की भरपाई स्वयं अपने धन से करे, तो वह चकराया। सिर झुकाकर बोला, ''राय जयसिंह की जय हो। यह सही है कि शहर में यदि कोई चोरी-डकैती हो, तो उसका पता लगाने की जिम्मेदारी इस दास की है। पता न लगने पर नुकसान की भरपाई भी मैं करने को तैयार हूँ। इसके लिए एक सप्ताह का अवसर दिया जाए।''

राजा ने कहा, ''किंतु यह नर्त्तकी अपने नुकसान की भरपाई तुरंत चाहती है। इसलिए तुम्हें भरपाई तुरंत करनी होगी।''

''महाराज,'' कोतवाल बोला, ''आपकी जो आज्ञा होगी, सेवक उसका पालन अवश्य करेगा। किंतु इतने विशाल गुजरात देश में किसके

मन में, किस समय, क्या पाप समा जाएगा और कौन क्या अपराध कर बैठेगा, यह सिवा अंतर्यामी के और कौन जान सकता है ? मैं पता लगाकर दंड की व्यवस्था करूँ, यही मेरी कुशलता और मेरा उत्तरदायित्व है। इसके लिए एक सप्ताह का समय कम-से-कम है। इसके बाद पता न लगा, तो दास रायजू की आज्ञा का पालन करेगा''

''नहीं,'' राजा जयसिंह ने द्रविड़राज के राजदूतों की ओर कनखियों से देखते हुए कहा। राजदूत भी चकित थे। देखती आँखों कोतवाल का तर्क एकदम उचित और संयत था। उन्होंने आश्चर्य से राय की ओर देखा। राय कोतवाल से कह रहा था, ''अपराध को रोकना, और अपराध हो जाने पर उसका पता लगाना, ये दोनों ही काम कोतवाल के हैं। प्रजा में से किसी के मन में, किसी भी समय अपराध की भावना आए, यह न केवल शहर कोतवाल के लिए लज्जा की बात है, बल्कि उस राज्य के लिए भी, जिसमें अपराध हुआ हो। इसलिए या तो तुरंत पता लगाओ—इसी समय, इसी दम—नहीं तो स्वयं हमें कष्ट करना होगा।''

यह सुनते ही कोतवाल मानो आसमान से गिरा और उसके साथ-साथ औंधे मुँह द्रविड़ राजपूत। नर्तकी और सारी राजसभा आँखें फाड़कर राय जयसिंह की ओर देखने लगी। जिस अपराध का पता अपने हजारों सिपाहियों की शक्ति से, सैकड़ों धुरंधर गुप्तचरों के प्रयत्न से भी कोतवाल 'तुरंत' नहीं लगा सकता था, उसका पता राय जयसिंह राजसिंहासन पर बैठे-बैठे कैसे लगा सकते थे ?

राय जयसिंह ने कहा, ''इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। इसका पता हम अपने हब्शी पुतले से लगा सकते हैं। उसे राजसभा में हमारे सामने लाया जाए।''

तुरंत राय के पीछे खड़े उनके विशेष सेवक दौड़े और एक काला आदमकद पुतला अपने कंधों पर उठाकर लाते नजर आए। वह काले संगमरमर का बना हुआ था। उसे उन्होंने राय जयसिंह के ठीक सामने रखा।

राय ने पुतले से पूछा, ''क्यों रे पुतले ! इस नर्तकी का धन कहाँ है ?''

कुछ देर तक वह पुतले की ओर देखते रहे, मानो उसकी बात ध्यान से सुन रहे हों। फिर संतोष से गरदन हिलाकर उन्होंने द्रविड राजदूतों से पूछा, ''आपने सुना, पुतले ने क्या कहा ?''

उन्होंने इनकार में सिर हिलाया। ''हमें तो कुछ सुनाई दिया नहीं।''

''तब आप लोगों को सुनाई देगा भी नहीं, क्योंकि आपकी भावना हमारे राज्य के प्रति पवित्र नहीं है। इन्होंने कहा है कि हनुमान मंदिर से सौ पग की दूरी पर जो अकेला अमरूद का पेड़ है, उसी की जड़ में सारा माल दबा हुआ है।''

सारी राजसभा में सन्नाटा छा गया। कोतवाल का इशारा पाते ही तुरंत उसके सैनिक दौड़ गए और एक घड़ी बीतते-न-बीतते उन्होंने आकर समाचार दिया कि पुतले का कहना सही था। सारा माल मिल गया है। इस बीच राय जयसिंह राजसभा का अन्य काम निबटाते रहे और पुतला वहीं खड़ा रहा।

नर्तकी ने राय जयसिंह का लाख-लाख धन्यवाद दिया, उन्हें प्रणाम किया और उनकी आज्ञा से अपना माल लेकर चली गई। राय ने कोतवाल की ओर हँसकर देखा। वह लज्जित होता हुआ बोला, ''महाराज, यह तो चमत्कार हो गया ! इतना और बता दीजिए कि वह चोर कौन है ?''

राय जयसिंह ने कहा, ''इसके लिए हमारे पुतले को कष्ट क्यों देते हो ? यह तुम्हारा कर्तव्य है और तुम उसका पता बड़ी आसानी से लगा सकते हो।''

''लगा तो सकता हूँ, महाराज, मगर अपने कर्तव्य-पालन में मुझे सबसे पहले उस व्यक्ति को पकड़ना होता है, जो माल की सूचना देता है। इसलिए अगर महाराज इस पुतले को गिरफ्तार करने की आज्ञा दें, तो मैं स्वयं पता लगा लूँगा।''

राय जयसिंह हँसकर बोले, ''अरे मूर्ख, हम इतने मामूली काम के लिए इस पुतले को कभी कष्ट नहीं देते। वह तो कहो, हम अपने इन अतिथियों का मनोरंजन करना चाहते थे, इसलिए इस छोटी सी बात का पता लगाने के लिए हमने अपने पुतले को सोते से जगाया। इस पुतले के द्वारा हम बड़ी-बड़ी जटिल राजकीय समस्याओं को सरल बनाते हैं। हम अभी पूछकर बताते हैं कि वह कंबख्त चोर कौन है'' और यह कहकर राय ने फिर पुतले की बात सुनने का यत्न किया। राज्यसभा स्तब्ध होकर देखती रही। राजा बोला—

''कोतवाल, इस नर्तकी के घर से साठ पग की दूरी पर एक जुलाहा रहता है। वही चोर है। किंतु पुतले ने हमें कहा है कि विधाता की इच्छा है कि इस जुलाहे को इसका कोई दंड न दिया जाए, क्योंकि उसने अपने दुष्कर्म का भारी पश्चात्ताप मन-ही-मन बहुत किया है। वह कुछ देर पहले उस माल को स्वयं नर्तकी को लौटाने का निश्चय कर चुका है।''

घड़ी भर में जुलाहा पकड़ बुलाया गया। कोतवाल ने उसे डराया-धमकाया। बेचारा घिघिया गया और बोला कि वह माल खुद ही लौटा देगा। उसने माल को जमीन में गाड़ने के स्थान का पता भी बताया। कोतवाल ने उसे छोड़ दिया।

उसके बाद राज्यसभा में पहले की ही भाँति दैनिक कामकाज चलता रहा। पुतला वहाँ से हटा दिया गया। राजसभा के अंदर पुतले से बने बैठे राजपूतों को अंत में राय जयसिंह ने अपने पास बुलाया और उनसे बोला—

''राजदूतो, हम अतिथियों का स्वागत करते हैं। आशा करते हैं कि जब हम आपके देश आएँगे, या हमारी प्रजा में से कोई आएगा, तो उनको भी वहाँ अतिथियों की तरह आदर-मान मिलेगा। मिलेगा न ?''

''अवश्य, राय जयसिंह!'' राजदूतों ने समवेत स्वर में कहा।

''तो अब प्रत्युत्तर में हमारा संदेश अपने राय से कहना कि हम चाहते तो अपनी प्रजा को अपार कष्ट देकर उनकी 'राय' की पदवी छीनने के लिए आज से बहुत पहले कूच कर चुके होते। किंतु हमारे पुतले से हमें सलाह मिली कि इतनी दूर आक्रमण करने के लिए जाकर हमारी प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठेगी। हम विजय अवश्य प्राप्त करेंगे, लेकिन हमारी आधी सेना कट मरेगी। हमने अपना इरादा बदल दिया, लेकिन यही सलाह आज हम तुम्हारे राय को पहुँचाना चाहते हैं—यदि उन्हें शांति से रहना नहीं आता, तो अशांति का मजा चखने के लिए गुजरात की ओर प्रस्थान करें। हम अपने पुतले की सहायता से तीन दिनों के भीतर-भीतर उसकी सारी सेना का विध्वंस कर देंगे।''

''इसलिए महाराज, कि आपका यह तुच्छ सेवक यदि बेजान पुतलों में विश्वास किया करता, तो कोतवाल के पद तक न पहुँच पाता। वास्तव में जुलाहा दोषी नहीं है। उसके पास आज ही कुछ राजकीय मुद्राएँ मिली हैं—और नर्तकी ने अपराधी के रूप में जिस व्यक्ति को पहचाना है, उसे बंदी बनाना मेरी हैसियत से कहीं ऊपर की बात है।''

राजदूतों ने सिर हिलाया, मानो अपने राय की ओर से राय जयसिंह को आश्वासन दे रहे हों कि ऐसा न होगा। और वास्तव में ऐसा नहीं हुआ।

उनके गुजरात से कूच करते ही एकांत में कोतवाल शहर राय जयसिंह की सेवा में उपस्थित हुआ और हाथ जोड़कर नीची नजरें करता हुआ बोला, ''देव, सेवक सेवा से अवकाश ग्रहण करना चाहता है।''

''क्यो?'' आश्चर्य से राय जयसिंह ने पूछा।

''इसलिए महाराज, कि आपका यह तुच्छ सेवक यदि बेजान पुतलों में विश्वास किया करता, तो कोतवाल के पद तक न पहुँच पाता। वास्तव में जुलाहा दोषी नहीं है। उसके पास आज ही कुछ राजकीय मुद्राएँ मिली हैं—और नर्तकी ने अपराधी के रूप में जिस व्यक्ति को पहचाना है, उसे बंदी बनाना मेरी हैसियत से कहीं ऊपर की बात है।''

राय जयसिंह हँस पड़े और उसकी पीठ थपथपाते हुए बोले, ''जाओ, हम तुम्हारा वेतन बढ़ाते हैं और पदवृद्धि करते हैं। अपने राजा को तो बख्शो!''

साअ

लघुकथा

पारिवारिक प्रवक्ता

● **सेवा सदन प्रसाद**

सुबह-सुबह 'बेड-टी' मिलते ही सक्सेनाजी ने पूरे परिवार के समक्ष अपना बहुमूल्य विचार पेश किया, "याद रक्खो, कल चुनाव है। सब लोग समय निकालकर मतदान अवश्य करना। योग्य नागरिक पर ही देश गर्व करता है।"

"पापा, कुछ गिने-चुने लोगों को छोड़कर इस देश में कितने लोग योग्य हैं?" अमित ने अपने मन की भड़ास निकाली।

तभी बहू अपनी योग्यता का प्रदर्शन करती बोली, "दूसरों के ऐब गिनाने से अपनी त्रुटियाँ कम नहीं हो जातीं।"

मताधिकार तो हर भारतवासी का सिर्फ मौलिक अधिकार ही नहीं, बल्कि नैतिक जिम्मेदारी भी है। मैं तो कहती हूँ, ज्यादा मीमांसा करने के बजाय मेनका, ममता, मायावती यानी नारी-शक्ति के हाथों में सत्ता सौंप दी जाए।"

तभी सक्सेना साहब बरस पड़े, "अरे! शासन करना सबके वश की बात नहीं। नेहरू एवं इंदिरा से सबको सबक लेना चाहिए।"

पुन: अमित टपक पड़ा, "अपने खानदान में तो कोई भी राजनीति में है ही नहीं, वरना वंशवाद का सहारा लेकर राजनीति के अखाड़े में मैं भी कूद पड़ता।"

अब भला मिसेज सक्सेना कैसे चुप रहतीं। चेतावनी भरे अंदाज में बोल पड़ीं, "तुम लोग सब स्वार्थी हो, सिर्फ अपनों के लिए, कुछ खास जातियों के लिए, अपनी अस्मिता के लिए ही सोचते हो। सबका साथ एवं सबका विकास होना चाहिए, तभी तो मुल्क में अमन रहेगा और चमन में फूल खिलेगा।"

विश्लेषक के बयान के बाद कुछ कहने को रहा ही नहीं, समय-सीमा समाप्त जो हो गया।

साअ

६०१, महावीर दर्शन सोसायटी
प्लॉट नं. ११-सी, सेक्टर-२०
खारघर, नवी मुंबई-४१०२१०
दूरभाष : ९६१९०२५०९४

चार गजलें

● बालस्वरूप राही

: एक :

अगर उमस में टपक गया कतरा
ऐसा लगता है कोई मोती झरा
तुझ से ज़्यादा है दिलफरेब सनम
शायरी मेरी, पढ़ के देख जरा

मेरी गजलों की दिलकशी भी समझ
यों न अपनी अदाओं पर इतरा
सादगी हुस्न से भी बढ़कर है
फूल से कम नहीं है पत्ता हरा

यों तो वरदान है मुहब्बत, पर
जानलेवा है हुस्न का नखरा

सच्ची उलफ़त है उम्र का हासिल
बेवफाई है जान का खतरा

वो वफा का नहीं है शौदाई
जिसका दामन है शोख़ियों से भरा

बेरुखी तोड़ देगी दिल 'राही'
संगदिल से न आशिकी टकरा

: दो :

हाले-दिल किस को सुनाएँ हम जमाने में
सब लगे हैं रात-दिन पैसा कमाने में

और ऊँचा खूब ऊँचा उड़ रहा
कोई भी पक्षी न टिकता आशियाने में

नौजवानों तक के चेहरों पर खिंची शिकनें
छा गया कितना दिखावा मुसकराने में

सत्य अब दर्शन नहीं, केवल प्रदर्शन है
जिसको देखो व्यस्त है नारे लगाने में

कान पर बच्चों के ईयर फोन हैं छाए
अब कहाँ जादू बचा खुद गुनगुनाने में

कौन अब हमदर्द है किस का, कहाँ, दिल से
वक्त कट जाता है बस हँसने-हँसाने में

शायरी में खो गए हैं यार राही जी
कुछ तो दिलचस्पी दिखाएँ आबो-दाने में

: तीन :

वो खुश है मिल गया जो मुझे उस खिताब से
उनको न कोई वास्ता मेरी किताब से

होती है वाहवाही उन्हीं की जहाँ भी हों
जो जी रहे हैं जिंदगी अपनी नवाब से

अब तो यहाँ है हर घड़ी संतों की धूम-धाम
मतलब नहीं किसी का भी खाना खराब से

कोई न सादगी के चरण चूमता कहीं
लोगों को सरोकार है बस आबो-ताब से

महफिल में गूँजता नहीं शायर का नयापन
मतलब है दोस्तों को पुरानी शराब से

सम्मान मिला जिसको, हुई पूछ उसी की
शायर हैं वो बड़े जो लगें कामियाब-से

चारों तरफ है सिर्फ हकीकत की धूम-धाम
आँखों का लेना-देना गया छूट खवाब से

कोई भी सादगी को लगाता नहीं गले
लोगों का वास्ता है महज़ रोब-दाब से

कोई न तामझाम है, कोई न धूम-धाम
क्या वास्ता बनाइए राही जनाब से

: चार :

घुटने टेके नहीं, मगर हम ने माथा तो टेक दिया
संघर्षों से जीत न पाए तो ईश्वर का नाम लिया

इम्तहान है जीवन ऐसा जिस का कोई अंत नहीं
जीना पड़ता है हर मौसम, यारो, सिर्फ बसंत नहीं

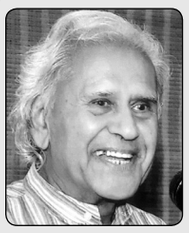

सुपरिचित बहुमुखी साहित्यकार। गीत, गजल, मुक्त छंद लगभग सभी विधाओं में निष्णात। हिंदी के प्रथम ऑपेरा 'राग-बिराग' के रचनाकार। केंद्रीय हिंदी संस्थान के सुब्रह्मण्य भारती पुरस्कार सहित अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित।

चारों ओर मची है हलचल, लोग दुआएँ माँग रहे
सबका बेड़ा पार लगा दे ऐसा कोई संत नहीं

होने लगे पाँव जब डगमग, साँस फूलने लगी बहुत
हाथ दोस्तों का हमने भी आखिर कसकर थाम लिया

ऐसा है परिवेश देश का राजनीति ही छाई है
हाथ न थामो नेता का तो कदम-कदम पर खाई है
नारे गूँज रहे हैं, चारों ओर भीड़ के जलवे हैं
बाकी सब बेकार, काम की अब तो बस नेताई है

कैसे वह माहौल बनाएँ जो सपनों में देखा था
कश्ती तैर रही नेता की, शहर समझ लो है दरिया

जुगनू चमके कहाँ, चमन में भीड़ लगी है भँवरों की
फूल खिलें कैसे, काँटों की चुभन हो गई है तीखी

नारे नहीं लगा पाए हैं, स्वाभिमान ने हरवाया
और न कुछ भी सीख सके, हमने तो बस कविता सीखी

जी न सके अपनी शर्तों पर तो समझौता ओढ़ लिया
कड़वा लगा बहुत, क्या करते, घूँट-घूँट कर जहर पिया

डी-१३ ए/१८ द्वितीय तल,
मॉडल टाउन, दिल्ली-११०००९
दूरभाष : ०११-२७२१३७१६

मुक्ति

● भगवान अटलानी

जाने की बात सोचते समय जरा सी कल्पना भी नहीं की थी। कल की भावनाओं को पोषित करने के लिए गए थे और आज का विद्रूप भाव साथ लेकर लौटे हैं। बाहर से दिखाई देता चलता-फिरता शरीर और निरंतर युद्धरत परिस्थितियाँ। किसी से कहने, रोने का स्वभाव नहीं है। मस्तिष्क पूरी तरह सचेत है, इसलिए अपने आप से लड़ते रहते हैं। एक ऐसी लड़ाई कि जिसका ओर-छोर नहीं है।

परिवारजन चिंता ही नहीं करते, उनकी प्रकृति को समझते हुए उनके कुछ कहे बिना ही भरसक चेष्टा करते हैं कि वे परेशान न हो पाएँ। मित्रों और रिश्तेदारों को, बेटे-बहू की ओर से उनके लिए खामोशी से की जाने वाली व्यवस्थाओं को देखकर ईर्ष्या होती है। अपनी ओर से भरपूर कोशिश करते हैं, उन्हें सामान्य दृष्टि से देखा जाए, मगर अपवादस्वरूप भी ऐसा होता नहीं है। घर में अतिथि व अपरिचित आए हैं और वे वहाँ हैं तो कभी ऐसा नहीं होता कि परिचय कराते हुए प्रशंसा में दो शब्द न कहे गए हों उनके बारे में। इस उम्र में भी मन में संकोच भाव खदबदाने लगता है। सच है कि अच्छा लगता है, अपने ऊपर कम, बेटे या बहू के ऊपर गर्व भी महसूस होता है। संकोच से अंदर-ही-अंदर गड़ते और गर्व से महकते हुए, औपचारिकताओं के आदान-प्रदान के बाद वे उठ जाते हैं। आग्रह के बावजूद वहाँ रुकना संभव नहीं रह जाता है उनके लिए।

पहले ज्यादा थे, अब तीन ही पुराने मित्र बचे हैं। मिलना चाहे कम हो पाता हो किंतु फोन पर नियमित संपर्क में रहते हैं। किसी जमाने में मित्र मंडली में निकटता से जुड़ा था सेवकराम। व्यापार बढ़ा तो सेवकराम की व्यस्तता बढ़ी। यहाँ तक समझ में आता था, लेकिन बढ़ती आय ने उसके अहंकार को भी बढ़ा दिया। हम मध्यमवर्गीय मित्र उसे अपने स्तर से कमतर, अपने आप से बौने महसूस होने लगे। कुछ व्यस्तता और कुछ दृष्टि परिवर्तन, वह धीरे-धीरे हमसे दूर होता गया। शुरू में हम लोगों ने कोशिश की उसे पटरी पर लाने की। कोई नतीजा नहीं निकला तो हमने भी उसे छोड़ दिया। छोड़ जरूर दिया, मगर उसे भूल नहीं पाया हममें से कोई भी। शादी-विवाह और अन्य पारिवारिक अवसरों पर सेवकराम को हम हमेशा बुलाते रहे। मजे की बात यह है कि वह आता भी रहा। भले ही बात न होती हो, मिलना न होता हो, किंतु वह हम मित्रों के दायरे में बना रहा। केवल हम लोगों की ओर से आमंत्रण गए हों और उसने न बुलाया हो, ऐसा भी कभी नहीं हुआ। उसके बुलावे पर हम जाते तो सेवकराम के व्यवहार में कभी मित्रभाव में कमी का आभास नहीं हुआ हम लोगों को।

मूर्धन्य लेखक। हिंदी में तेरह, सिंधी में आठ, स्वयं अनूदित तीन, अन्य भाषाई लेखकों द्वारा अनूदित छह, कुल तीस पुस्तकें तथा १२०० से अधिक रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। २५० से अधिक कार्यक्रम आकाशवाणी से प्रसारित। अकादमियों, सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं से ३५ पुरस्कार और ५० से अधिक सम्मान प्राप्त।

यही कारण था कि सामान्यत: 'पुरानी बात नहीं रही' कहने-मानने वाले हम मित्रगण सेवकराम को 'कभी हमारे दोस्त थे' इस श्रेणी में नहीं रख पाए। गाहे-ब-गाहे बात करने की, संपर्क बनाए रखने की कोशिश में अन्य मित्रों ने हाथ पीछे खींचे हों तो अलग बात है, मगर उन्होंने 'कभी तंगदिली नहीं दिखाई'। सेवकराम के प्रति अनुराग उनके मन में तो बना ही रहा, उसने भी बढ़े हाथ को झटकना तो दूर रहा, हमेशा उतनी ही गर्मजोशी से पकड़ा, जैसे तब पकड़ता था, जब हम लोगों के साथ मिलकर ठहाके लगाता था।

हम लोगों की पकी उम्र के कारण चौंकाने वाली स्थिति तो नहीं बनी, लेकिन जब उसके देहांत का संदेश आया तो वे उदास हो गए हैं। कुछ आँखों से कम दिखाई देने की वजह से और कुछ मानसिक उदासीनता का प्रभाव इन दिनों उनके घर से बाहर निकलने पर अंकुश लगाता है। कहीं आने-जाने की इच्छा नहीं होती है। मित्रों से फोन पर बात जरूर करते रहते हैं, मगर मिलना-जुलना उनसे भी तभी होता है, जब मिलकर कहीं बैठने का कार्यक्रम बनता है। सेवकराम की मृत्यु के समाचार के बाद हिचकिचाए बिना, उन्होंने निर्णय लिया कि तीसरे दिन की बैठक में जरूर जाएँगे। बाहर से कितने भी ठीक लगते हों, लेकिन जानते थे कि दाह संस्कार की हलचल उनका शरीर बरदाश्त नहीं कर पाएगा। इतना तो समय ने सिखा ही दिया था कि सामर्थ्य के अनुसार गतिविधियाँ करने में ही भला है। सीमाओं में रहेंगे तो न स्वयं दु:खी होंगे और न परिवार को परेशान करेंगे।

जिस दिन बैठक थी, उस सुबह उन्होंने तीनों मित्रों को फोन किया। एक ने बताया, पिछली शाम पत्नी के साथ वह उसके घर हो आया है। शेष दो ने जाने में असमर्थता जाहिर की। फिर कहा कि बाद में किसी दिन सेवकराम के घर चले जाएँगे। मन थोड़ा सा डिगा जरूर, मगर वे इरादे से पीछे नहीं हटे। बैठक का समय शाम को पाँच से साढ़े पाँच बजे का था। उन्होंने सोचा, समय पर जाएँगे तो कुरसी पर बैठना सुनिश्चित हो जाएगा। नीचे बैठने की अनुमति शरीर देता नहीं था। इसलिए कुरसियाँ भर जाने के बाद पहुँचने की बात वे टालना चाहते थे।

बैठक उनके घर से अधिक दूरी पर नहीं थी। उन्होंने बेटे को पौने पाँच बजे कार भजने के लिए कह दिया। अफरा-तफरी टालकर बैठक स्थल पर पहुँचने के लिए पंद्रह मिनट पर्याप्त थे। रास्ते में भीड़ में फँसा या कार्यालय से निकलने में देर हुई, उन्हें नहीं मालूम मगर ड्राइवर सात मिनट देर से पहुँचा। सेवकराम की हैसियत के कारण बैठक स्थल के दरवाजे से पहले लगी गाड़ियों की कतार ने देरी को बढ़ा दिया। नतीजा यह निकला कि जब वे सभागार में पहुँचे, तब सभी कुरसियाँ भर चुकीं थीं। चित्र के सामने श्रद्धांजली के रूप में पुष्प समर्पित करने के बाद कुरसियों की कतारों के पीछे जाकर वे खड़े हो गए। सेवकराम के बेटे और अन्य निकटवर्ती परिवारजन उन्हें जानते थे, मगर सभी सामने नीचे बिछी जाजम पर बैठे थे। जो युवक व्यवस्था के लिए खड़े थे, उनमें से एक कहीं से कुरसी ले आया और ठीक बेटों आदि की पंक्ति के पीछे लगी कुरसियों में शामिल करके उन्हें बैठाया। कुरसी पर बैठने के बाद सेवकराम के बेटों और दूसरे परिवारजनों की पीठ उनकी ओर थी। किसी चेहरे को पहचानना तो उनके लिए तभी संभव था, जब व्यक्ति निकट खड़ा हो, लेकिन अनुमान से वे बैठे हुओं को पहचानने की कुछ सफल, कुछ असफल कोशिश कर रहे थे।

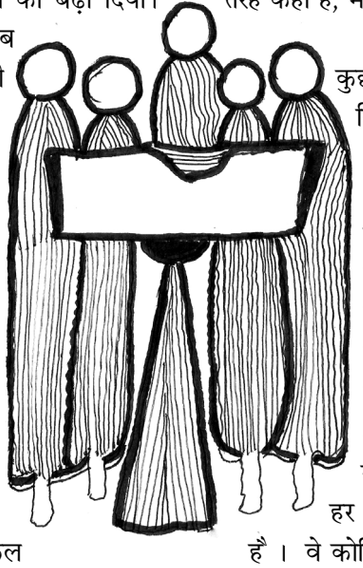

पगड़ी बाँधने की रस्म पूरी होने के बाद पंडितजी की घोषणा के अनुरूप सेवकराम के बेटे और परिवार जन सभागार के मुख्य द्वार पर जाकर पंक्तिबद्ध खड़े हो गए। भीड़ अधिक थी। धक्का लगने की आशंका को देखते हुए वे कुरसी पर बैठे-बैठे भीड़ कम होने की प्रतीक्षा करने लगे। हालाँकि मिलने वालों और नमस्कार करने वालों को पहचानने से आँखें इनकार कर रही थीं, मगर वे मुसकराते हुए हाथ जोड़कर प्रत्युत्तर दे रहे थे। जो निकट आकर बात कर रहे थे, उनमें से कुछ को दीर्घ अंतराल के बाद देखने के कारण वे बिल्कुल नहीं पहचान पा रहे थे। कुछ को मुद्रा, लहजे या भंगिमा के कारण उनके लिए पहचानना संभव हो पा रहा था, लेकिन यह सब अनपेक्षित नहीं था, इसलिए किसी तरह का मलाल भी महसूस नहीं हो रहा था।

लगा कि भीड़ कुछ कम हो गई है और अब पंक्ति में लगा जा सकता है तो कुरसी से उठकर वे आगे बढ़े। बीच में खड़े परस्पर बतियाते लोग शायद अवसर का लाभ उठा रहे थे। पंक्ति के छोर पर पहुँचने ही वाले थे कि उन्हें लगा, किसी ने उनका नाम पुकारा है। उन्होंने मुड़कर देखा तो एक सज्जन उनकी ओर बढ़ आए। उनके समवयस्क रहे होंगे। पहचाना तो नहीं मगर उनकी तरफ देखकर वे इस तरह मुसकराए, गोया जानते हों। उनकी मुसकराहट और चेहरे पर आए भाव देखकर सज्जन के चेहरे की मुसकराहट चौड़ी व भंगिमा आत्मीयता से सराबोर हो गई, "किस दुनिया में रहते हो तुम? एक ही शहर में रहते हैं, फिर भी कभी याद नहीं करते।"

पहचानने की पुरजोर कोशिश करते हुए चेहरे के भाव और मुसकराहट यथावत् बरकरार रखकर, हास्य का तड़का लगाते हुए अभिनय का किंचित् भी आभास कराए बिना उन्होंने स्वर में अपनत्व भरा है, "क्या करें यार, उम्र ने सींखचों में कैद कर दिया है।"

"सलाखें तोड़कर कभी घर आओ न।" सज्जन ने आग्रहपूर्वक इस तरह कहा है, मानो पता पहले ही मालूम होगा उनको।

"जरूर आऊँगा। वहीं रहते हो न?" उन्होंने सब कुछ याद होने का नाटक किया है, "तुम भी आओ किसी दिन।"

"आऊँगा, ढेर सारी बातें करनी हैं तुमसे।"

मुसकराकर वे पंक्ति की ओर बढ़ गए। लगभग पंद्रह व्यक्ति कतार में खड़े आगंतुकों के सामने हाथ जोड़कर खड़े हैं। सिर पर बँधी पगड़ी के कारण दूर से ही स्पष्ट है कि उनमें अंत में खड़े तीन सेवकराम के बेटे हैं और चौथा उसका भाई या भतीजा होगा। एक-एक के सामने हाथ जोड़कर वे गंभीर मुद्रा में आगे बढ़ने लगते हैं। सेवकराम के परिवार का प्रत्येक सदस्य लगभग बचपन से परिचित था। पंक्ति में खड़ी हर आकृति मुखारविंद से परिचय की अनुभूति करा रही है । वे कोशिश के बावजूद किसी चेहरे को पहचान नहीं पा रहे हैं। सेवकराम का एक बेटा कुछ अधिक ही लंबा है। पंक्ति में भी वह सबसे अलग नजर आ रहा है। पगड़ी बाँधकर खड़े सेवकराम के बाकी दो बेटे और तीसरा व्यक्ति निश्चय ही निकट से गुजरते हुए पहचान लेंगे, उन्हें भरोसा है।

सामने पहुँचते ही सेवकराम के बेटों ने एक-एक करके उनके पाँव छुए। नीचे झुकते समय चेहरा देखकर वे उन्हें पहचान गए। आशीर्वाद स्वरूप उनकी पीठ पर हाथ रखकर वे आगे बढ़ते गए। पगड़ी बाँधकर खड़े चौथे व्यक्ति ने झुककर नमस्कार किया है। पहचाने बिना शुद्ध औपचारिक भाव से झुककर नमस्कार करते हुए वे भी आगे बढ़ गए।

वापस लौटने के बाद गुमसुम, अँधेरों में घिरा महसूस कर रहे हैं वे अपने आप को। क्यों नहीं पहचान पा रहे हैं वे सच को? क्यों शरीर और मस्तिष्क को एक करके देख रहे हैं वे? सेवकराम के प्रति उनकी भावनाएँ भावुकता में बदल जाएँ, जरूरी है क्या? जैसा अवसर था, उसे देखते हुए

सार्वजनिक स्थान पर परिचितों से भेंट अनिवार्य है। उन परिचितों में से कुछ पुराने मित्र भी हो सकते हैं। आँखें साथ न दें तो मानसिक स्वास्थ्य, आत्मनिर्भर गतिविधियों का साथ कहाँ तक निभा पाएगा आखिर? माना कि वह उसके घर के सदस्यों से भलीभाँति परिचित हैं। कभी एक-दूसरे से निवासस्थान पर मिलना-जुलना होता रहा है। परिवार के किसी व्यक्ति को वे पहचान न पाएँ और पहचानने का दिखावा करते रहें, इससे अधिक त्रासदायक क्या हो सकता है?

जिस सेवकराम की तीसरे दिन की बैठक में जा रहे हैं, उसके सुपरिचित रहे परिवारजनों को वे न पहचान पाएँ तो क्षम्य कहेंगे क्या? अपना चेहरा दिखाने गए थे क्या, वे सेवकराम की तीसरे दिन की बैठक में? यही करना था तो बैठक से पहले किसी समय उसके घर चले जाते, बैठक में जाने की क्या जरूरत थी? कुछ बातों से, कुछ व्यवहार से, कुछ उठने-बैठने के तौर-तरीकों से और कुछ पाँव छूने या प्रणाम और नमस्कार करने से जितना पहचान पाते परिवारजनों को वह वर्तमान से अधिक होता। नैकट्य की अनुभूति कराना भी संभव हो जाता।

शायद परिवारजनों के साथ बाहरी लोगों को अपनी उपस्थिति से प्रभावित करने की मानसिकता रही है इस निर्णय के पीछे। अच्छे मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ जोड़-बाकी-गुणा-भाग नहीं हो सकता। भावनाओं के वशीभूत सेवकराम की तीसरे दिन की बैठक में जाने का उनका निर्णय नई परतें खोल रहा है उनके सामने अपने अंतर्मन की। पहले ऊपर से लगता था, सेवकराम के प्रति जो आत्मीय भाव उनके हृदय में रहा है, जाने का निर्णय केवल और केवल उसका प्रतिफल है। अब लगता है कि नहीं, सीमाओं का विस्तार उससे ज्यादा है। सोचते हैं तो दंग रह जाते हैं, ढकी-छिपी असलियत ने उजागर होने का कैसा अनूठा मार्ग अपनाया है?

उन्हें सब लोग देखें, इसके लिए सेवकराम से घनिष्ठ संबंधों को बहाना बनाने की अलक्षित एवं अदृश्य मानसिकता अपनी जगह, किंतु व्यावहारिक जामा पहनाना मुमकिन है क्या इस सोच को? परिचित और मित्र उन्हें पहचान लें, उनकी उपस्थिति को परिलक्षित करें, उनसे बात करें, मुलाकात में आए अंतराल को पाटें और समझें कि वे मित्रता निभाना जानते हैं। यह ढकी-छिपी कामना एक तरफ और निकटवर्तियों तक को न पहचान पाने की अक्षमता दूसरी तरफ। परिचितों-मित्रों से मिलने का सुख भोगने की लालसा एक तरफ और उन्हें चिह्नित न कर पाने की पीड़ा दूसरी तरफ। आत्म-प्रदर्शन आयु के साथ गौण होता गया है, किंतु संवेदनाओं की तीव्रता, उनकी चुभन और दर्द जनित तनाव बढ़ता गया है। भले ही उसे व्यक्त करने से लाभ प्रतीत न होता हो, किंतु तत्जनित रोष व असंतोष ऐसे गुब्बारे की तरह होता है, जो अंदर भरी गैस के दबाव को न बरदाश्त कर पाता है और न फट पाता है।

चुनना तो होगा ही कोई एक रास्ता। मजमे में जाकर लोगों को दिखाई दें और खुद किसी को देखकर भी न देखें, उससे क्या फायदा? क्यों जाएँ ऐसी जगह और क्यों लालायित हों ऐसी जगह जाने के लिए? उन्हें देखकर या उनसे मिलकर किसी को खुशी मिली या नहीं मिली, नहीं मालूम, मगर वे एक तनाव, अक्षमता का तमगा दिल और दिमाग पर चिपकाकर लौटते हैं। क्यों, क्यों आमंत्रित करें इस त्रास को? भावनाएँ उछल-कूद करेंगी तो दूसरे रास्ते निकालेंगे, लेकिन नहीं जाएँगे ऐसी जगहों पर, जो कुछ दिनों तक सुख-चैन छीन ले, नींद उड़ा दे उनकी। उम्र के तकाजों, शरीर की घटती क्षमताओं और सीमाओं की सिकुड़न को खुद न ढोकर दूसरों को क्यों नहीं सौंपते हैं वे? वे जाएँ, नहीं! दूसरे भी तो आ सकते हैं उनके पास। फिर कोई नहीं आएगा तब भी कौन सा पहाड़ टूट पड़ेगा? कम-से-कम इस पीड़ा से तो मुक्ति मिलेगी, जिसको अभी-अभी शिद्दत से भोगा है उन्होंने।

अशांति से दूरी का फैसला लिए लगभग एक माह हुआ है। कभी-कभी ऊब जरूर होती है, मगर अखबार, टी.वी., मोबाइल पर यूट्यूब आदि के अलावा तीनों मित्रों से फोन पर होने वाली लंबी बातचीत करते-करते समय गुजर जाता है। घर में रहते हुए बाहर की दुनिया याद आती है तो सड़क पर खुलती बालकनी में जाकर बैठ जाते हैं। आते-जाते लोगों को देखते-देखते कभी मन रम जाता है और कभी आलस्य आने लगता है। आँखें झपकने लगती हैं तो बिना देखे कि कितने बजे हैं, वे बिस्तर पर चले जाते हैं। जिंदगी ज्यादा ऊबड़-खाबड़ महसूस नहीं होती है।

अशांति से दूरी का फैसला लिए लगभग एक माह हुआ है। कभी-कभी ऊब जरूर होती है, मगर अखबार, टी.वी., मोबाइल पर यूट्यूब आदि के अलावा तीनों मित्रों से फोन पर होने वाली लंबी बातचीत करते-करते समय गुजर जाता है। घर में रहते हुए बाहर की दुनिया याद आती है तो सड़क पर खुलती बालकनी में जाकर बैठ जाते हैं। आते-जाते लोगों को देखते-देखते कभी मन रम जाता है और कभी आलस्य आने लगता है। आँखें झपकने लगती हैं तो बिना देखे कि कितने बजे हैं, वे बिस्तर पर चले जाते हैं। जिंदगी ज्यादा ऊबड़-खाबड़ महसूस नहीं होती है।

दिन के ग्यारह बजे हैं। मन कुछ उदास है। नहा-धोकर वे बालकनी में आ बैठे हैं। हो सकता है, आते-जाते लोगों को देखकर उदासी कुछ कम हो जाए। तभी देखते हैं, उनके घर के सामने आकर एक कार रुकी है। तीन लोग कार से नीचे उतर रहे हैं। ठीक तरह से पहचाना तो नहीं, लेकिन लगा कि वे तीनों उनके मित्र हैं। दरवाजा खोलकर अंदर घुसे तो चाल-ढाल और कद-काठी से पुष्टि हो गई। वे बाल्कनी से ही चिल्लाए, "ऊपर आ रहे हो या मैं नीचे आऊँ?"

तीनों ने एक साथ ऊपर देखा है। एक ने कहा, "वहीं रुक। हम तेरे पास आ रहे हैं।"

कुछ मिनटों के बाद तीनों उनके कमरे में थे। तीनों के कंधों से थर्मस लटके हुए थे। तीनों बैठ गए तो उन्होंने पूछा, "आज तीनों एक साथ और वह भी यहाँ?"

"तू तो आता नहीं है। हमने सोचा, तेरे हाल-चाल पूछ आएँ।" उनमें से एक ने कहा है।

दूसरे ने उनसे पूछ लिया, "बाल्कनी में कैसे बैठा था? कमरे में मन नहीं लग रहा था क्या?"

वे थोड़ा अचकचाए हैं और फिर रुक-रुककर अपनी उदासी के बारे में बता गए हैं। तीनों मित्र खामोशी से सुनते रहे हैं। उनके चुप हो जाने के बाद भी मौन पसरा हुआ है। उनमें से एक ने मौन तोड़ा है, "सच कहूँ तो हम सबके मन की हालत भी ऐसी ही है। तेरे पास हम इसीलिए आए हैं।"

वे मुसकराए हैं। मन का बोझ और उदासी का भाव कम होता महसूस हो रहा है। तभी दूसरे मित्र ने कहा, "उदासी, अकेलापन और निराशा जैसी तुझे अनुभव होती है, वैसी हमें भी लगती है।"

"कैसे उभर सकते हैं इस हालत से? कोई उपाय है तुम लोगों के पास?" किंचित् व्यग्रता, किंचित् ठहराव के साथ उन्होंने पूछा है।

तीनों मित्रों के चेहरों पर उनकी बात सुनकर एक चौड़ी सी मुसकराहट खिल उठी है, "वही सूत्र लेकर आए हैं आज हम तेरे पास।"

"अच्छा!" उन्होंने चकित होकर कहा है।

एक ने इशारा किया है। तीनों मित्रों ने अपने-अपने थर्मस से चाय निकालकर ढक्कननुमा कप में डाली है। मेज से गिलास उठाकर उनके लिए भी चाय डाल दी है।

"सप्ताह में एक बार हम चार में से तीन मिलकर चौथे दोस्त के घर जाएँगे उसे बताए बिना। जिस तरह आज तेरे पास अचानक, बिना सूचना दिए आ धमके हैं, बिल्कुल ऐसे ही। चाय-नाश्ता मिलेगा तो स्वागत करेंगे। नहीं मिलेगा तो बुरा नहीं मानेंगे। थर्मस में अपने साथ तो चाय लाएँगे ही। एक-दो घंटे गपशप करेंगे। दुःख-सुख बाँटेंगे। अब तक हममें से दो की फोन पर बात होती थी। अब उस तक सीमित नहीं रहेंगे। बोल, है मंजूर?"

वे उत्साह से भर उठे हैं। उन्हें लगता है, एकरसता को रंगीन और रोमांचक बनाने का सूत्र लेकर आए हैं, मित्रगण। अब किसी सेवकराम के तीसरे दिन की बैठक के बहाने और उसके नतीजे के रूप में संत्रास भोगने की जरूरत नहीं पड़ेगी उन्हें। वे खड़े हो गए हैं। उनकी बाँहें मित्रों से गले मिलने के लिए अपनी पूरी चौड़ाई में खुल गई हैं।

डी-१८३, मालवीय नगर,
जयपुर-३०२०१७ (राज.)
दूरभाष : ९८२८४००३२५

साँस फिर उदास है

कविता

• **कमलेश कुमार दीवान**

खत आसमान के

बादलों के साथ आए हैं खत आसमान के
सागर ने लिख भिजवाए हैं खत तापमान के,
नदिया उफान पर हैं पर्वत भी खिसक रहे
भरमा गई हैं घाटियाँ अपने ही निमान से,
उजड़े मुकाम हैं सभी बारिश के कहर भी
कैसे रहोगे जिंदा बगैर छतऔ मकान के
आफत में महासागर लहरें भी उदास हैं
बारूद मिसाइल गिरे जब अंतरिक्ष यान से,
सुलगे है वन उजड़े कमन देखता है 'दीवान'
क्या-क्या बताएँ दर्द हम दुनिया जहान के।

सुलग रहा है

जल रही जमीन भी सुलग रहा है आसमां
इस धरा की आग को उगल रहा है आसमां
हवाओं में घुले हुए जहर के झाग-झाग हैं
घरों के आसपास भी बड़े-बड़े सुराग हैं
सड़क-सड़क निशान है उदास बाग-बाग है
जमीर जो बचा नहीं सभी तो दाग-दाग हैं
पल सकी न जिंदगी ये साँस फिर उदास है
किसी के पास है कहाँ जहाँ जिसे तलाश है
उगल रही है आस्तीन नई-नई लहर अभी
बिखर रहे हैं गाँव और शहर सभी
कोई तो बात है यहाँ कोई तो बात है वहाँ
वसुंधरा की चाह को निगल रहा है ये समां

छलके आँसू

क्या हमें याद है किस बात पर छलके आँसू
बात बेबात में हर एक बात पर छलके आँसू
कोई अपना नहीं होता है ये समझ पाए अब
जो बिताए उन्हीं लम्हात पर छलके आँसू
वक्त के साथ ढले साथ भी चलने न दिया
कैसे भूले इन्हीं सदमात पर छलके आँसू
कभी चुप भी रहे कहते भी गए कहानी कभी
सुनने वालो से मुलाकात पर छलके आँसू
अपने आँसू भी छुपाए तो कैसे-कैसे 'दीवान'
ऐसे हालात हर सवालात पर छलके आँसू

मित्र विहार कॉलोनी
मालाखेडी रोड, सिविल लाइन
नर्मदापुरम्-४६१००१ (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२५६४२४५८

ओमशिला से ॐ लुप्त हुआ

● प्रमोद भार्गव

इस पर्यटन संबंधी नीतियों को बढ़ावा देने की विडंबना ही कहा जाएगा कि दुर्लभ कैलाश मानसरोवर जाने वाले मार्ग पर जो ॐ पर्वत मिलता है, उस पर प्रकृति ने अपनी कलम से 'ॐ' बर्फ की स्याही से लिखा हुआ था। अब बढ़ते पर्यटन और फैलते प्रदूषण का नतीजा निकला है कि इस ओम से बर्फ गायब हो गई है। बर्फविहीन पर्वत काला दिखाई दे रहा है। इससे देशभर के पर्यावरण प्रेमी और वैज्ञानिक चिंतित हैं। यह अनूठा पर्वत विश्वप्रसिद्ध है, क्योंकि यह बहुअक्षरों का भान कराने वाला मात्र एक शब्द का अक्षर प्रकृति का सबसे पहला देवनागरी में लिखा हुआ शब्दाक्षर है। यह इसलिए भी विलक्षण है, क्योंकि यहाँ विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक संस्था नासा ने तीव्र आवृत्ति वाले ध्वनि रिकॉर्ड करने वाले यंत्रों से यहाँ गूँजने वाली ध्वनि को रिकॉर्ड करके चलाया तो उसका उच्चारण स्पष्ट रूप से 'ॐ' उच्चारित करती हुई सुनाई देती है। इसे गूगल पर 'साउंड ऑफ सन' टंकित करके आसानी से सुना जा सकता है।

पर्यावरणविद् और स्थानीय लोग हिमालयी तापमान में वृद्धि तथा उच्च हिमालयी क्षेत्र में अंधाधुंध चल रहे कथित विकास कार्यों को इस बर्फ के पिघलने का दोष दे रहे हैं। हम निरंतर देख रहे हैं कि केदारनाथ, बदरीनाथ, यमुनोत्तरी और गंगोत्तरी जाने वाले रास्तों के पहाड़ों में लगातार भू-स्खलन हो रहा है। पिछले दिनों पिथौरागढ़ जिले के गाँव गुंजी की मूल निवासी उर्मिला सनवाल गुंज्याल अपने गाँव १६ अगस्त को ओम पर्वत के दर्शन के लिए गई थीं। किंतु जब वे ओम पर्वत पर पहुँचीं तो हैरान रह गईं। पर्वत पर उत्कीर्ण 'ॐ' से बर्फ लुप्त थी। उन्होंने इस अवस्था में आए ओम पर्वत के चित्र भी लिये। बाद में जब इसकी जानकारी पर्यावरण वैज्ञानिकों को दी तो सब आश्चर्यचकित रह गए। कुमाऊँ मंडल के पिथौरागढ़ जिले के धारचूला तहसील की व्यास घाटी में स्थित ओम पर्वत ५,९०० मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। कैलाश मानसरोवर यात्रा मार्ग पर स्थित नाभिढंग से ओम पर्वत के दर्शन होते हैं। इस जानकारी पर चिंता जताते हुए भारतीय पर्यावरण संस्थान उत्तराखंड के राष्ट्रीय अध्यक्ष और गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के पूर्व विभागाध्यक्ष वी.डी. जोशी का कहना है कि यदि इसी तरह से उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में मनुष्यों की आवाजाही बढ़ती गई और विकास के नाम पर सड़कों का जाल पहाड़ों में अंधाधुंध तरीके से बिछाया जाता रहा, भवन एवं सुरंगें बनाई जाती रहीं और पहाड़ को तोड़ने के लिए विस्फोट किए जाते रहे, तो एक दिन हमेशा के लिए उत्तराखंड के पहाड़ों से बर्फ पूरी तरह लुप्त हो जाएगी। यही नहीं, ध्वनि प्रदूषण पहाड़ों के लिए खतरनाक साबित हो रहा है। इससे न केवल बर्फ पिघलती है, बल्कि पहाड़ों में रहने वाले वन्यजीवों की प्रजनन प्रक्रिया भी बाधित हो रही है। उत्तराखंड की चारधाम यात्रा के लिए जो हेलीकॉप्टर सेवा आरंभ हुई है, उससे वायु और ध्वनि प्रदूषण तेजी से बढ़ रहा है। इस कोलाहल में हिमालयी वन्य प्राणियों और पशु-पक्षियों का जीना कठिन हो गया है।

सुपरिचित लेखक। पहली कहानी बंबई 'नवभारत टाइम्स' में, दूसरी कहानी 'धर्मयुग' में छपी। मिथकों को वैज्ञानिक आधार देने के लिए उपन्यास 'दशावतार' लिखा, इसी परिप्रेक्ष्य में 'राजस्थान पत्रिका' और 'पत्रिका' के सभी संस्करणों में 'पुरातन और विज्ञान' शीर्षक से साप्ताहिक स्तंभ लिखा, जो खूब चर्चित हुआ।

जिस पर्वत पर ॐ लिखा है, उसे ऋषियों ने धरती के व्यास की नाप-जोख करके इसे पृथ्वी की नाभि, यानी केंद्रबिंदु माना है। इसी क्षेत्र में स्थित कैलाश पर्वत को ब्रह्मांड की धुरी माना है। धरती की ओर उत्तरी ध्रुव है तो दूसरी ओर दक्षिणी ध्रुव है। दोनों के केंद्र में अखंड हिमालय पर्वत है और हिमालय के केंद्र में कैलाश मानसरोवर है। ऋग्वेद के ऋषियों ने माना है कि आर्यावर्त का जो क्षेत्र बहुत पहले विस्तृत था, उसके चारों ओर समुद्र फैला हुआ था। इसे ही सप्तसिंधु क्षेत्र कहा गया है। अखंड भारत में बहने वाली सात प्रमुख नदियाँ इसी हिमालय की कोख से निकलती हैं। इन नदियों में सिंधु, सरस्वती, रावी, सतलज, झेलम, चिनाव और व्सास हैं। कई करोड़ साल पहले एक प्राकृतिक घटना के घटने से हिमालय का उद्गम हुआ था। हिमालय पर स्थित कैलाश क्षेत्र को दुनिया की नाभि भी माना गया है। क्योंकि यह आकाश और पृथ्वी के बीच में स्थित है। यहाँ दसों दिशाएँ आकर मिलती हैं। साफ है, यहाँ की प्रकृति विलक्षण होने के साथ जीव-जगत् के लिए उपयोगी है। इसी क्षेत्र में स्थित ओम पर्वत अलग से खड़ा है। इसी पर प्राकृतिक रूप से उत्कीर्ण 'ॐ' अंकित है। ओम की इस चित्रात्मक छवि में स्वर्णिम आभा-सी दीप्तमान होती है, जिसमें हमेशा बर्फ भरी रहती है। अनुभव होता है, मानो प्रकृति ने बर्फीली स्याही भर दी है। ओम अक्षर देवनागरी की सुंदर लिपि में लिखा दिखाई देता है। 'ॐ' के आकार में समाहित प्रत्येक रेखा, चंद्रबिंदु, अनुस्वार स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। इस शब्दाक्षर को अनुस्यूत करने पर अनुभव होता है कि जैसे निश्चल शिलाखंड पर कोई मानव आकृति ओमकार की प्रतिकृति में स्थितप्रज्ञ रहते हुए सूर्य को

अर्घ्य दे रही है। नाभीढांग ही वह स्थल है, जहाँ शिव की पत्नी सती के पार्थिव शरीर का एक अंग गिरा था। इसलिए यह ५१ शक्तिपीठों में भी शामिल है।

यहाँ ओम की ध्वनि उच्चारित करने पर बहुत देर तक प्रतिध्वनित होकर गूँजती रहती है। ब्रह्मांड की इस ओम ध्वनि को मूल ध्वनि माना गया है। इस मूल ध्वनि के नाम का ब्रह्मांड में उद्घोष निरंतर होता रहता है। साधारण मनुष्य इस ध्वनि को नहीं सुन पाते हैं, क्योंकि आम व्यक्ति की श्रवण क्षमता न्यूनतम होती है। परंतु तपस्वी ऋषियों ने योगबल से भ्रम की इस ध्वनि से साक्षात्कार हजारों साल पहले कर लिया था। अभी तक इसे कपोल कल्पना कहकर कथित बौद्धिक नकारते रहे हैं। किंतु अब ओम के उच्चारण की ध्वनि को नासा ने रिकॉर्ड करने में सफलता प्राप्त कर ली है। इसे 'साउंड ऑफ सन' गूगल पर टंकित करके आसानी से सुना जा सकता है। इसमें ओम की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है। अतएव अब वेदों में उल्लेखित ओम ध्वनि का तथ्यात्मक सत्यापन वैज्ञानिक ढंग से हो गया है।

जहाँ कैलाश मानसरोवर की असंख्य पर्वत श्रेणियाँ हैं, वहाँ बर्फीली श्वेतवर्णी परतों से बर्फ की छार और जल की धाराएँ निरंतर झरती रहती हैं। यहीं सतह पर मानसरोवर और राक्षसताल सरोवरों का युग्म है। मानसरोवर तालाब को 'पिंगला' और राक्षसताल को 'इड़ा' नारी का प्रतीक माना जाता है। इन दोनों तालाबों को गंगाछू नाम की स्थानीय नदी परस्पर जोड़े रखती है। मानसरोवर में जब जल की मात्रा बढ़ जाती है, तब यह जल गंगाछू नदी से बहकर राक्षसताल में समाने लगता है। इन तालाबों में हंसों के जोड़े अकसर दिखाई दे जाते हैं। कैलाश की विराट् आकृति लिंग के समान मानी जाती है। कैलाश की परिक्रमा करती हुई छह पर्वत श्रेणियाँ हैं, इनके १६ शिखर ऐसे दिखते हैं, मानो १६ पँखुड़ियों वाले कमल पुष्प की आकृति बना रहे हों। इस कैलाश पर्वत पर जब उगते और अस्त होते सूर्य की किरणें पड़ती हैं, तो यह स्वर्णिम चमक से दमक उठता है। यह सौंदर्य अद्भुत माना जाता है। दोपहर का सूर्य स्फटिक मणि की तरह चमकता है। इन्हीं तालाबों से सिंधु, ब्रह्मपुत्र, सतलज और करनाली नदियों के उद्गम स्थल हैं। अतएव हिमालय का यह पर्वतीय क्षेत्र जीव-जगत् के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आज ओम पर्वत से बर्फ गायब हुई है, हो सकता है कल कैलाश की पर्वत-शृंखलाओं से झरने वाली बर्फ भी विलुप्त हो जाए। तब न मानसरोवर और राक्षसताल रहेंगे और न ही इनसे निकलने वाली नदियाँ। तब इस क्षेत्र में इस वीराने की कल्पना ही डराने वाली दहशत पैदा कर देती है।

शब्दार्थ ४९, श्रीराम कॉलोनी
शिवपुरी-४७३५५१ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९४२५४८८२२४

कविता

निहत्थी सड़कें

• प्रमोद झा

रात आए तो
अपने साथ कभी लाठी
तो कभी गोली लेकर आए
तो कुछ बात बने

बहेलिये नहीं आते रात में
तो नहीं डरती हैं चिड़ियाएँ
सही से सोती हैं बेखौफ चिड़ियाएँ
चिड़ियों पर बलात्कार नहीं होता
बिल्किस बानो की तरह
आँसुओं की बौछार नहीं होती
पेड़, पत्ते भी आँसू से नहीं भीगा करते

बहेलिये रात में भी यदि जाल बिछा दें
तो पकड़ में आ सकती हैं चिड़ियाएँ
बहेलिये जैसे दुष्ट और
दुष्कर्मी अकसर करते हैं
रात में शिकार
तो डरती हैं स्त्रियाँ भी
चिड़ियों की मानिंद
खौफनाक लगती हैं रातें

घर की रात, बाहर की रात
में है बड़ा फर्क
सड़कों की रात सीधी-सादी घरेलू
औरतों के लिए नहीं होती
रात में भी कामकाजी महिलाएँ
डर-डरकर चलती हैं सड़कों पर
सड़कों की रात हिफाजत
नहीं कर सकती
महिलाओं की आबरू की
बस टुकुर-टुकुर देखती हैं सड़कें
बेबस बुजुर्गों की तरह
दम भर प्रतिरोध नहीं कर
पाती सड़कों की रातें

दरिंदों के खतरनाक पंजों से
नहीं बच पाने वाली जवान लड़की
की अस्मत होती है तार-तार
कोई कलयुगी कृष्ण बचाने नहीं आता
बिलखती, रोती है लड़की सड़क पर
ये सड़क की रात उसके मन की
आँखों पर डालती
रहती है तेजाब
एक काली परछाईं की मानिंद
उसके संग चलती है खौफनाक रात

सड़कों की रात अलर्ट मोड पर नहीं होती
रात के बारह बजे सड़कों की रात से
मुकाबला करने कोई सचेत,
कर्तव्यनिष्ठ पुलिस अफसर नहीं पहुँचता
सिपाही आ भी जाए तो दरिंदों से
यारी कर ले
सड़कों की रात देखती है कीमती जेवरात
से लदी औरत को लुटते हुए
बेचारी कुछ नहीं कर पाती

स्ट्रीट लाइट में नहीं चमकती स्मार्ट पुलिसिंग
हादसों के बाद बस पुलिसिया पेट्रोलिंग
देखती रहती हैं बेचारी सड़कें

बी-३९२, काशीराम नगर, निकट महात्मा
बुद्ध पार्क, मुरादाबाद-२४४००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९८९७१६७६८६

अंगुलिमाल

● अमर नाथ

अंगुलिमाल बहुत खुश है आज। उसकी प्रतिमा पूरी होने जा रही है आज। कल ही तो उसने एक नवयुवक की हत्या कर, उसकी कनिष्ठा को काटकर ९९९वीं अंगुली अपनी माला में पहनी थी। आज उसे १०००वीं अंगुली मिलने वाली है। कपिलवस्तु का राजकुमार अकेला निहत्था आज इस वन से गुजर रहा है। उसकी कनिष्ठा को काटकर हजारवीं अंगुली माला में पिरोकर मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा। कितना मजा आएगा, जब वह भोला-भाला राजकुमार सड़क पर पड़ा, छटपटा रहा होगा और मैं उसकी अंगुली अपनी माला में पहनकर अट्टहास करूँगा। सुना है, बहुत बड़ा राजकुमार है वह। शायद बाप ने किसी बात से नाराज होकर घर से निकाल दिया होगा, तभी तो जंगल-जंगल भटकता फिर रहा है। आज उसकी सारी भटकन समाप्त कर दूँगा। मेरा नाम भी अंगुलिमाल नहीं, जो वह मुझसे बचकर चला जाए।

वह इधर सोच ही रहा था कि उसे कुछ दूरी पर एक परछाईं आती दिखाई पड़ी। हो सकता है, वही हो। यह सोचकर उसने अपना विशाल खाँड़ा हवा में लहराया। कल मारे गए नवयुवक का खून, उस पर अभी तक जमा था। उसकी आँखें हिंस्र हो उठीं। कमर तक फैले हुए छितरे बाल, लंबी घनी बेतरतीब दाढ़ी और विकराल मूँछें, उसके काले-बदसूरत चेहरे को और अधिक भयावह बना रही थी। वह पहाड़ी की चोटी से फुर्ती से कूदता हुआ नीचे पगडंडी पर आकर खड़ा हो गया। तभी गेरुआ वस्त्रधारी एक नवयुवक, मुसकराता हुआ, धीमे-धीमे उसके पास से गुजरने लगा। अंगुलिमाल चिल्लाकर बोला, "रुक जा! कहाँ जा रहा है? जो कुछ भी तेरे पास है, उसे मेरे हवाले कर दे। आज तेरी जिंदगी का आखिरी दिन है।"

वह सौम्य मुखड़ा उसकी तरफ देखता, मुसकराता रहा। फिर बड़े शांत स्वर में बोला, "मेरे पास तो कुछ भी नहीं है, वत्स। यह शरीर भी तो मेरा नहीं है। क्या करोगे तुम मेरा यह शरीर लेकर?" इतना कहकर वह मंथर गति से आगे बढ़ने लगा। अंगुलिमाल ने झट आगे बढ़कर उसके सामने अपना विशाल खाँड़ा तान दिया। दहाड़ते हुए बोला, "रुक जा! जाता कहाँ है? क्या तू ही कपिलवस्तु का राजकुमार है? राजकुमार होकर भी तू कहता है कि मेरे पास कुछ नहीं है? आज तू मुझसे बचकर नहीं जा सकता। रुक जा!"

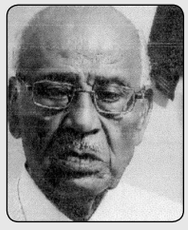

वरिष्ठ साहित्यकार। 'गुलाब और काँटे' (गजल-संग्रह), 'सागर मंथन' (खंड-काव्य), 'छंद सागर', 'नारी नहीं हो तुम अबला' (नारीप्रधान गीत-संग्रह) एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। विद्या वाचस्पति एवं विद्यासागर, आध्यात्मिक काव्य भूषण, संपादक शिरोमणि, साहित्य गौरव सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

बुद्ध मुसकराए। बोले, "मैं जा ही कहाँ रहा हूँ? मैं तो खड़ा हूँ तुम्हारे ही सामने। आओ। मुझे मार डालो, अगर मार सकते हो तो। मेरा यह पापी शरीर अगर तुम्हारे काम आ जाए तो इससे अच्छी और क्या बात होगी? क्या करोगे मेरे शरीर का? लो, इसे पंचतत्त्व में विलीन कर दो, वत्स।" और वह शांत चेहरा मुसकराता रहा। अंगुलिमाल आश्चर्यचकित हो उसे घूरने लगा। यह कैसा इनसान है? मृत्यु से भी नहीं डर रहा। कह रहा है, ले लो मेरा शरीर। हे भगवान्! क्या हो गया है मुझे? मेरे कदम क्यों नहीं बढ़ रहे आगे? मेरे हाथ भी जाम हो गए हैं। खाँड़ा उठ नहीं रहा है। क्या यह कोई मायावी है या कोई सिद्ध योगी? नहीं!

यह तो एक साधारण मनुष्य ही दिखाई पड़ रहा है। लेकिन मेरे पैर उठ क्यों नहीं रहे? क्या हो गया है मुझे?

बुद्ध मुसकराए जा रहे थे और अंगुलिमाल पसीना-पसीना हो रहा था। उसके चेहरे पर आश्चर्य और जिज्ञासा ने अपना घर बना लिया। वह बार-बार आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा था, परंतु पैर जैसे जंजीर में जकड़ गए थे। खाँड़ा हाथ से छूटकर नीचे गिर पड़ा। भौचक्का सा वह भरभराकर बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा। बुद्ध ने उसे उठाकर गले लगा लिया और सिर पर हाथ फेरते हुए बुदबुदाने लगे—'शान्तं पापम्।' फिर उसकी अंगुली थामे, वे धीमे-धीमे आगे बढ़ने लगे और अंगुलिमाल खिंचा चला गया, उनके पीछे, एक बच्चे जैसा।

□

संघ में अंगुलिमाल पूरी निष्ठा, भक्ति और समर्पण के साथ भगवान् बुद्ध के चरणों में लीन हो गया। भूल गया कि वह कभी भयानक डाकू था।

जनता उसके नाम से काँपती थी। भगवान् के प्रवचन के समय वह प्रथम पंक्ति में सबसे आगे बैठता। प्रवचन की समाप्ति के पश्चात् ध्यानमग्न होने का पूरा प्रयास करता। सभी श्रमणों की तन-मन से सेवा करता। परंतु भगवान् बुद्ध ने अभी तक उसे भिक्षाटन के लिए अनुमति नहीं दी थी। वे उसके सिर पर हाथ फेरते हुए, हमेशा मुसकराते हुए उसकी प्रत्येक जिज्ञासा शांत करते। वह संघ का प्रत्येक काम बड़ी तेजी व मनोयोग से करता। आश्रम से लगभग एक मील दूरी पर स्थित नदी से पानी वह दौड़-दौड़कर लाता। पेड़ों पर चढ़कर फल तोड़ता। आश्रम की नित्य सफाई करता। प्रवचन से पूर्व, फर्श की सफाई करने में उसे आत्मिक संतोष मिलता। जब बुद्ध समाधि अवस्था में होते, तो वह उनके चरणों में बैठकर ध्यान लगाने का प्रयास करता। प्रभु व संघ की देखभाल में ही दिन बीतते गए।

एक दिन भगवान् बुद्ध ने समाधि से जगकर अंगुलिमाल को पुकारा। वह भागता हुआ आकर दंडवत् उनके चरणों में गिर पड़ा। बुद्ध ने उसे उठाकर मुसकराते हुए कहा, "श्रावक, आज से तुम्हें भिक्षाटन के लिए जाना है। यह संघ का नियम है। स्वयं भिक्षा प्राप्त कर उदरपूर्ति करो। देखो अंगुलिमाल! जो कुछ भी अब तक तुमने समाज को दिया है, वही सबकुछ अब समाज तुम्हें लौटाएगा। तुमको अपने क्रोध पर नियंत्रण रखना है। अगर तुम नियंत्रण रखने में सफल हो गए तो समझ लो, तुम अच्छे परिव्राजक बन गए। जाओ, धैर्यपूर्वक भिक्षा प्राप्त कर लाओ। तुम्हारी पहली भिक्षा का पहला कौर गुरु को समर्पित होगा। जाओ!"

अंगुलिमाल ने ढूँढ़कर एक घटखर्पर उठाया और भगवान् के चरणों को छूकर मुसकराते हुए चल दिया बस्ती की ओर भिक्षाटन के लिए। जैसे ही उसने बस्ती में प्रवेश किया कि पूरी बस्ती में शोर मच गया। 'भागो-भागो! अंगुलिमाल आया है।' गली में चलते हुए बच्चे व महिलाएँ घबराकर घरों की ओर भागने लगे। छतों पर चढ़कर लोग उसे घूरने लगे। उसके कारनामों को याद कर-कर जनता का गुस्सा धीरे-धीरे बढ़ने लगा। छतों से आदमियों ने उसके ऊपर कंकड़-पत्थर बरसाने शुरू कर दिए। अंगुलिमाल ने एक दरवाजे पर पहुँचकर अलख जगाई, 'भिक्षां देहि। भिक्षां देहि।'

दरवाजे को एक औरत ने खोला और सामने अंगुलिमाल को देखते ही चीखती हुई अंदर भाग गई। तभी उसका पति बाहर आया और उसके मुँह पर थूककर खटाक से दरवाजा बंद कर लिया।

अंगुलिमाल आगे बढ़ा और दूसरे दरवाजे पर फिर आवाज दी—'भिक्षां देहि··· !' परंतु वह दरवाजा खुला ही नहीं। वह गली-गली घूमता हुआ, अलख जगाता हुआ जा रहा था—'भिक्षां देहि। भिक्षां देहि।' बच्चे उसके पीछे-पीछे भाग रहे थे। कोई कीचड़ फेंक रहा था, तो कोई गोबर, तो कोई मिट्टी। कोई पत्थर मार रहा था, तो कोई जूते। परंतु अंगुलिमाल वीतरागी बना, घटखर्पर हाथ में लिये, 'भिक्षां देहि' की रट लगाए, निरंतर आगे बढ़ता चला जा रहा था। अचानक एक दरवाजा खुला। उसमें से एक औरत ने उसे देखते ही उसके सिर पर एक पत्थर दे मारा। वह उसी नवयुवक की विधवा थी, जिसका उसने कुछ दिन पहले ही वध किया था। पत्थर उसकी दाईं आँख पर जाकर लगा। आँख की पुतली छिटक-कर दूर जा गिरी और फूट पड़ी रक्तगंगा, जो उसके अंतर का कलुष धोते हुए सारे शरीर को नहलाने लगी। बच्चे उस पर लगातार पत्थर बरसाते जा रहे थे। एक बड़ा सा पत्थर उसके माथे पर आकर लगा। वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। घटखर्पर टूटकर खिट्टों में बदल गया। परंतु वह अब भी बुदबुदाए जा रहा था, "भिक्षां देहि। भिक्षां देहि।' तभी उस औरत का दस वर्षीय बेटा बाहर निकला और हाथ में एक पत्थर लेकर अंगुलिमाल की अंगुलियाँ कूटते हुए चिल्लाने लगा—"इसी ने मेरे बाप को मारा है। उसकी अंगुली काटी थी। आज मैं इसकी सारी अंगुलियाँ कुचल-कुचलकर काट डालूँगा और पहना दूँगा इसी के गले में। अंगुलियों की माला पहनने का बड़ा शौक है न इसे। और वह पागलों की तरह उसकी अंगुलियों को पत्थर से कूटने लगा। कभी उसके बाल पकड़कर खींचता तो कभी पत्थर से उसकी अंगुलियाँ कूटता। अंगुलिमाल की अंगुलियों से खून की धार बहने लगी और वह पीड़ा सहते-सहते बेहोश हो गया।

थोड़ी देर बाद उसे लगा कि उसकी आँख के आगे लाल-लाल परछाईं सी पड़ रही है। माथे से बहता रक्त उसकी दूसरी आँख की पलकों पर जम गया था। सामने सूरज पूरी गरमी के साथ चमक रहा था। पीड़ा से शरीर काँप रहा था। अचानक उसे लगा कि कोई उसके शरीर को सहला रहा है। उसने आँख खोलकर देखना चाहा, परंतु दर्द के मारे नहीं खोल पाया। तभी उसके कानों में पड़ा, "भदंत, उठो। तुम सच्चे परिव्राजक बन गए।"

भगवान् बुद्ध उसे उठाकर अपनी गोद में लिटाए हुए, उसके जख्मों को अपने चीवर से पोंछते जा रहे थे, परंतु अंगुलिमाल को अचानक एक हिचकी आई और प्राण उसका साथ छोड़ गया। तभी संघ के अनेक भिक्षुक वहाँ एकत्र हो गए। भगवान् बुद्ध बोले, "आज अंगुलिमाल मुक्त हो गया है, इसके लिए आप सभी शांति-पाठ करें। इसके पार्थिव शरीर को मेरी कुटिया के सामने भूमिस्थ करो। इसका अंतिम संस्कार मैं स्वयं करूँगा।

कुछ दिनों बाद संघ के सभी भिक्षुक भगवान् बुद्ध के पास एकत्र हुए। जिज्ञासा प्रकट की—"प्रभु, अंगुलिमाल इतना बड़ा पापी था कि उसने ९९९ व्यक्तियों की हत्या कर उनकी अंगुलियों को काटकर अपनी माला में पिरो डाला। फिर भी वह मात्र कुछ ही महीनों की आपकी संगति पाकर जीवन-मरण के व्यापार से कैसे मुक्त हो गया? और हम, अपने बाल्यकाल से ही आपकी सेवा करते चले आ रहे हैं, धर्म व संघ की प्रत्येक नीति का पालन कर रहे हैं, परंतु हमें अभी तक

शांति नहीं मिली। ऐसा क्यों हो रहा है प्रभु? हमने तो कोई पाप भी नहीं किया। फिर भी हम अभी तक अशांत हैं और वह अंगुलिमाल आज पहले दिन ही भिक्षाटन को निकला और मुक्त हो गया। ऐसा कैसे संभव है, भगवन्!?"

गौतम बुद्ध के चेहरे पर शांत मुसकान खिल गई। बोले, "आप सभी पूरे तन-मन से धर्म व संघ के सभी नियमों का पालन कर रहे हैं, यह मैं जानता हूँ। काम, क्रोध, लोभ, मोह पर आपने विजय प्राप्त कर ली है। परंतु मोक्ष प्राप्ति के लिए केवल इन चार दुर्गुणों पर ही विजय प्राप्त करना काफी नहीं है। यह शरीर कष्ट को जितनी तीव्रता से सहन करने का आदी होगा, उतनी ही जल्दी वह सुख-दुःख के बीच की खाई को पाट सकेगा। जब उसे दुःख सताएगा ही नहीं, तो सुख और दुःख में अंतर रहा ही कहाँ? जीवन में किए हुए अपकर्मों के प्रायश्चित्त रूप में आप जितनी तीव्रता से उसके कष्टों को भोगेंगे, उतनी ही जल्दी आप मुक्त होंगे। कष्ट सहने की तीव्रता व समय का गुणनफल ही तो मुक्ति है। यह तीव्रता जितनी कम होगी, समय उतना ही अधिक होगा। हो सकता है कि अनेक जन्म लेने पर भी मुक्ति न मिले। कष्ट सहने की तीव्रता जितनी अधिक होगी, समय उतना ही कम होता चला जाएगा, जैसा कि अंगुलिमाल के साथ हुआ। उस दिन बस्ती में उसने जितनी तीव्रता के साथ अपने प्रायश्चित्त रूपी कष्टों को हँस-हँसकर स्वीकार किया, समय घटता-घटता मात्र कुछ घंटों का ही रह गया और वह मुक्त हो गया। मैं स्वयं अभी तक उस मुक्ति-मार्ग का एक पथिक ही हूँ। परंतु अंगुलिमाल बहुत तेजी से, मुझसे भी आगे निकल गया। यही तो उसकी विशेषता थी। जब उसका शरीर दूसरों को कष्ट देने में लगा, तब भी उसने अति कर दी थी और जब स्वयं कष्ट को भोगा, तब भी उसने अति ही की। वह एक अति-मानव था। उसे तो मुक्त होना ही था।

साअ
४०१-ए, उदयन-१, बँगला बाजार
लखनऊ-२२६००२
दूरभाष : ९४५१७०२१०५

कविता

दो कविताएँ

● रचना मीना

जीवन के हर क्षेत्र में रचनात्मकता अपनाती रचना मीना ने भावाभिव्यक्ति की सरसता और रचनात्मक लेखन शैली के चलते मीडिया और कई संगठनों के लिए लेखन कार्य किया है। उनका एक कविता-संग्रह 'मन' प्रकाशित और एक कहानी-संग्रह शीघ्र प्रकाश्य।

जग से परे

उद्बोध मन के तुम सुनो मन से!
जग से परे, तम से घिरे,
कुछ और भी जग हैं।
दृष्टि के बाणों से बचते,
जिह्वा के तानों से बचते,
वृष्टि को सीमा पर थामे
और भी दृग हैं।
जग से परे, तम से घिरे
कुछ और भी जग हैं!

घन निरंतर गरजते हैं
और बरसकर रिक्त होते।
निःशब्द बरसे एक घटा और
अंत तक नम हैं।
जग से परे, तम से घिरे
कुछ और भी जग हैं!

प्रस्तरों के घाव डसते,
मार्ग में काँटों से लड़ते,
विकट पथ पर अडिग बढ़ते
और भी पग हैं।
जग से परे, तम से घिरे
कुछ और भी जग हैं॥

वेग

धीमे-धीमे, बहते-बहते
कुछ सुनते कुछ कहते-कहते,
जीवनधारा का वेग रुका।
कुछ चिंतन में, कुछ मंथन में
कुछ ठिठका इस परिवर्तन में।
क्या बदल गया अभिप्राय ध्येय?
औचित्य नहीं अब बहने का
या मार्ग छोड़ बहना होगा?
या बाँध बनाकर इस प्रवाह का
वेग यहीं सहना होगा?
कुछ नव अंकुर मर जाएँगे!
जो तकते थे तृप्ति की राह
वे पंछी उड़ अब कहीं जाएँगे?
जिनके घट रीते संध्या से
वे रीते ही रह जाएँगे?
ठहरूँ या बहूँ, क्या सुनूँ-कहूँ
यह शोर हृदय का कैसे सहूँ?
बहते रहना तो कर्म ही था,
कर्तव्य था जीवन मर्म ही था।
ठहरूँ कैसे, मुड़ जाता हूँ।
रुक जाने से अच्छा है अब
नदिया से ही मिल जाता हूँ।
मैं, मैं ना रहूँगा पता मुझे
खो जाऊँगा उसके जल में,
पहचान नहीं मेरी होगी पर
इस बाधा पर ठहर गया तो
नव अंकुर मर जाएँगे!
वे रीते घट, प्यासे पंछी
तृप्ति की राह न पाएँगे।
औचित्य ही क्या रह जाएगा?
जल होने का, बहने का गुण,
तब काम कहाँ किसके आएगा?

साअ
अनुराग निवास,
होटल अनुराग पैलेस, रणथंभौर रोड,
सवाईमाधोपुर-३२२००१ (राज.)
दूरभाष : ९६३६००२२२२

सात गजलें

● नरेश शांडिल्य

प्रतिष्ठित कवि, दोहाकार, शायर, नुक्कड़ नाट्यकर्मी, समीक्षक और संपादक। विभिन्न विधाओं में सात मौलिक कविता-संग्रह प्रकाशित तथा आठ पुस्तकों का संपादन। हिंदी अकादमी का साहित्यिक कृति सम्मान; वातायन (लंदन) का अंतरराष्ट्रीय कविता सम्मान, कविता का प्रतिष्ठित 'परंपरा ऋतुराज सम्मान'। सलाहकार सदस्य फिल्म सेंसर बोर्ड, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।

: एक :

तेरी मुझसे जो ये नजदीकियाँ हैं
इन्हीं के दम से ये रंगीनियाँ हैं

ये तुझ पर है कि मुझको कैसे बरते
तेरी मर्जी में मेरी मर्जियाँ हैं

रहूँ क्यों मुंतजिर में तेरी 'हाँ' का
'नहीं' में ही निहाँ जब हामियाँ हैं

दिल-ए-दरिया में मेरे तैरतीं ये
तेरी आँखें हैं या दो मछलियाँ हैं

मेरी ही अर्ज में शायद कमी है
अभी तक अनसुनी सब अर्जियाँ हैं

: दो :

राह तकें पथराई आँखें
बिरहा में कुम्हलाई आँखें

खूब लबालब थीं झीलों-सी
हैं अब गहरी खाई आँखें

वो भी दिन थे गदराए-से
रहती थीं मस्ताई आँखें

डबडब-डबडब प्रेम-पसीजी
तेरे तप में ताई आँखें

देखो कैसी जर्द पड़ी हैं
अब ये इश्क सताई आँखें

: तीन :

यूँ कहने को बहकता जा रहा हूँ
मगर सच में सँभलता जा रहा हूँ

उलझता जा रहा हूँ तुझमें जितना
मैं उतना ही सुलझता जा रहा हूँ

भले बाहर से दिखता हूँ मचलता
मगर भीतर ठहरता जा रहा हूँ

जमीं से पाँव भी उखड़े नहीं हैं
फलक तक भी मैं उठता जा रहा हूँ

नदी इक मुझमें मिलती जा रही है
मैं सागर-सा लहरता जा रहा हूँ

: चार :

महक उठे हैं रस्ते इस खबर से
वो गुजरेंगे अभी शायद इधर से

हवा लेकर के आई है सँदेसा
सँवरकर वो अभी निकले हैं घर से

कोई उनको कहे मुझको भी देखें
भले देखें मुझे तिरछी नजर से

उन्हें हँसते हुए देखा है मैंने
हँसी मिलती है उनकी गुलमुहर से

नहीं करता है जी उठने का बिल्कुल
मैं जब चलता हूँ उठकर उनके दर से

: पाँच :

गजल मैं तुझको गाना चाहता हूँ
सरापा तुझको पाना चाहता हूँ

तेरे पहलू में काटूँ उम्र सारी
कोई ऐसा बहाना चाहता हूँ

मेरे अंतर में फैली गूँज है तू
तुझे सबको सुनाना चाहता हूँ

करीने से सजाकर दिल के टुकड़े
मैं सारे गम भुलाना चाहता हूँ

कुबेरी-शान की चाहत नहीं है
कबीराना खजाना चाहता हूँ

: छह :

उसके आगे मैं सर झुकाऊँ क्या
खुद को यूँ और भी सताऊँ क्या

कैसे तुझको न याद रखूँ मैं
साँस लेना ही भूल जाऊँ क्या

छोड़ दूँ जिंदगी का दर क्योंकर
मर्सिया खुद ही अपना गाऊँ क्या

तोड़कर आइने से हर यारी
खुद को अब खुद से ही छुपाऊँ क्या

तू भी जिद्दी है, मैं भी हूँ, फिर भी
तू कहे तो तुझे मनाऊँ क्या

: सात :

स्याह-उजला हमारा सब देखें
हमको देखें तो बाअदब देखें

देखना तो हमें भी है तुमको
देखना है कि तुमको कब देखें

तब जो देखा था उसको क्या देखा
देखना है उसे तो अब देखें

तेरे रुख से नजर हटे पहले
हम तेरी बेरुखी तो तब देखें

ठीक कहता है तू मगर वाइज
खुद को देखें कि तेरा रब देखें

सा.अ.

सत्य सदन, ए-५, मनसा राम पार्क,
संडे बाजार लेन, उत्तम नगर,
नई दिल्ली-११००५९
दूरभाष : ९८६८३०३५६५

साहित्य अपने भीतर की दुनिया को स्पष्टता देने का माध्यम : निर्मल वर्मा

● सदानंदप्रसाद गुप्त

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जिन साहित्यकारों ने हिंदी के विचारात्मक गद्य को समृद्ध करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है; हिंदी को इस रूप में समर्थ बनाया कि उसमें किसी भी विषय को व्यक्त करने की क्षमता आई, उनमें अज्ञेय, निर्मल वर्मा, कुबेरनाथ राय, रमेशचंद्र शाह का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। इनमें भी कई दृष्टियों से निर्मल वर्मा अलग खड़े दिखाई देते हैं। निर्मल वर्मा के गद्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की प्रौढ़ विचारात्मकता, जयशंकर प्रसाद की दार्शनिकता, महादेवी वर्मा की रागात्मकता, वासुदेवशरण अग्रवाल की चिंतनपरकता एक साथ दिखाई पड़ती है। निर्मल वर्मा के गद्य में अद्‌भुत मोहकता विद्यमान है, जो आज के अन्य गद्य लेखकों में नहीं है। निर्मल वर्मा पहले कथाकार और यात्रा-वृत्तांत लेखक के रूप में हमारे समक्ष आते हैं, बाद में उनका निबंधकार रूप हमारे सामने आता है। उनके निबंध विचारात्मक गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। यह निर्भ्रांत रूप से कहा जा सकता है कि निर्मल वर्मा का श्रेष्ठ उनके निबंधों में उतरा है। निर्मल वर्मा ने स्वयं निबंध को अपने लेखन का महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य हिस्सा माना है। अपने निबंधों में निर्मलजी ने कला, साहित्य, संस्कृति, समाज, भाषा जैसे विषयों पर अपने विचार बहुत ही स्पष्ट ढंग से व्यक्त किए हैं। निर्मल वर्मा साहित्य के स्वरूप पर विचार करते हुए उसे मनुष्यत्व को प्राप्त करने का पवित्र साधन मानते हैं—"साहित्य यद्यपि मनुष्य की किसी भी भौतिक आकांक्षा की पूर्ति का साधन नहीं बनता फिर भी मनुष्य साहित्य की सृष्टि इसलिए करता है, क्योंकि साहित्य मनुष्य के भीतर मनुष्यत्व को पाने की आकांक्षा जगाता है ('मनुष्यत्व से साक्षात्कार', दूसरे शब्दों में, पृष्ठ ११)। निर्मल वर्मा का कथन ध्यातव्य है—'साहित्य वह घर है—बिना दीवारों का घर, जहाँ वह पहली बार अपने मनुष्यत्व से साक्षात्कार करता है। वहाँ उसे मनुष्यता के अखंडित सत्य से साक्षात्कार होता है (वही, पृष्ठ १२)। निर्मल साहित्य को ऐसा उन्मुक्त क्षेत्र मानते हैं, जहाँ मनुष्य को अपने 'पूर्ण' होने का बोध होता है (वही, पृष्ठ १६)। निर्मलजी की दृष्टि में साहित्य जीवन के अर्धसत्यों के बीच संपूर्ण सत्य पाने की अदम्य पिपासा से उत्पन्न होता है। वे यह भी मानते हैं कि साहित्य रचना ऋण से उऋण होने का विनम्र प्रयास है, जो हमने पूर्ववर्ती लेखकों से प्राप्त किया है (कहानी मेरे लिए धुँधली अनुभूतियों के प्रदेश को शब्दों के आलोक में देखना है, साहित्य का आत्मसत्य, पृष्ठ १६३-१६४)। साहित्य को स्थूल

मनीषी विद्वान्-लेखक। कृतकार्य आचार्य, हिंदी विभाग, दीनदयाल उपाध्याय, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर। पूर्व कार्यकारी अध्यक्ष (१५ सितंबर, २०१७ से १४ सितंबर, २०२२ तक), उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ।

प्रयोजनीयता से जोड़ने वालों के लिए निर्मल वर्मा की यह टिप्पणी एक उचित सबक है। वस्तुत: सामाजिकता का अत्यधिक दबाव रचना को 'विपन्न' बनता है। निर्मल यह अनुभव करते हैं कि बाह्य जगत् की अपूर्व विराटता को मनुष्य के सामाजिक संबंध तक संकुचित करना और समय के कालबोध को 'वर्तमान' तक सीमित रखना लेखक के समूचे परिवेश के वैविध्य और समृद्धि को विपन्न बनाना है (वही, पृष्ठ २६)। निर्मलजी का मानना है कि कला का सत्य इतिहास के खूँटों से नहीं बँधा होता, न ही वह सामाजिक परिवर्तनों द्वारा परिभाषित किया जा सकता है (साहित्य के प्रासंगिक प्रश्न, आदि, अंत और आरंभ, पृष्ठ १२९)।

निर्मल वर्मा यह मानते हैं कि एक रचनाकार जब लिखता है तो उसके सामने कोई स्थूल उद्‌देश्य नहीं रहता, वह यह नहीं सोचता कि वह अपने सुख या समाज के लिए लिख रहा है, अपितु वह अपने भीतर की दुनिया को एक स्पष्टता देने का प्रयास करता है, उसमें एक तर्क पिरोना चाहता है, जो ऊपर से एकदम अराजक और तर्कहीन जान पड़ता है और जब वह यह कर पाता है, चाहे कहानी के माध्यम से करे या कविता के माध्यम से तो न केवल उसे संतोष मिलता है, अपितु वह चीज केवल उसकी संपत्ति बनकर नहीं रह जाती, सार्वजनिक हो जाती है (विनीता गुप्ता से बातचीत/संसार में निर्मल वर्मा, संस्करण २००६, पृष्ठ ७९)।

रचनाकार का संबंध किसी परिवेश, किसी परंपरा के साथ अनिवार्यत: होता है, जहाँ उसके संस्कार निर्मित होते हैं। वह वस्तुत: अपनी रचना में अपने संस्कार को अभिव्यक्त करता है—"हर लेखक लिखता है अपने संस्कार को अभिव्यक्त करने के लिए। चूँकि वह किसी खास परिवेश, खास परंपरा से आया है, स्वाभाविक रूप से उस संस्कृति, परिवेश की छाया उसे पर पड़ेगी ही। यह इसलिए भी जरूरी है, क्योंकि अपनी रचना में वह हर तरह के रूपक और प्रतीकों का इस्तेमाल करता है। ये रूपक और प्रतीक उसे अपने ही धर्मशास्त्रों से, अपने ही महाकाव्यों और परंपरागत

कृतियों से प्राप्त होते हैं और जो इस निधि का लाभ नहीं उठाता, वह बेहद विपन्न लेखक है (वही, पृष्ठ ८०)। विशेष विचारधाराग्रस्त लेखकों ने भारतीय रचनाकारों द्वारा हिंदू प्रतीकों के इस्तेमाल को प्रश्नांकित किया है और उसे सांप्रदायिकता की कोटि में रखने पर जोर दिया है। निर्मल वर्मा प्रतिप्रश्न करते हैं कि अगर भारतीय हिंदू प्रतीकों का इस्तेमाल नहीं करेंगे तो क्या ईसाई और मुसलिम प्रतीकों इस्तेमाल करेंगे? ये प्रतीक तो सहज रूप से हमारे रक्त में प्रवाहित होते हैं। जब हम यूरोप का साहित्य पढ़ते हैं तो बाइबिल और यूनानी पौराणिक ग्रंथों से लिये गए रूपक व प्रतीक मिलते हैं। हम उन्हें स्वीकार करते हैं। नस्लीय दृष्टि से क्या हम उसे देख पाएँगे? आज हम निराला का 'तुलसीदास' या 'राम की शक्तिपूजा' पढ़ते हैं तो क्या यह कहेंगे कि यह हिंदूवादी कविता है? क्या हम उसे सांप्रदायिक कविता कहकर खारिज कर सकते हैं? निर्मलजी का स्पष्ट रूप से यह कहना है कि ऐसी बातें करना हमारी आलोचनात्मक विपन्नता का प्रतीक है (वही, पृष्ठ ८०)।

अज्ञेय और निर्मल वर्मा ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने साहित्य की स्वायत्तता, साहित्यकार की स्वतंत्रता और लेखक के दायित्व पर भारतीय परंपरा के परिप्रेक्ष्य में विचार किया है; मार्क्सवादी खाँचे से बाहर रखकर विचार किया है। सुशील सिद्धार्थ के प्रश्न के उत्तर में निर्मल वर्मा बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं कि एक कलाकार का यह दायित्व होता है कि शब्दों पर जो कलुष जमा है, जो झूठ इकट्ठा हो गया है, उसे हटाकर उसे पूरी सच्चाई और प्रामाणिकता के साथ इस्तेमाल कर सके (संसार में निर्मल वर्मा, पृष्ठ १०५)।

निर्मल वर्मा प्रतिप्रश्न करते हैं कि अगर भारतीय हिंदू प्रतीकों का इस्तेमाल नहीं करेंगे तो क्या ईसाई और मुसलिम प्रतीकों इस्तेमाल करेंगे? ये प्रतीक तो सहज रूप से हमारे रक्त में प्रवाहित होते हैं। जब हम यूरोप का साहित्य पढ़ते हैं तो बाइबिल और यूनानी पौराणिक ग्रंथों से लिये गए रूपक व प्रतीक मिलते हैं। हम उन्हें स्वीकार करते हैं। नस्लीय दृष्टि से क्या हम उसे देख पाएँगे? आज हम निराला का 'तुलसीदास' या 'राम की शक्तिपूजा' पढ़ते हैं तो क्या यह कहेंगे कि यह हिंदूवादी कविता है?

निर्मल वर्मा साहित्य की स्थूल उपयोगिता से असहमत हैं। वे यह मानते हैं कि साहित्य कोई साधन नहीं है, वह अपने आपमें साध्य है। कला का सत्य उसकी उपयोगिता में नहीं, उसकी संरचना में है (साहित्य क्या करता है—क्या करती है कलाएँ/आदि, अंत और आरंभ, पृष्ठ १७३)। निर्मलजी का मानना है कि लेखक को अपनी भाषा के साथ सच्चा संबंध बैठाना चाहिए। उनकी दृष्टि में जब तक एक लेखक अपनी भाषा के साथ एक सच्चा, ईमानदार संबंध नहीं बिठा पाता, तब तक वह और कुछ भी हो सकता है, एक समर्थ या सच्चा लेखक नहीं हो सकता (वही, पृष्ठ १७८)। निर्मल वर्मा यह भी मानते हैं कि साहित्य तात्कालिक उद्देश्य को प्राप्त करने का साधन नहीं है। यह एक प्रकार से वामपंथी विचारधारा से स्पष्ट असहमति है। वे लिखते हैं—दुनिया की बाकी चीजें हमारी तात्कालिक जरूरतों और इच्छाओं की पूर्ति करती हैं—एक कलाकृति कभी ऐसा करने का दवा नहीं करती। कोई कहानी या कविता किसी तात्कालिक उद्देश्य को प्राप्त करने का साधन नहीं है (कला की प्रासंगिकता, भारत और यूरोप—प्रतिश्रुति के क्षेत्र, पृष्ठ ८८)।

भारतीय काव्यशास्त्र में साहित्य के प्रयोजन के विषय में अनेक रूपों में विचार किया गया है। निर्मल वर्मा भारतीय चिंतन-परंपरा में व्यक्त विचारों का सत्त्व ग्रहण कर अपनी बातों में दार्शनिक पुट देते हुए जो बात कहते हैं, वह उनकी कथन भंगिमा, भाषा-सौंदर्य और सत्यान्वेषण की उनकी अनोखी प्रवृत्ति की झलक देता है—"साहित्य जो हमें देता है, उसे हम देखते नहीं या देखकर अनदेखा कर देते हैं और जो हम उससे पाने की आशा करते हैं—कोई जीने का लक्ष्य, कोई विराट् सत्य, कोई सहारे का संबल, उसके बारे में वह कुछ भी नहीं कहता, चुप रहता है और हम एक बार भी नहीं सोचते कि शायद उसकी चुप्पी में ही कोई ऐसा भेद छिपा है, जो उसके अपने शब्दों में कहा गया है, जिसे हम सुन नहीं पाते। क्या बाहर की आवाजों के घटाटोप में साहित्य की आवाज इतनी दब गई है कि हम उसमें उसका निजी सत्य न देखकर अपना प्रयोजन ढूँढ़ते हैं।" (साहित्य का आत्मसत्य, पृष्ठ ३०, संस्करण २०१७)। निर्मल वर्मा साहित्य से स्थूल प्रयोजन की माँग को उपयुक्त नहीं मानते। उनका कहना है कि "यदि हम किसी साहित्यिक कृति को उसके प्रयोजनों, उद्देश्यों, लक्ष्यों के कुहासे से बाहर निकालकर केवल उसके 'आत्मिक सत्य' पर अपने को एकाग्र कर सकें तो हम उसकी सच्ची मूल्यवत्ता को पहचान सकेंगे" (वही, पृष्ठ ३३)।

निर्मल वर्मा साहित्य के मूलभूत प्रश्नों पर भी विचार करते हैं। वे यह मानते हैं कि साहित्य के शाश्वत प्रश्न हैं—प्रेम—मृत्यु—संबंध, संबंध-विशृंखलता, संबंधों की उपस्थिति, अभाव। निर्मल का विचार है कि इन प्रश्नों से छुटकारा नहीं पाया जा सकता है। लेखक को इनको नए संबंधों में उजागर करना चाहिए (कहानी मेरे लिए धुँधली अनुभूतियों के प्रदेश को शब्दों के आलोक में देखना है, साहित्य का आत्मसत्य, पृष्ठ १३५)।

निर्मल वर्मा साहित्य के व्यापक और सार्वकालिक प्रभाव वाली भूमिका को रेखांकित करते हैं। उनका मंतव्य है कि साहित्य केवल तात्कालिक संतुष्टि प्रदान नहीं करता, अपितु उसका स्थाई महत्त्व होता है। वे लिखते हैं—"कागजों पर लिखे हुए शब्द कुछ घंटों या कभी-कभी अनेक महीनों और वर्षों तक हमें अपने में बाँधे रहते हैं। उनकी दृष्टि में यह एक जादू—एक चमत्कार है" (कला की प्रासंगिकता/भारत और यूरोप—प्रतिश्रुति के क्षेत्र, पृष्ठ ८९)। निर्मल वर्मा साहित्य के सार्वकालिक और सार्वभौमिक प्रभाव की प्रकृति पर भी विचार करते हैं। उनका यह भी मानना है कि चाहे कोई भी रचना किसी देश-काल में रची गई हो, वह हर वर्तमान में एक नया अर्थ ग्रहण कर लेती है"—साहित्य की उत्कृष्ट रचनाएँ सुदूर अतीत में रची होने के बावजूद मनुष्य के हर 'वर्तमान' में एक नई प्रासंगिकता लेकर पुनर्जन्म लेती हैं, अतीत में जन्म लेने पर भी वह विगत का अतिक्रमण कर लेती हैं और समय का ऐसा शाश्वत 'स्पेस' निर्मित करती हैं, जहाँ हर रचना एक-दूसरे की

समकालीन होती है, चाहे उसके जन्म का समय और स्थान कभी भी हो, कहीं भी हो। इसका प्रमुख कारण यह है कि साहित्य का आत्यंतिक संबंध मनुष्य की आंतरिक प्रकृति से होता है, न कि उन सामयिक घटनाओं से जो सतह के ऊपर से गुजर जाती है (वर्तमान समय में भाषा और साहित्य की स्थिति/साहित्य का आत्मसत्य, पृष्ठ ९२)।

रचना का परिवेश के साथ आत्मीय संबंध की अपेक्षा की जाती रही है। निर्मल वर्मा का भी मंतव्य है कि परिवेश का रचना में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनका कथन द्रष्टव्य है—"लेखक की जिम्मेदारी यही बनती है कि वह अपने परिवेश को सुरक्षित रख सके, अपने अतीत को पुनर्जीवित कर सके, क्योंकि स्वयं के परिवेश के बगैर कोई महान् रचना नहीं रची जा सकती" ('रिव्यू' लिखने से मेरे लेखन की शुरुआत हुई, साहित्य का आत्मसत्य, पृष्ठ १०३)।

भारतीय परंपरा में साहित्य को साधना का दर्जा दिया गया है। निर्मल वर्मा भी यह मानते हैं कि साहित्य रचना त्याग की अपेक्षा रखता है। उनकी दृष्टि में एक नियमित संयमित जीवन लेखक के लिए अति आवश्यक होता है। निर्मलजी के अनुसार जीवन में ऐश्वर्य भोग के साथ रचना में प्रसिद्धि प्राप्त करना असंभव है। वे यह मानते हैं कि एक लंबा, सार्थक, श्रेष्ठ लेखक जीवन बिताने के लिए कुछ नियम संहिता रखनी ही पड़ेगी (सच्चा लेखक विचारधारा का दास नहीं होता/साहित्य का आत्मसत्य, पृष्ठ ७९)। निर्मलजी का दोटूक कहना है कि जो सचमुच लेखन के दायित्व के प्रति ईमानदार है, उसकी गंभीरता को महसूस करता है, उसे उसी संयम और साधक के रूप में रहना चाहिए, जैसे कोई समाज-सुधारक या संन्यासी रहता है (वही)।

निर्मलजी यह मानते हैं कि उत्कृष्ट साहित्य मनुष्य की आत्मिक अनिवार्यता है। साहित्य के, संगीत के बिना एक गहरी शून्यता मनुष्य हमेशा महसूस करता रहेगा। इस शून्यता को भरने के लिए यदि साहित्य नहीं होगा तो वह ड्रग्स के पीछे भागेगा, शराबखोरी में डूबेगा, आत्म-निषेध और आत्म-संहार की क्रियाओं की शरण में जाएगा। सत्य के प्रति जानने का व्यसन जब तक जीवित रहेगा, तब तक मैं समझता हूँ कि लिखे हुए शब्द की गरिमा कभी भी नष्ट नहीं होगी (सच्चा लेखक विचारधारा का दास नहीं होता/साहित्य का आत्मसत्य, पृष्ठ ६९)।

साहित्य और दर्शन के अंतर्संबंधों पर अकसर चर्चा की जाती है; यों तो रचना में दार्शनिक विचारों का समावेश होता ही है। संस्कृत और हिंदी साहित्य, विशेषकर भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में विभिन्न दार्शनिक सिद्धांतों की अभिव्यक्ति हुई है, पर आमतौर पर यह माना जाता है कि साहित्य अनुभूति का क्षेत्र है और दर्शन विचार का। निर्मल वर्मा यह मानते हैं कि अनुभव और विचार में इस तरह वर्गीकरण करना गलत है। इससे सृजन और कलात्मक कृति कमजोर पड़ती है। पर विचार उसी रूप में कला में प्रविष्ट नहीं होता जैसे कि दर्शन-चिंतन में वह होता है। कविता और कहानी में उसकी छाया अत्यंत परोक्ष व सूक्ष्म ढंग से पड़ती है। कहानी मेरे लिए धुँधली अनुभूतियों के प्रदेश को शब्दों के आलोक में देखना है (साहित्य का आत्मसत्य, पृष्ठ १४०)।

अज्ञेय और निर्मल वर्मा स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद के ऐसे रचनाकार रहे हैं, जिन्होंने साहित्य की स्वायत्तता, साहित्यकार की स्वतंत्रता और साहित्य की प्रासंगिकता पर गंभीर ढंग से विचार किया है। दोनों का स्पष्ट मत है कि साहित्यकार को किसी विचारधारा का गुलाम नहीं होना चाहिए। पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे साहित्यकार को दायित्व-मुक्त करते हैं। यू.आर. अनंतमूर्ति के साथ अपनी बातचीत में निर्मल वर्मा एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर रेखांकित करते हैं कि 'लेखक को संतुलन बनाए रखते हुए तलवार की धार पर चलना होता है—वह न लोकप्रियता की ओर झुक सकता है, न हीं असंयम की ओर और इस संतुलन को साधे-साधे ही उसे प्रचलित नैतिकता या आचारसंहिता की शर्तों पर नहीं, अपनी ही शर्तों पर जुड़ने का प्रयास भी करना होता है (संसार में निर्मल वर्मा, पृष्ठ ८९)। लेखक की स्वतंत्रता निर्मलजी की दृष्टि में उसका अधिकार ही नहीं, बल्कि दायित्व भी है अपनी भाषा के प्रति, जो उसे परंपरा से मिली है, जिसमें रचना के द्वारा वह अपनी स्वतंत्रता को रूपायित करता है (लेखक की स्वतंत्रता—आज के संदर्भ में/दूसरे शब्दों में, पृष्ठ ७३)। आज के इस व्यावसायिक युग में जहाँ पूरे समाज में मूल्यमूढ़ता व्याप्त हो निर्मल की दृष्टि में वहाँ लेखक की स्वतंत्रता की चरितार्थता इस बात में है कि वह भाषा को अवमूल्यित होने से बचाए, ताकि उनकी सच्चाई को पूरी पवित्रता और प्रामाणिकता के साथ संप्रेषित कर सके (लेखक की स्वतंत्रता और स्वधर्म/भारत और यूरोप—प्रतिश्रुति के क्षेत्र, पृष्ठ ११२)। निर्मल वर्मा बार-बार इस बात को रेखांकित करते हैं कि स्वतंत्रता अनायास उपलब्ध चीज नहीं है, लेखक को उसे आयत्त करना पड़ता है, उसका रक्षण करना पड़ता है। निर्मल के शब्दों में हम उसे तुष्ट भाव से स्वीकार नहीं कर सकते। वह उस पौधे की तरह है, जिसे बराबर अपनी सतर्कता और चौकसी से सींचना पड़ता है। जरा सी आँख हटते ही वह मुरझाने लगता है (लेखक की स्वतंत्रता—आज के संदर्भ में/दूसरे शब्दों में, पृष्ठ ६५)।

वामपंथी आलोचकों ने साहित्य की स्वायत्तता को लेकर सवाल उठाए थे। स्थूल प्रयोजनीयता की प्रमुखता वामपंथी आलोचकों के समक्ष रही है। निर्मल वर्मा का कहना है कि साहित्य की स्वायत्तता का मतलब असामाजिक होना नहीं है। जिस हद तक कोई कविता या उपन्यास अपने अंतर्निहित सत्य के भीतर स्वायत्त होगा, उस हद तक वह अपने समय के लिए प्रासंगिक भी होगा। चेखव ने जो बात अपने बारे में कही थी, वह साहित्य पर कहीं ज्यादा लागू होती है। उसे अपने भीतर की पराधीनता को बूँद-बूँद निचोड़कर बाहर निकालना होगा, ताकि इसकी स्वतंत्र आवाज इतिहास की रेल-पेल और कोलाहल में साफ-साफ सुनाई दे सके (साहित्य के प्रासंगिक प्रश्न/आदि, अंत और आरंभ, पृष्ठ १३०)। निर्मल वर्मा की यह दृढ़ मान्यता है कि किसी कलाकृति का सत्य काल-परिवर्तन के साथ झूठा नहीं पड़ जाता, वह उत्तरोत्तर अपने नए अर्थ खोलता जाता है (वही, पृष्ठ १२९)।

साहित्य और लेखक की प्रासंगिकता को समसामयिकता से संबद्ध कर वामपंथी आलोचकों ने साहित्य को समयग्रस्त बना दिया। इसी आधार पर चयनधर्मी दृष्टि अपनाते हुए मध्यकालीन भक्त-कवियों, विशेषकर

गोस्वामी तुलसीदास को प्रश्नांकित किया गया। यह एक प्रकार से साहित्य में दलीय सिद्धांतों को प्रविष्ट कराना था। निर्मलजी ने साहित्य के संबंध में इस एकांगी दृष्टिकोण का विरोध किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से रेखांकित किया कि अपने युग के प्रति लेखक की प्रासंगिकता इससे सिद्ध नहीं होती कि वह किन तात्कालिक विचारधाराओं को अपनी रचना में व्यक्त करता है, किन दलित दलों के हितों का डंका बजाता है, बल्कि इसमें निहित होती है कि किस हद तक वह अपने भीतर की दमित वर्जनाओं से मुक्ति पाकर जीवन के उन सार्वभौमिक सत्यों को उजागर कर सके, जो हर समय और समाज के संदर्भ में प्रासंगिक होते हैं। हम बाहर से आरोपित प्रतिबद्धताओं से मुक्ति पाकर ही अपने साहित्यिक दायित्व को निभा पाते हैं (वही, पृष्ठ १२६)। वस्तुत: साहित्य को केवल वर्तमान में सीमित कर देना उसे दरिद्र बनाना है और विशेष विचारधारा से जोड़ना उसे संकीर्ण बनाना है। निर्मल वर्मा साहित्य में प्रतिबद्धता को प्रगतिवादियों की तरह नहीं देखते। प्रगतिवादी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता को अनिवार्य मानते हैं। इसने साहित्य के स्वरूप को विकृत किया है। निर्मल वर्मा इसका विरोध करते हैं। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि वे लोग, जो कलाकार से प्रतिबद्धता की माँग करते हैं, अकसर यह आशा करते हैं कि वह अपने को सामूहिक अनुभव के साथ जोड़ेगा, जबकि यह असंभव है, क्योंकि हर लेखक अपने अनुभव में नितांत अकेला है (सृजन में सौंदर्य और नैतिकता/शब्द और स्मृति, पृष्ठ १८, संस्करण १९७६)। निर्मल वर्मा यह मानते हैं कि जो लेखक सही अर्थों में प्रतिबद्ध होता है, प्रतिबद्धता उसके लिए आदर्श या त्याग या समाज-सेवा की समस्या न रहकर अपनी ही सृजन प्रक्रिया की एक अनिवार्य शर्त बन जाती है (वही, पृष्ठ ३३)।

प्रगतिवादी रचनाकारों और आलोचकों ने साहित्य को विचारधारा का अनुकर्ता बनाकर छोड़ दिया। निर्मल ने प्रगतिवादियों के इस दृष्टिकोण का स्पष्ट विरोध किया है। मूलचंद गौतम के साथ अपनी बातचीत में वे कहते हैं—प्रगतिवादियों से मेरा मतभेद इसलिए रहा है कि वे साहित्य और संस्कृति को उनके स्थान से विस्थापित करके राजनीति को उसका निर्माता बनाने की शक्ति प्रदान करते हैं। मार्क्सवादी आलोचक कहते हैं कि राजनीति या किसी खास राजनीतिक मतवाद को स्वीकार करने के बाद ही हम अपने समाज का जायजा ले सकते हैं और उस दृष्टि के आधार पर ही हमें साहित्य की रचना करनी चाहिए। यह दृष्टि एकांगी है (दस्तावेज, संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अंक ८४, पृष्ठ ४२-४३)। निर्मल वर्मा इस बात को रेखांकित करते हैं कि स्वतंत्रता के बाद मार्क्सवादी मतवाद से प्रेरित रचना-आलोचना ने साहित्य के उत्कृष्ट अंश से समाज को वंचित रखा है—पिछले तीस-चालीस वर्षों में राजनीतिक मतवादी आलोचकों के कारण साहित्य और कला के उत्कृष्ट अंश का उचित मूल्यांकन नहीं हो सका। साहित्य का अपना परिवेश क्या है, उसे समझने के लिए क्या मर्यादाएँ होनी चाहिए—यह सोचने की ज्यादा कोशिशें नहीं हुईं (सुशील सिद्धार्थ से बातचीत/संसार में निर्मल वर्मा, पृष्ठ १०८)। निर्मल वर्मा का यह कहना सही है कि मतवाद से ग्रस्त आलोचना ने श्रेष्ठ और निम्न साहित्य का अंतर करने के विवेक को कुंठित कर दिया। निर्मल वर्मा आलोचना की उचित भूमिका पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि "अच्छी आलोचना केवल कुछ पुस्तकों का आकलन करना ही नहीं है। अच्छी आलोचना से जीवंत साहित्य का जो परिवेश बनता है, पढ़ने की संस्कृति का जो वातावरण तैयार होता है, एक क्रिटिकल फैकल्टी हमें यह विवेक देती है कि किस तरह से हम अच्छे, सशक्त साहित्य को दुर्बल और निष्प्राण साहित्य से अलग करने की क्षमता प्राप्त कर सकते हैं—यह विवेक यदि आलोचना हमें नहीं प्रदान करती, उलटे यदि इस पर परदा डालती है, खासकर राजनीतिक पूर्वग्रहों से जो आलोचनाएँ की जाती हैं, उससे तो पता ही नहीं चलता कि एक कलाकृति श्रेष्ठ है या नहीं", (सच्चा लेखक विचारधारा का दास नहीं होता/साहित्य का आत्मसत्य, पृष्ठ ७०)।

प्रगतिवादी रचनाकारों और आलोचकों ने साहित्य को विचारधारा का अनुकर्ता बनाकर छोड़ दिया। निर्मल ने प्रगतिवादियों के इस दृष्टिकोण का स्पष्ट विरोध किया है। मूलचंद गौतम के साथ अपनी बातचीत में वे कहते हैं—प्रगतिवादियों से मेरा मतभेद इसलिए रहा है कि वे साहित्य और संस्कृति को उनके स्थान से विस्थापित करके राजनीति को उसका निर्माता बनाने की शक्ति प्रदान करते हैं।

विचारधारा ग्रस्त रचना और आलोचना ने हिंदी साहित्य को सर्वाधिक क्षति पहुँचाई है। निर्मल इसे अनुभव करते हैं और क्षोभ प्रकट करते हैं, जहाँ विचारधारा का वर्चस्व स्वीकार किया जाता है, वहाँ साहित्य दूसरे दर्जे की भूमिका निभाने के लिए बाध्य होता है। दु:ख की बात यह है कि अन्य भारतीय भाषाओं के मुकाबले हिंदी के साथ यह दुर्भाग्य गहरा रहा (वही, पृष्ठ ७६)। वामपंथी दृष्टिकोण का कितना घातक प्रभाव साहित्य पर विशेषकर हिंदी साहित्य पर पड़ा है, इसे अच्छी तरह निर्मलजी अनुभव करते हैं। वादग्रस्तता के कारण एक ही प्रकार का प्रचारात्मक साहित्य लिखा गया और उसे अध्ययन-अध्यापन का विषय बनाया गया। इस विडंबना की ओर संकेत करते हुए निर्मलजी कहते हैं—यह विडंबना है कि साम्यवादी दल उत्तरी भारत में कमजोर रहते रहे हैं, लेकिन साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने अपने आतंक, विषैले आतंक को सबसे अधिक यहीं फैलाया है। यह एक तरह का बैक्टीरियल आक्रमण था, जिसे सूँघने के बाद हम साहित्य को ही एक गलत अंदाज में देखने लग जाते हैं (वही, पृष्ठ ७७)। निर्मल साहित्य में विचार संपदा का विरोध नहीं करते। वे मानते हैं कि जहाँ विचार और साहित्य एक-दूसरे का पोषण करते हैं, वहीं विचारधारा विष की तरह उसे खोखला करती है (सच्चा लेखक विचारधारा का गुलाम नहीं होता, वही, पृष्ठ ७७)। निर्मलजी की दृष्टि में यदि कोई लेखक विचारों के लोकतंत्र में किसी खास वर्ग, वाद या मत की तानाशाही के घेरे में आ जाता है तो वह अपने यथार्थ को बेहद विपन्न बनता है (रिव्यू लिखने से मेरे लेखन की शुरुआत हुई/साहित्य का आत्मसत्य, पृष्ठ ९७)।

निर्मलजी ने स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय विशेषतया हिंदी के

अधिकांश लेखकों और बुद्धिजीवियों की भूमिका को प्रश्नांकित किया है। उन्होंने यह अनुभव किया है कि पश्चिमी शिक्षा से लैस भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग ने सच और झूठ के विवेक को खो दिया है। वे इस बात का आह्वान करते हैं कि खरे और ईमानदार भारतीय लेखक का असली विरोध इन्हीं छद्म बुद्धिजीवियों से होना चाहिए (वही, पृष्ठ १०३)।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश के राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक ढाँचे को अपने स्वत्व के आधार पर निर्मित होना चाहिए था। हमारा राजनीतिक वर्ग इस दायित्व के निर्वाह में पूरी तरह असफल रहा। निर्मल वर्मा दु:ख के साथ कहते हैं कि हमारे देश के अधिकांश लेखक और बुद्धिजीवी भी इस कर्तव्य को पूरा करने में केवल असमर्थ ही नहीं रहे उन्होंने अपनी सभ्यता और संस्कृति के बारे में पश्चिमी ढाँचे के अनुसार भ्रांतपूर्ण धारणाएँ प्रचारित कीं जैसा कि एक जमाने में मैकाले और अंग्रेजी शासक प्रचारित करते आए थे (कहानी मेरे लिए धुँधली अनुभूतियों के प्रदेश को शब्दों के आलोक में देखना है/साहित्य का आत्मसत्य, पृष्ठ ११६)।

लेखक की दायित्वहीनता और मतवादग्रस्तता का एक प्रबल प्रमाण आपातकाल के समय प्रतिबद्ध कहे जाने वाले लेखकों का था। आपातकाल में जहाँ एक ओर अज्ञेय 'चुप की दहाड़' जैसा निबंध लिख रहे थे और निर्मल वर्मा 'हमारी चुनी हुई चुप्पियाँ' जैसा निबंध लिखकर प्रतिरोध जता रहे थे, वहीं प्रतिबद्ध लेखक बीससूत्री कार्यक्रम बना रहे थे तथा दूरदृष्टि, पक्का इरादा और अनुशासन जैसे नारे गढ़ रहे थे तथा आपातकाल के समर्थन में प्रस्ताव पास कर रहे थे। निर्मल वर्मा क्षोभ प्रकट करते हुए लिखते हैं—"आपातकाल के दौरान सत्ता के आगे घुटने टेकने में हिंदी के 'प्रतिबद्ध' लेखक सबसे आगे थे। अगर पिछले अनेक वर्षों में सोवियत सत्ता द्वारा लेखकों पर पाबंदी को हमारे मार्क्सवादी आलोचक सही मानते आए थे तो अपने देश में इस टाइप की तानाशाही को स्वीकार करने में भला क्या आपत्ति हो सकती है?" (कला की प्रासंगिकता/भारत और यूरोप—प्रतिश्रुति के क्षेत्र, पृष्ठ ११०)

निर्मल वर्मा लेखक के समक्ष उत्पन्न चुनौती की चर्चा करते हुए हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं कि आज के व्यावसायिक युग में जहाँ संप्रेषण के साधन दिनोदिन झूठे और पराधीन बनते जा रहे हैं। लेखक के सामने यह चुनौती बराबर बनी रहती है कि वह अपनी भाषा को अवमूल्यित किए बिना दूसरों तक अपनी सच्चाई पूरी पवित्रता और प्रामाणिकता के साथ संप्रेषित कर पाए। (लेखक की स्वतंत्रता और स्वधर्म/भारत और यूरोप—प्रतिश्रुति के क्षेत्र, पृष्ठ ११२)। निर्मल वर्मा वर्तमान समय की संवेदनहीनता और अवमूल्यन से निराश नहीं हैं। उनके भीतर आशावाद की किरण विद्यमान है। वे मानते हैं कि हिंदी समाज में ज्यों-ज्यों हमारा उजड्डपन, अशिक्षा, आत्महीनता हमारा हीनभाव कम होता जाएगा उसी अनुपात में साहित्य की गरिमा, प्रतिष्ठा, स्वायत्तता बढ़ती जाएगी और विचारधारा की जगह विचारों का महत्त्व साहित्य में बढ़ता जाएगा (सच्चा लेखक विचारधारा का दास नहीं होता/साहित्य का आत्मसत्य, पृष्ठ ७७)।

निर्मल वर्मा वर्तमान समय के रचनाकार और बुद्धिजीवी वर्ग से यह अपेक्षा करते हैं कि वे अपने मानसिक क्षितिज का विस्तार अपनी भाषा में करें। उनका कथन महत्त्वपूर्ण है—अपनी-अपनी भाषाओं में हमें चिंतन क्षेत्र को विस्तृत और परिष्कृत जरूर करना चाहिए। दर्शन और समाजशास्त्र की पुस्तकें इसकी सभी सूक्ष्मताओं के साथ हिंदी में लिखी जा सकती हैं। यह अभिशाप होगा, यदि हम अपनी चिंतन-पद्धति पर अंग्रेजी के आधिपत्य को आने दें (वही, पृष्ठ ७५)। निर्मल वर्मा वस्तुत: अपनी भाषा को हर प्रकार से समृद्ध करने के आकांक्षी हैं। निर्मल वर्मा यह देख रहे थे कि हमारे आर्ष ग्रंथों का गलत अनुवाद अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं में हुआ है। इन्हीं अनुवादों को पढ़कर भारतीय विद्यार्थी गलत निष्कर्षों की ओर जाते रहे हैं। निर्मल वर्मा सावधान करते हैं—हमारे शास्त्रों का अंग्रेजी का अनुवाद इतने गलत ढंग से किया गया है कि यदि हम उनको सही अर्थों में समझना चाहते हैं तो उन अनूदित चीजों को बिल्कुल अस्वीकार करना होगा। हमारी ज्ञानानुभूति के जितने शाब्दिक प्रत्यय हैं, उनको अंग्रेजी अपने में समाहित नहीं कर पाती। इन केंद्रीय प्रत्ययों के बारे में उनके अनुवादों से लोगों के मन में गलत निष्कर्ष आते हैं (वही, पृष्ठ ७५)।

वस्तुत: निर्मल वर्मा बीसवीं शताब्दी के ऐसे विलक्षण रचनाकार हैं, जिन्होंने बौद्धिक और सर्जनात्मक जगत् में व्याप्त धुंध को छाँटने का प्रयास किया; साहित्य के मूल प्रयोजन को उद्घाटित किया; पाश्चात्य विचारधारा के दुष्प्रभाव को गहराई से समझते हुए उनके निराकरण के लिए प्रयत्न किया। आज निर्मल वर्मा के साहित्य का विश्लेषण करते हुए उनके व्यापक दृष्टिकोण को समझने और उसका विकास करने की अत्यंत आवश्यकता है।

सा अ

अवकाश प्राप्त आचार्य, हिंदी विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर-२७३००९
दूरभाष : ९४५०८७८३४७

सुधी पाठकों, लेखकों एवं विज्ञापनदाताओं को
'साहित्य अमृत' परिवार की ओर से
नवरात्र एवं दशहरा की
हार्दिक शुभकामनाएँ!

गरीब क्या अमेरिका में नहीं?

● **हरि जोशी**

जैसे गरीब भारत में यत्र-तत्र बसते हैं, अमेरिकी भूमि पर भी एरिजोना, अलास्का तथा अन्य क्षेत्रों में, वैसे ही सीधे-सादे आदिवासी आज भी देखे जा सकते हैं। अमेरिका कितना भी आधुनिक हो, आज भी एरिजोना की शिक्षा और सभ्यता की तुलना भारत के बस्तर के सुदूर अंचलों से की जा सकती है। उसी प्रकार अलास्का में बर्फ से ढकी हुई अत्यंत छोटी-छोटी उपेक्षित बस्तियाँ हैं, जहाँ कुत्ते ही आपकी गाड़ी बर्फीली सतह पर खींचकर ले जाते हैं। सारी अमेरिकी भूमि ३०० वर्ष पूर्व इन्हीं नेटिव अमेरिकंस की थी, किंतु उनपर बाहरी शक्तियों ने खूँखार और आक्रामक श्वान का रूप धारण कर झपट्टा मारा, तहस-नहस किया और आराम से चारों ओर अपना आधिपत्य जमा लिया। दक्षिण अमेरिका के ब्राजील देश में तो दुनिया के सर्वाधिक कुत्ते हैं। कई करोड़। स्वतंत्र भ्रमण करने वाले तो भारत में भी लाखों हैं, किंतु ब्राजील में सर्वाधिक अनाथ श्वान सड़कों पर घूमते हुए मिल जाएँगे। भारत के कुत्तों को यह सुनकर संतोष होगा कि ब्राजील में उनके स्वजाति बंधु सबसे बुरी हालत में हैं।

विदेशी आक्रमणकारियों के काल में कुत्ते ही उनके सिपहसालार हुआ करते थे। शिकारी कुत्ते साथ लेकर चलने से ही शिकार किया जा सकता है। जो अधिक खाने को दे देता है, उसके पक्ष में ही वे गुर्राने लगते हैं। कुत्तों का सत्संग पाकर विजय और संपन्नता दोनों अर्जित कर ली जाती हैं। धीरे-धीरे कुत्तागीरी के समर्थक गुणवानों ने सारे अमेरिका में प्रचार किया कि यदि कुत्तों को परिवार का एक सदस्य बनाकर रखा जाएगा तो घर प्रसन्नता और धनधान्य से भर जाएगा। यह भी कि समाज का सर्वाधिक उद्योगी जीव कुत्ता ही है। अतिरिक्त लाभ यह होगा, उसकी अनेक आदतें और विशेषताएँ परिवार जन उसके सत्संग में सीख जाएँगे। धीरे-धीरे यह नियम बन गया कि परिवार में बॉयफ्रेंड, गर्लफ्रेंड, एक या अधिक-से-अधिक दो बच्चे और आवश्यक रूप से एक श्वान होगा, तभी परिवार संपूर्ण माना जाएगा। अमेरिका की धरती पर यह प्रथा नई व्यवस्था के अस्तित्व में आने से ही शुरू हुई, जो आज भी प्रचलन में है।

जो व्यक्ति अमेरिका की धरती पर पाँव रखे, उसे कुत्तों के साथ मित्र बनकर कैसे रहा जाए, इसका प्रशिक्षण लेकर आना चाहिए। इस देश में संपन्नता ऐसे ही तो नहीं आ गई? कुत्ते पारिवारिक जीवन के इतने अविभाज्य अंग हो गए हैं कि अनेक छात्र भले ही माता-पिता से दूर रहकर अध्ययन करें, छात्रावासों तक में अपने साथ अपना कुत्ता रखते हैं। भले ही कक्षाओं में कुत्तों का प्रवेश वर्जित है। कहा जा सकता है, पूरा देश कुत्तों के भरोसे ही चल रहा है।

जाने-माने व्यंग्यकार। अब तक तीन कविता-संग्रह, पंद्रह व्यंग्य-संग्रह, छह उपन्यास के अलावा प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित एवं आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से प्रसारित। म.प्र. हिंदी साहित्य सम्मेलन का 'वागीश्वरी सम्मान', 'व्यंग्यश्री सम्मान', 'गोयनका सारस्वत सम्मान' आदि।

यहाँ परिवारों में कुत्तों का महत्त्व सबसे अधिक है। परिवार का वह केंद्रबिंदु है, जिसकी परिधि पर या कहें वृत्त पर सारे परिवारजन घूमते हैं। न पति पत्नी की सुनता है, न पत्नी पति की। बच्चे भी बड़े सदस्यों की डाँट या ऊँची आवाज नहीं सुनते, किंतु कुत्ते या कुत्तों की घर में सब सुनते हैं। फिर अमेरिका में ही क्यों, दुनिया भर के कुत्ते, पाँवों में लोटकर, भौंककर, गुर्राकर, लपककर, नोचकर अपना लक्ष्य पूरा कर ही लेते हैं।

भारत, ब्राजील और कुछ अन्य देशों में सड़क पर कुत्ते घूमते हुए मिलेंगे, जबकि इसलामिक देश मालदीव में एक भी कुत्ता नहीं है, वहाँ शासन के आदेशानुसार कुत्ते पालना वर्जित है। इस तरह अमेरिका में फुटपाथ पर मालिक की डोर से बँधे हुए पूर्णत: अनुशासित, भारत और ब्राजील आदि कुछ देशों में सड़कों पर निर्द्वंद्व घूमते हुए, जबकि चीन में उदरस्थ होते हुए पाए जाते हैं। अरब देशों में तीतर, बटेर, मुर्गों को खाने-पकाने के लिए पाला जाता है, कुत्तों को बहुत कम। सामान्यत: तो साधारण कुत्तों को ही पाला जाता है, किंतु बड़े किसान या कुछ शिकारी, आक्रामक और खूँखार कुत्ते अवश्य पालकर रखते हैं। अलग-अलग देशों में उनकी अलग-अलग गति। भारत में मुख्यत: गायों को सम्मान दिया जाता है, कुत्ते भी पाल लिए जाते हैं। अमेरिका में गायें खाद्य पदार्थ हैं, कुत्ते पाले जाते हैं और चीन में कुत्ते हों, बंदर हों, गधे या गाय, सभी कुछ चट कर लिये जाते हैं। कुत्तों के लिए अमेरिका स्वर्ग है, किंतु चीन नरक। कहीं सद्गति, कहीं दुर्गति, कहीं अधोगति, यही है बेचारे कूकर की उत्तरोत्तर प्रगति। श्वान गतिमान है। कुत्ते इनके परिवारों को बाँधकर रखते हैं या ये कुत्तों को, यह कहना कठिन है, किंतु इन दिनों कुत्तों ने समूची दुनिया को बाँधकर रखा है।

३/३२, छत्रसाल नगर, फेज-२
जे.के. रोड, भोपाल-४६२०२२
दूरभाष : ०९८२६४२६२३२

संकल्प

● अश्विनीकुमार दुबे

इंजीनियरिंग सेवा से सेवानिवृत्त। अब तक पंद्रह व्यंग्य-संग्रह (चयनित मिलाकर), सात उपन्यास और तीन कहानी संकलन; शास्त्रीय संगीत पर एकाग्र 'पंचामृत', वैचारिक निबंध 'भारत-इतिहास, संस्कृति और धर्म' प्रकाशित। भारतेंदु पुरस्कार, अंबिका प्रसाद दिव्य पुरस्कार, स्पेनिश सम्मान, उ.प्र. हिंदी संस्थान का पंडित श्री नारायण चतुर्वेदी सम्मान, म.प्र. साहित्य अकादमी का श्री वृंदावनलाल वर्मा पुरस्कार एवं अन्य सम्मान।

सविता वर्मा एक मध्यमवर्गीय परिवार की पहली कन्या है। इस परिवार में उससे दो छोटी बहनें और हैं। पिता माधवजी तहसील ऑफिस में क्लर्क हैं। माँ सरोजिनी देवी धर्मपरायण घरेलू महिला हैं। लड़के की चाह किस परिवार में नहीं होती। इस परिवार में भी रही। पहली संतान बेटी हुई, जिसका नाम सविता रखा गया। दूसरी विनीता हुई। माधवजी ने सोचा, अब ऑपरेशन करा दिया जाए। अधिकतर परिवारों में महिलाओं का ही ऑपरेशन कराया जाता है। पुरुष कोई जोखिम नहीं लेते। न जाने किन लोगों ने पुरुषों के दिमाग में यह बात भर दी है कि तुम ऑपरेशन कराओगे तो कमजोरी आ जाएगी। फिर अपना कोई काम-धंधा नहीं कर पाओगे। जबकि मेडिकल एक्सपर्ट यह कहते हैं कि पुरुषों का ऑपरेशन ज्यादा सुविधाजनक है और उससे किसी प्रकार की कोई कमजोरी नहीं आती, परंतु क्या खास और क्या आम, सभी पुरुष अपनी पत्नियों का ही ऑपरेशन कराते हैं।

माधवजी ने घर में विचार-विमर्श किया। पत्नी ऑपरेशन कराने के लिए तैयार थी, परंतु माधवजी अभी एक लड़के की चाह रखते थे। वही पुराना राग कि वंश चलाने के लिए एक पुत्र जरूर होना चाहिए। मरकर शायद वे देखने आएँगे कि उनका वंश चल रहा है कि नहीं! अत: फिर मौका लिया गया। इस बार पुन: कन्या हुई। प्रसव के पूर्व वे चाहते थे कि सोनोग्राफी करा लें। लेकिन सभी सरकारी और गैर-सरकारी अस्पतालों में बोर्ड लगे थे कि लिंग जाँच करना और कराना अपराध है। कृपया ऐसा कोई प्रस्ताव न लाएँ। ज्यादा पैसे देकर वे किसी प्राइवेट डिस्पेंसरी में सोनोग्राफी करा सकते थे, परंतु उनकी हिम्मत नहीं पड़ी। एक तो अतिरिक्त पैसे नहीं थे, दूसरे यदि भ्रूण हत्या करनी पड़ी तो यह अपराध-बोध उन्हें सालता रहेगा। इस प्रकार मामला भगवान् भरोसे छोड़ दिया गया। जब घर में तीसरी कन्या ने जन्म लिया, तब सबके चेहरे उतर गए। कन्या का नाम रखा गया अनीता। अब इसके बाद ऑपरेशन कराना जरूरी समझा गया और माधवजी ने अपनी पत्नी का ऑपरेशन कराकर संतानोत्पत्ति से मुक्ति पाई।

थोड़ा सा वेतन और तीन बेटियों सहित घर का खर्च उठाना माधव दंपती के लिए कठिन कार्य था। वे अकसर पुत्र न होने के लिए एक-दूसरे पर दोषारोपण करते थे। इससे क्या होना-जाना था। घर में झगड़े होते और इसका असर बच्चियों पर पड़ता। बड़ी बेटी समझदार हो चली थी। उसे लगता, हम तीनों बहनें माँ-बाप पर बोझ की तरह हैं। वे किसी तरह यह बोझ ढो रहे हैं। उन्हें अपनी बेटियों से ज्यादा लगाव नहीं है। सविता भले ही ऐसा सोचे, परंतु माँ-बाप तो माँ-बाप ही होते हैं। उन्हें अपनी संतानों, चाहे वे बेटियाँ हों या बेटे, उनसे प्रेम जरूर होता है। हाँ, आर्थिक परेशानियों के कारण वे कभी झल्लाने लगते हैं। माधव दंपती अपनी तरफ से बेटियों की परवरिश में कोई कमी नहीं रखते थे। महँगे प्राइवेट स्कूलों में वे अपनी बच्चियों को भर्ती नहीं करा सकते थे, परंतु सरकारी स्कूल में भर्ती कराकर उन्होंने बच्चियों की पढ़ाई में कोई ढिलाई नहीं दी। समय पर उन्हें पुस्तकें दिलवाईं, स्कूल ड्रेस सिलवाई और घर पर उन्हें पढ़ने के लिए पर्याप्त समय दिया। लड़कियाँ हैं, इसलिए उनकी माँ सरोजिनी देवी ने उन्हें सिर्फ घरेलू कामों में ही व्यस्त नहीं रखा। वे स्वयं घर के सारे काम सँभाल रही थीं और बच्चियों की पढ़ाई में कोई कमी नहीं आने देती थीं।

तीनों बच्चियाँ पढ़ने में कुशल थीं। वे अपनी सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में पास करते हुए आगे बढ़ रही थीं। सविता अब बारहवीं में पहुँच गई। यह बोर्ड परीक्षा है। इसके बाद कॉलेज की पढ़ाई शुरू होगी। सविता भली-भाँति जानती है कि उसके पिता उसे बाहर भेजकर कॉलेज की पढ़ाई पूरी नहीं करा सकते। घर में तो अब उसके लिए वर ढूँढ़ने की बातें होने लगी थीं। सविता अपनी जिम्मेदारी समझ रही थी। वह अपने आपको घर की बड़ी बेटी नहीं, बड़ा बेटा मानती थी। उसके पीछे दो बहनों का भविष्य और लगा हुआ था। उन्हें भी अपनी पढ़ाई पूरी करनी थी और उनका विवाह भी होना था। यह सबकुछ उनके माँ-बाप को अकेले करना था, अपनी सीमित आय में। घर में जो तनख्वाह आ रही थी, वह किसी से छिपी नहीं थी। उसी में सबकुछ किया जाना था। माधव दंपती के पास कोई पुश्तैनी जमीन-जायदाद भी नहीं थी। जो कुछ था, वह तहसील ऑफिस में एक बाबू की नौकरी।

सविता घर की सारी परिस्थितियों को देख रही थी, भली-भाँति सबकुछ समझ रही थी। उसने पढ़ाई में अपना पूरा मन लगाया। समय-समय पर घर में वह अपनी छोटी बहनों को भी पढ़ाया करती थी। उसकी मेहनत और लगन रंग लाई। वह बारहवीं बोर्ड की परीक्षा में 82 प्रतिशत

अंकों के साथ प्रथम श्रेणी में पास हुई। घर में जाहिर रूप में तो खुशियाँ मनाई गईं, परंतु उसके माँ-बाप अब सविता के विवाह के लिए चिंतित थे और उसकी आगे की पढ़ाई के लिए भी सोच रहे थे।

अभी रिजल्ट आया ही था कि उसी समय विकास विभाग के अंतर्गत संविदा पर्यवेक्षक के पदों की विज्ञप्ति निकली। सविता ने अपने माता-पिता से पूछकर उसमें एप्लाई किया। विभाग द्वारा लिखित परीक्षा ली गई और उसमें पास हुए अभ्यर्थियों को राजधानी में बुलाकर उनका साक्षात्कार लिया गया। सविता अपनी पढ़ाई में अत्यंत कुशल थी। उसने प्रतियोगी परीक्षा अच्छे नंबरों से पास की और साक्षात्कार में उसने सभी प्रश्नों के सही जवाब दिए। इस प्रकार वह बिना रिश्वत और बिना किसी सिफारिश के संविदा पर्यवेक्षक के लिए चुन ली गई। हाँ, गृह जिले में ही पोस्टिंग पाने के लिए उसके पिता ने तहसीलदार साहब से ऊपर किसी बाबू, जो उनका परिचित था, उसको फोन करा दिया था। इस प्रकार सविता की अपने ही जिले में संविदा पर्यवेक्षक के रूप में नियुक्ति हो गई।

संविदा नियुक्तियाँ सरकारों का नया आविष्कार है। इसमें हर साल कर्मचारी से एक सरकारी अनुबंध कराया जाता है, जिसके अनुसार प्रति माह एकमुश्त थोड़ी सी राशि के अलावा कोई इंक्रीमेंट नहीं, कोई यात्रा भत्ता नहीं, कोई मेडिकल और आवास सुविधा नहीं और काम बेशुमार। यदि साहब नाराज हो जाएँ तो वे कभी भी बिना कोई स्पष्टीकरण माँगे संविदाकर्मी की सेवाएँ समाप्त कर सकते हैं।

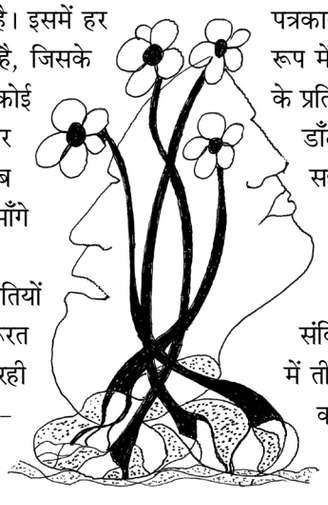

सविता प्रतिभाशाली और मेहनती है। घरेलू परिस्थितियों के कारण आगे नहीं पढ़ पाई। उसे नौकरी की बहुत जरूरत थी। पिता बूढ़े हो रहे थे। दो बहनें अभी अपनी पढ़ाई कर रही थीं। बेटियों की पढ़ाई और शादी की चिंता में उसके माता-पिता परेशान रहते थे। गृहस्थी में हर वक्त पैसे चाहिए। कभी कोई सदस्य बीमार है, उसकी दवाई। रिश्तेदारों में शादी-ब्याह, व्यवहार, उत्सव-त्योहार, कहीं आना-जाना इत्यादि। कमाने वाले अकेले माधवजी, जो पचास साल में ही बूढ़े लगने लगे हैं। उनकी पत्नी सरोजिनी देवी घरेलू कामों में खटते हुए प्राय: अस्वस्थ रहती हैं। ऐसे में इस परिवार को सहारे की जरूरत है। सविता इस घर की बड़ी बेटी नहीं, बड़ा बेटा है। उसे ही सब सँभालना है। इस प्रकार सविता ने अपने ही जिले में विकास विभाग के अंतर्गत संविदा पर्यवेक्षक की नौकरी खुशी-खुशी ज्वॉइन कर ली।

हर कार्यालय में संविदाकर्मियों को अस्थायी मानकर उनके साथ अलग व्यवहार किया जाता है। ये तो आज हैं, कल चले जाएँगे। इनका क्या भरोसा। हाँ, इनसे काम भरपूर लिया जाना चाहिए। ऐसा ही व्यवहार सविता के साथ उसके कार्यालय वालों ने किया। उसके आते ही टेबल पर फाइलों का ढेर लगा दिया जाता। इन्हें देखो, सुधारो। समय-समय पर तुम्हें फील्ड पर भी भेजा जाएगा। वहाँ भी मुश्तैदी से काम करना होगा। लगन, मेहनत और ईमानदारी की घुट्टी पीकर ही सविता विभाग में आई थी। उसने मन लगाकर काम करना शुरू कर दिया। वेतन एकमुश्त पच्चीस हजार रुपए निर्धारित किया गया। इसके अलावा महँगाई, इंक्रीमेंट और अन्य भत्ते कुछ भी नहीं। सविता के लिए तो पच्चीस हजार ही परिवार की जिम्मेदारियों के लिए एक बड़े सहारे की तरह थे।

घर में सविता की तनख्वाह आने लगी। सविता ने अपनी दोनों बहनों की पढ़ाई को गंभीरता से लिया। उससे छोटी विनीता मैट्रिक में थी और उससे भी छोटी अनीता मिडिल स्कूल में। सविता ने दोनों के लिए पर्याप्त पुस्तकें, ड्रेस और स्कूल की फीस आदि की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। वह सोचती, मैं भले ही आगे नहीं पढ़ पाई, परंतु विनीता और अनीता को वह जरूर उच्च शिक्षा दिलाएगी।

ऑफिस में सविता के उच्च अधिकारी एक कड़क अफसर थे। उनमें सद्पुरुषों जैसे कोई गुण नहीं थे। वे अपने विभाग में जिले की सबसे बड़ी पोस्ट पर थे। उन्हें सरकारी आवास, गाड़ी और मोटा वेतन मिल रहा था। उनके अधीन कर्मचारियों का एक बड़ा अमला था। वे अपने मातहतों से बहुत रूखा व्यवहार किया करते थे। हाँ, विधायक, मंत्री और पत्रकारों के सामने वे अत्यंत विनम्र और सहृदय अफसर के रूप में पेश आते थे, जबकि वे ऐसे बिल्कुल नहीं थे। सविता के प्रति उनका कोई सद्भाव नहीं था, परंतु सविता ने उन्हें कभी डाँटने का मौका नहीं दिया, सब काम उसने समय पर और सही-सही किया। बावजूद वे सविता से कभी खुश नहीं रहे। कभी-कभी वे काम में गड़बड़ी पाए जाने पर तीनों संविदाकर्मियों का वेतन काटने की धमकी जरूर दिया करते थे। इस कार्यालय में सविता के अलावा दो लड़के संविदा पर्यवेक्षक के रूप में और नियुक्त हुए थे। कार्यालय में तीनों संविदाकर्मी मेहनत और लगन से काम कर रहे थे, क्योंकि उन्हें डर था कि वे कभी भी निकाल दिए जा सकते हैं। जबकि कार्यालय के शेष कर्मचारी मटरगस्ती करते रहते और अपनी टेबल का काम भी संविदाकर्मियों के भरोसे छोड़कर निश्चिंत रहते थे।

बहरहाल, संविदाकर्मी निरंतर अपने बॉस की डाँट खाते हुए चुपचाप अपने काम करते जा रहे थे। फरवरी समाप्त हो गई। मार्च लगा, यह वित्तीय वर्ष का अंतिम माह होता है। इसमें ही संविदाकर्मियों के लिए आगामी वर्ष के अनुबंध किए जाते हैं। इस मौके पर विभाग के जिला अधिकारी को पूर्ण अधिकार होता है कि वह अपने अधीनस्थ संविदाकर्मियों के लिए अगले वर्ष का अनुबंध करे या न करे। जब वह अनुबंध कर लेगा, तब अप्रैल माह का वेतन कार्यालय से प्राप्त होगा। संविदाकर्मियों ने कई बार अपने अनुबंध की फाइल ऊपर पहुँचवाई, परंतु हर बार वह फाइल लौट आई, इससे संविदाकर्मी बहुत चिंतित हुए। एक दिन स्थापना कक्ष के बड़े बाबू ने उन्हें समझाया—"आप लोग इस बाबत साहब से घर पर जाकर मिल लो। देखो, वे क्या कहते हैं?"

अगले दिन तीनों संविदाकर्मी हिम्मत करके सुबह साहब के घर पहुँचे। घर पर साहब ने अच्छा व्यवहार किया। बैठने के लिए भी कहा। फिर वे अत्यंत शांत स्वर में बोले, "नए अनुबंध बनाए जाने के लिए मेरी

फीस है, जो बीस हजार रुपए है। कल आकर घर पर ही तुम लोग मेरी फीस दे जाओ। तुम्हारे अनुबंध साइन हो जाएँगे। और यह बात पूरी तरह गोपनीय रहनी चाहिए। आगे आप लोग स्वयं समझदार हैं।"

अब कुछ कहने को नहीं था और न कुछ सुनने को। तीनों संविदाकर्मी साहब को नमस्कार करके बाहर आ गए।

तीनों ने बाहर आकर सोच-विचार किया। दोनों युवकों का तर्क था—"पैसे तो देने ही पड़ेंगे। अन्यथा साहब अनुबंध पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे। कोई ऑब्जेक्शन लगाकर फाइल वापस कर देंगे। फिर हम लोगों की नौकरी जाती रहेगी। अब कैसे भी करके हमें साहब को पैसे देने पड़ेंगे। सविता चुप थी। उसने अपना कोई अभिमत प्रकट नहीं किया।

पैसे कल तक साहब के पास पहुँचाने थे। इतने कम समय में रुपयों का इंतजाम करना कठिन था। नया अनुबंध किया जाना भी जरूरी था, उसके अभाव में अगले महीने का वेतन रुक जाएगा। दोनों युवकों ने किसी तरह रुपयों का इंतजाम किया और अगले दिन साहब के घर जाकर उन्हें रुपए दे आए। दोनों के अनुबंध उसी दिन साइन होकर स्थापना कक्ष में आ गए। सविता ने देखा और उसका दिल धक रह गया। वह घबराकर साहब के चेंबर में गई और उनसे दो दिनों पश्चात् मिलने की अनुमति लेकर आ गई। उसे बहुत घबराहट हो रही थी कि इतने कम समय में रुपयों की व्यवस्था कैसे हो पाएगी!

रात में उसने अपने माता-पिता से सलाह ली कि इस समस्या को कैसे निपटाया जाए। पिता ने कहा, "वैसे तो इस तरह अनुबंध के लिए पैसे देना गलत है, परंतु जब तेरे दोनों सहकर्मियों ने पैसे देकर अपने अनुबंध साइन करा लिये, तब हमें भी पैसे देने ही पड़ेंगे। तेरी शादी के लिए जो रुपयों की हमने बचत कर रखी है, उसमें से बीस हजार रुपए निकाल लेते हैं, उन्हें परसों तू साहब के घर जाकर दे आ। नौकरी बची रहेगी। वरना ये साहब तेरी नौकरी खा जाएँगे। कल मैं 20,000 रुपए बैंक से लेता आऊँगा। तू चिंता न कर।"

सविता की माँ को अपने पति की बात अच्छी नहीं लगी। उनके अनुसार यह अन्याय के सामने समर्पण कर देना है। उन्होंने सविता से कहा, "गलत काम हमेशा गलत ही होता है। तुम्हें साहब से साफ मना कर देना चाहिए कि हम लोग साधारण लोग हैं। इस तरह एक मोटी रकम व्यर्थ में किसी को नहीं दे सकते। फिर मेरा कसूर क्या है? ऑफिस के सब काम मैं मेहनत और लगन से कर ही कर रही हूँ। अब ये बीस हजार रुपए किस बात के?"

सविता को माँ की बात ठीक लगी। माँ ने उसे आगे समझाया—"एक बार समझौता कर लेने के बाद इसकी आदत पड़ जाती है। हमें तेरी आदत नहीं बिगाड़नी। इसलिए तू वही कर, जो तेरा मन कहे।"

सुबह सविता ऑफिस जाने के लिए घर से जल्दी निकली और लोकायुक्त कार्यालय पहुँची। वहाँ उसने शपथ-पत्र के साथ शिकायत दर्ज कराई, जो वह यहाँ आने के पूर्व बनवाकर ले आई थी। उसने दृढ़तापूर्वक लोकायुक्त अधिकारी को अपनी बात बताई और सहयोग प्रदान करने के लिए कहा। अधिकारी ने कल का दिन तय किया और उसे सुबह साहब के घर जाकर बीस हजार रुपए देने के लिए कहा। यह कहते हुए अधिकारी ने उसे एक पाउडर का पाउच दिया, जिसे नोटों में अच्छी तरह लगा देने के निर्देश दिए। साथ ही पूरी बात को एकदम गोपनीय रखने के लिए भी उससे कहा गया।

ऑफिस में वह सहज बनी रही। उसने अपनी टेबल के सब काम अच्छी तरह निपटाए। घर आकर उसने पापा से बीस हजार रुपए लिये, जो वे आज ही बैंक से निकालकर लाए थे। रात में सोते समय सविता ने उन रुपयों में अच्छी तरह वह पाउडर लगाया, जो लोकायुक्त कार्यालय से उसे प्राप्त हुआ था। नोटों की गड्डी नई थी, इसलिए उसके नंबरों की सीरीज भी उसने अपनी डायरी में नोट कर ली। अब वह सोने का असफल प्रयास करने लगी। मन जाने क्या-क्या सोच रहा था, परंतु रह-रहकर उसे अपनी माँ की बात याद आ रही थी—'एक बार समझौता कर लेने से इसकी आदत पड़ जाती है। हमें तेरी आदत नहीं बिगाड़नी।'

सुबह सबकुछ सामान्य था। सविता का मन जरूर काँप रहा था, परंतु वह बार-बार अपनी माँ का संदेश याद कर अपने संकल्प को मजबूत बनाए हुई थी। वह तैयार होकर निर्धारित समय पर साहब के घर गई। लोकायुक्त टीम भी कार्यस्थल पर पहुँच चुकी थी।

"आओ सविता! रुपए ले आई?" साहब ने उसे देखते ही पूछा।

"जी सर, ले आई हूँ। ये रहे।" सविता ने अपने हैंडबैग से रुपए निकालकर दो गड्डियाँ साहब के हाथों में थमा दीं। साहब ने सँभालकर उन्हें टेबल की रैक में नीचे रख दिया। सविता उनसे नमस्ते करके चुपचाप बाहर आ गई। उसके बाहर आते ही लोकायुक्त टीम ने भीतर प्रवेश किया और साहब को रँगे हाथों पकड़ लिया। साहब के हाथ धुलवाए गए, जो पाउडर के प्रभाव से रंगीन हो गए और नोटों के नंबरों की सीरीज भी लोकायुक्त टीम को उपलब्ध कराई गई सीरीज से मैच कर रही थी।

सविता चुपचाप ऑफिस आ गई। उसके ऑफिस पहुँचने के पहले सारी खबर ऑफिस पहुँच गई थी। ऑफिस में तो जैसे हड़कंप मच गया था। कुछ लोग सविता की तारीफ कर रहे थे और कुछ लोग उसकी आलोचना—"अपने बॉस के साथ ऐसा नहीं करना चाहिए।" दोनों संविदाकर्मी सविता को बधाई दे रहे थे—"हम जो न कर सके, वह तुमने कर दिखाया। हम तुम्हारी हिम्मत की दाद देते हैं।"

अगले दिन शहर के सारे समाचार-पत्रों ने इस खबर को प्रमुखता से छापा। संभागीय कार्यालय से साहब का पदभार ग्रहण करने के लिए एक उच्च महिला अधिकारी पधार चुकी थीं। उन्होंने सीट पर बैठते ही सबसे पहले सविता के अनुबंध-पत्र पर साइन किए और उसे निर्भय होकर काम करते रहने के लिए कहा।

माँ ने सविता को सीने से लगाकर उसे आशीष दिया, पिता खुश हुए और दोनों छोटी बहनों ने उस पर खूब गर्व किया।

साअ

३७६-बी, सेक्टर आर, महालक्ष्मी नगर,
इंदौर-४५२०१० (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२५१६७००३

तुलसी की मानस एवं मानस के राम

● अमन सिंह

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

गोस्वामी तुलसीदास का नाम साहित्य-जगत् में सम्मान से लिया जाता है। श्रेष्ठ महाकवियों की सबसे बड़ी पहचान है, काल के उदात्त क्षणों में उनकी कविता का वैचारिक ऊर्जा से संपृक्त हो जाना, हिंदी साहित्य में इसके लिए महाकवि के साक्ष्य के रूप में गोस्वामी तुलसीदासजी को जाना जाता है। भक्तिकाल में कबीर के विद्रोही तेवर जिस प्रकार से सामाजिक ताने-बाने में समाए विकारों, विकृतियों पर तीखे प्रहार कर रहे थे, वहीं तुलसीदास की रचनाएँ अत्यंत सरल एवं शालीनतापूर्वक रामकथा के माहात्म्य के माध्यम से भारतीय समाज के संस्कारों का संपोषण कर रही थीं। नैतिक मूल्यों की स्थापना, धर्म-पालन, आचार-विचार की शुद्धता आदि सामाजिक संबंधों की व्याख्या का आदर्श रूप जिस प्रकार से तुलसीदास ने अपने काव्य में चित्रित किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उनका संपूर्ण काव्य समन्वय की विराट् चेष्टा है, इसीलिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें 'लोकनायक' कहा है। आचार्य के अनुसार, "भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके। क्योंकि भारतीय समाज में नाना भाँति की परस्पर-विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचार-निष्ठा और विचार-पद्धतियाँ प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयकारी थे, गीता में समन्वयकारी चेष्टा है और तुलसीदास भी समन्वयकारी थे।" ऐसा ओजस्वी एवं श्रेष्ठ व्यक्तित्व भक्ति-संपन्न पुरुष मध्ययुग में कदाचित् ही कोई मिलेगा। तुलसीदास ने अपने गहन ज्ञान और व्यक्तित्व के अनुरूप समन्वय किया। उन्होंने लोक और शास्त्र का ही नहीं वरन् वैराग्य और गृहस्थ का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, पंडित और अज्ञानी का, ब्राह्मण और चंडाल का, आदर्श और व्यवहार का एवं ऊँच और नीच का अपूर्व समन्वय किया। उनका यह समन्वय संपूर्ण चराचर जगत् के लिए प्रेरणास्पद एवं अमर ग्रंथ 'रामचरितमानस' में चरम रूप में अभिव्यक्त होता है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के विराट् बिंदु एवं भारतीय समाज एवं धर्म के साक्षात् स्वरूप मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम को धर्म के अवतार के रूप में वर्णित किया है—

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुन सागर॥
पुरजन परिजन गुरु पितु माता। राम सुभाउ सबहि सुखदाता॥

श्रीरामचंद्रजी ने जन्म (अवतार) लेकर जगत् को प्रकाशित (परम सुशोभित) कर दिया। वे रूप, शील, सुख और समस्त गुणों के समुद्र हैं।

'सत्ता, साहित्य और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में गणेशशंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता' विषय पर दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में शोधरत। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आलेख प्रकाशित। वर्तमान में हिंदी-विभाग, सत्यवती महाविद्यालय (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय में असिस्टेंट प्रोफेसर।

पुरवासी, कुटुंबी, गुरु, पिता-माता सभी को श्रीरामजी का स्वभाव सुख देने वाला है। तुलसीदासजी ने रामकथा को भक्ति के क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्रदान की। उन्होंने अपने समस्त काव्य-ग्रंथों में राम के प्रति अनन्य भक्तिभाव व्यक्त किया है, इसलिए तुलसीदास को राम के एकनिष्ठ एवं अनन्य भक्त के रूप में विवेचित किया गया है। परम अनुराग जब ईश्वर की ओर हो, तब वह भक्ति कहलाता है। तुलसी ने रघुवीर रामचंद्रजी को अपना इष्टदेव माना है। भक्त अपनी भावना के अनुसार इष्टदेव चुनता है। मानस द्वारा उन्होंने जीवन-मूल्यों की स्थापना की। तुलसी ने मानस का सृजन ऐसे काल में किया, जब भारतीय इतिहास में हिंदू जीवन अनेक विघटनशील प्रक्रियाओं से गुजर रहा था। रामचरितमानस एक ऐसी रचना है, जिसके विभिन्न संदर्भ, रचनात्मक विषयवस्तु, काव्य-भाषा तथा जीवन-मूल्यों की दृष्टि से सदा प्रासंगिक है।

'नानापुराणनिगमागम' कहकर तुलसी ने अपनी रचना में ग्रहण किए गए रामचरित को सर्वथा ग्राह्य बनाने के लिए कृति का नाम 'रामचरितमानस' रखा। रचना के आरंभ में कवि कहता है कि रचना का उद्देश्य स्वांत: सुखाय है—

नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोअपि
स्वान्त: सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषा निबन्धमति मञ्जुलमातनोति॥

रामायण का उल्लेख करके कवि पूर्व के कृतिकारों के प्रति श्रद्धा भावना व्यक्त करके स्वयं को उनकी तुलना में अल्पमति कहता है।

'कवित्त विवेक एक नहीं मोरे' लिखकर तुलसी अपने शास्त्रीय ज्ञान या काव्य प्रतिभा को चाहे जितना अत्यल्प कहते हों, किंतु उनके जैसी प्रतिभा और काव्यशास्त्रीय ज्ञान किसी और कवि के पास मध्यकाल में नहीं दिखाई देता है। अंत्यज सहज भाव से कवि रचना के आरंभिक खंडों में ही कहते हैं—

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥

अपनी ओर से कवि ने यह कहकर इस रचना को भगवान् शिव का प्रसाद बताया है। रामचरितमानस के माध्यम से तुलसी ने राम के जीवन की समस्त घटनाओं को क्रमशः चित्रित किया है। न केवल 'रामचरितमानस' अपितु तुलसी का संपूर्ण साहित्य भक्ति और दर्शन के लिए जितना चर्चा में है, उससे अधिक मानस की पंक्तियों में सामान्य जीवन की नीतियों का उल्लेख विद्यमान है। वास्तव में सर्वांगदर्शी लोक व्यवस्थापक महात्मा तुलसी ने भगवान् राम के चरित्र के माध्यम से प्राचीन भारतीय परंपरा में चली आ रही धर्म की नैतिक संकल्पना को पोषित किया है, जहाँ धर्म मात्र कर्मकांडीय न होकर 'लोक-संकल्पना' का भाव धारण किए हुए है। मानस में तुलसी ने धर्म के तीनों आयामों (व्यक्तिगत, अंतर-वैयक्तिक एवं सामाजिक) को समाहित किया है। मानस की यही लोक केंद्रित दृष्टि उसे जन का मानस बनाती है। मानस को भारतीय जनजीवन का जितना विशुद्ध अनुभव है, वे उतनी ही गहराई में उतरकर विभिन्न पन्नों के अंतर्मन में विद्यमान श्रद्धा के रत्नों को मणियों की तरह खोज निकलाते हैं, उन्हीं मणियों में अति विशिष्ट आभा है—राम नाम मणि को जो अंदर से बाहर तक शक्ति प्रकाश किया करती है।

राम ने अपने जीवन में उन मूल्यों को समझा, जिसमें सामाजिक सौहार्द की स्थापना हो सके। उन्होंने स्वयं हित से उठकर सामाजिक मूल्यों को दृढ़ किया, जिसमें उनके विचारों में समाजवाद के विचारों के दर्शन होते हैं। राम का जीवन एवं चरित्र, स्वहित नहीं, बल्कि परहित एवं लोक-नैतिकता का पोषक है। मानस में एक भाई का भाई के लिए त्याग, पत्नी के लिए समर्पण, पुत्र का पिता और माता के प्रति धर्म का पालन करना आदि हमें दृष्टिगत होता है। आदिकवि वाल्मीकि ने राम को भगवान् न कहकर महापुरुष कहा है।

राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ, जौं चाहसि उजिआर॥

ऐसे उजाले का प्रथम प्रयास मानस के प्रथम खंड में विद्यमान है, किंतु रामजन्म की कथा-लेखन से पूर्व ऐसी अनेक पौराणिक कथाओं का उल्लेख इस कांड में करते हैं, जो राम के जन्म का कारण बनती हैं, यह जन्म लेने के कारण को तुलसीदासजी कुछ इस तरीके से अभिव्यक्त करते हैं—

जब जब होई धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

तुलसी का साहित्य इस कथ्य की पुष्टि है कि सत् एवं असत्, धर्म एवं अधर्म, पाप एवं पुण्य का मेल ही संसार है, किंतु समाज एवं चराचर जगत् के कल्याण के लिए आवश्यक है कि प्राणिमात्र में सत्-धर्म एवं पुण्य का तत्त्व प्रबल बना रहे, किंतु जब-जब संसार में लोक-मर्यादा का उल्लंघन होता है, धर्म एवं सामाजिक व्यवस्था का तिरस्कार होता है, अर्थात् लोक-धर्म का संकट उत्पन्न होता है, तब-तब सगुण नैतिकता के वाहक तुलसी के प्रभु अवतार लेते हैं। रामचरितमानस में प्रभु राम का अवतार इसी सगुण नैतिकता का उदाहरण है।

राम के अवतार का कारण भले ही धरती (धरा) पर दुःख का निवारण हो, किंतु मानसकार यह कहलवाते हैं—

कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरीं प्रगट नर भूपा॥

यदि गोस्वामीजी इतने सारे कथावृत्तों को न भी लिखते तो भी कृति की प्रभावोत्पादकता में कोई कमी न आने पाती, किंतु मानस के आरंभ में 'नानापुराणनिगमागिनम' सम्मति लिखने के कारण तुलसी को ऐसा लगा होगा, जो कथा पुरोहित के माध्यम से वे यजमानों को सुनाया करते थे, उसे यदि रचना के रूप में सुनाएँगे तो रामकथा 'कलि कलुष नसावहीं' होने के साथ-साथ मंगलकारी भी हो जाएगी। मानस की सीमा में केवल और केवल मनुष्य ही नहीं, संपूर्ण प्राणी वर्ग है, उसका संबंध किसी जाति-वर्ग विशेष से नहीं, अपितु समस्त प्राणी-वर्ग का कल्याण उसकी आशा है—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर॥

राम ने अपने जीवन में उन मूल्यों को समझा, जिसमें सामाजिक सौहार्द की स्थापना हो सके। उन्होंने स्वयं हित से उठकर सामाजिक मूल्यों को दृढ़ किया, जिसमें उनके विचारों में समाजवाद के विचारों के दर्शन होते हैं। राम का जीवन एवं चरित्र, स्वहित नहीं, बल्कि परहित एवं लोक-नैतिकता का पोषक है। मानस में एक भाई का भाई के लिए त्याग, पत्नी के लिए समर्पण, पुत्र का पिता और माता के प्रति धर्म का पालन करना आदि हमें दृष्टिगत होता है। आदिकवि वाल्मीकि ने राम को भगवान् न कहकर महापुरुष कहा है। जबकि तुलसी ने ईश्वर का रूप प्रदान कर राम को हमेशा के लिए जीवन और साहित्य का अनिवार्य अंग बना दिया है। तुलसीदास मानस में कहते हैं—

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा।
व्यापक विश्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥

राम वनगमन प्रसंग में राम की महत्ता अथवा पुरुषोत्तमता प्रशांत गहन स्वरूप प्रदान करती है। यहाँ पर वे एक सच्चे आज्ञाकारी पुत्र के रूप में सामने आते हैं, तुलसी के शब्दों में—

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनंद निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन॥

तुलसी का रामचरितमानस अब सिर्फ एक पुस्तक न होकर सामाजिक जीवन की विधायिका बन गई। मानस ने समाज के मानस को न सिर्फ अपने प्रभाव में लिया, बल्कि अपने नैतिक मूल्यों से उन्हें एक मानवीय साँचे में ढालने का भी काम किया, जो इसलाम के आगमन से मतिभ्रम की स्थिति में थे। सामाजिक मूल्यों, पारिवारिक संरचना और नैतिक सबलता दूसरे शब्दों में कहें तो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप

से तत्कालीन आम जनता को सबल बनाने में रामचरितमानस अद्वितीय है। पारंपरिक भारतीय सांस्कृतिक चेतना, जो वैदिक काल से चली आ रही थी, मानस ने उन सभी विचार-दृष्टियों को आम जनता के बीच उनकी भाषा में लोकप्रिय बना दिया।

तुलसी का लोक तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों के सामने इसी चेतनाशक्ति से युक्त होकर बाह्य सांस्कृतिक आक्रमणों का सामना करने में सक्षम हुई। तुलसी के इसी लोकधर्मिता को लक्षित करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं कि किसी परिमित वर्ग से कल्याण से संबंध रखने वाले धर्म की अपेक्षा विस्तृत जनसमूह के कल्याण रखने वाला धर्म उच्चकोटि का है। धर्म की उच्चता उसके लक्ष्य के व्यापकत्व के अनुसार समझी जाती है। गृहधर्म या कुलधर्म से समाजधर्म श्रेष्ठ है, समाजधर्म से लोकधर्म, लोकधर्म से विश्वधर्म, जिसमें धर्म अपने शुद्ध और पूर्ण स्वरूप में दिखाई पड़ता है। नारी जीवन के लिए तुलसी ने जिस श्रेष्ठतम धर्म का विधान प्रस्तुत किया है, वह एकमात्र पतिव्रत धर्म का पालन करना है।

नारी के धार्मिक स्वरूपों के अंकन में तुलसी ने पतिव्रत धर्म की मर्यादाओं का विशेष सतर्कता से पालन किया है। नारी चाहे अपने गुण-दोषों से परिपूरित लौकिक रूप में हो अथवा देवत्व की गरिमा और अलौकिक सिद्धियों से युक्त दैवी स्वरूप या फिर परब्रह्म की आदिशक्ति लोक की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाली दिव्य आध्यात्मिक स्वरूप में ही क्यों न हो, सर्वत्र ही वह उपर्युक्त धर्म की परिधि के अंतर्गत ही अपने गौरवपूर्ण धर्मशील स्वरूप में अंकित हुई है। तुलसी का प्रभाव यह हुआ कि रामलीला व्यापक पैमाने पर आयोजित हुईं। तुलसी के राम में नैतिक और आध्यात्मिक दोनों ही मूल्य हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से वे ईश्वर हैं, ब्रह्म हैं, जबकि नैतिक दृष्टि में वे मर्यादा पुरुषोत्तम राम। मानवीयता के स्वरूप को ग्रहण करके तुलसी ने मानव राम की रचना की, जिससे समाज के घटते हुए जीवन-मूल्यों की प्रवृत्ति को बदलकर मर्यादा की स्थापना हो सके।

समस्त लोक में राम के जैसा संघर्षशील चरित्र नहीं दिखता। राम का संघर्ष एवं युद्ध लोक-कल्याण के लिए है। भारतीय धार्मिक आख्यानों, परंपराओं और इतिहास में कोई भी दूसरा ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। तुलसी ने उस काल के समाज की दारुण दशा, विवश एवं निष्प्राण जनमानस में विश्वास की चेतना जगाने हेतु रामचरितमानस रचा। इस प्रकार मानवीय सभ्यता धारण किए हुए तुलसी का मानस, जिसमें न केवल तुलसी के समूचे युग की व्यावहारिकता और सैद्धांतिकता का दर्शन होता है, अपितु वर्तमान और भविष्य के मूल्यों की दयालुता और नैतिकता का सुंदर पाठ पढ़ाते हुए संपूर्ण विश्व के समक्ष अपने अप्रतिम उदाहरण के प्रस्तोता हैं। रामचरितमानस के राम, जिनमें वे सारे गुण विद्यमान हैं, जो किसी पुरुष को मर्यादा पुरुषोत्तम बनाते हैं। शील, धैर्य, नीति सबका समन्वय हमें मानस के राम में निहित होते दिखाई देता है। मानस समस्त विश्व के लोगों का कंठहार है, तभी मानस की लोकप्रियता पर लक्ष्य करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदीजी कहते हैं— "उनकी रामायण उत्तर भारत की बाइबिल कही जाती है।"

मानस भारतीय कला, संस्कृति एवं आस्था की अमूल्य धरोहर है। वह तुलसी की मौलिक देन है, जहाँ राम ईश्वर भी हैं, ब्रह्म भी, मर्यादा पुरुषोत्तम भी और अयोध्या के राजा भी हैं।

राजकुमार रावण जैसी शक्ति के हंता, किसी के पति, किसी के मित्र, किसी के सेवक, किसी के स्वामी। ईश्वरीय रूप के साथ मानवीय रूप और मानवीय नाते-रिश्ते में राम की संश्लिष्ट छवि को तुलसी ने अपनी कल्पना, आस्था और साधारण जनता की राम के प्रति दास्यभावना से एक करके अद्‌भुत रूप से गढ़ा है। अयोध्या में भी, चित्रकूट में भी और वन में भी, मित्र समाज भी और शत्रु समाज में भी राम की दृढ़ता, विश्वसनीयता आदि झलकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी के रामचरितमानस की कीर्ति न केवल काव्य के आधार पर, अपितु सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सभी दृष्टियों से है। मानस के राम केवल पात्र या अवतार नहीं, बल्कि वे मर्यादित और विनम्र भी हैं। उनकी विशेषता या उनका गुण मानवीय रूप में ईश्वर का तथा ईश्वरीय रूप में मानवबोध कराता है, जोकि अद्वितीय है। इसी विशिष्टता के साथ महाकाव्य का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास जन की भाषा में लिखते हैं। मानस के विषय में रहीम ने लिखा है—

रामचरित मानस विमल, संतन जीतन प्रान।
हिंदुवान को वेद सम, यवनहि प्रकट कुरान॥

निष्कर्ष : तुलसीदास मध्यकाल के जिस सामंती परिवेश में विद्यमान थे, उसमें अनेक विरोधी शक्तियाँ समाज में विभिन्न स्तरों पर संघर्षरत थीं। तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना कर उन विरोधी विचारधाराओं में समन्वय स्थापित करके अत्यंत लोककल्याणकारी कार्य किया। इसलिए रामचंद्र शुक्ल भी कहते हैं, "तुलसीदास उत्तर भारत की समग्र जनता के हृदय मंदिर में पूर्ण प्रेम प्रतिष्ठा के साथ विराज रहे हैं।"

सर्वांगदर्शी लोक-व्यवस्थापक तुलसी की आलोचना करने वालों को ध्यान रखना चाहिए—काव्य का उद्‌देश्य शुद्ध विवेचन द्वारा सिद्धांत निरूपण नहीं होता, बल्कि रसोत्पादन या भावसंचार होता है। कवि लोग बुद्धि की क्रिया की आंशिक मदद ही लेते हैं। अत: इन दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर ही तुलसी साहित्य की मीमांसा होनी चाहिए। निश्चित ही आज तुलसी और उनका साहित्य भारतीय जीवन-पद्धति की आधारशिला है। तुलसी का मानस 'न भूतो न भविष्यति' पंचम वेद स्वरूप जीवनशास्त्र है।

तुलसीदास के रामचरित मानस में न केवल राम के चरित वरन् अन्य चरित्रों या पात्रों को भी स्थान मिला है। मानस हमें केवल कर्तव्य या मर्यादा अथवा धर्म का अवबोध नहीं कराता, अपितु संपूर्ण सामाजिक व कलिकाल से भी अवगत कराता है। तुलसी के मानस की सबसे बड़ी विशेषता है—प्रेम व सौहार्द, जिसके द्वारा आप स्वयं व दूसरे को मर्यादित व प्रज्वलित कर सकते हैं। मधुसूदनजी इस पर टिप्पणी लिखते हैं—

आनंद कानने हसमि जन्मस्तु सितृ: कवितञ्जरी भाति रामभ्रमर भूषिता।

सा.अ.

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
सत्यवती महाविद्यालय (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-११००५२
दूरभाष : ८५२७१५७५९६

कहाँ चला गया मेरा भोला मन

● सनत

प्रकृति में मस्त बहार आई है, मैं उसकी शोभा को अपनी आँखों से देख रहा हूँ। फूलों की खुशबुएँ उड़ रही हैं, मैं उनकी महक ले रहा हूँ। तितली-भँवरे मँडरा रहे हैं, मैं उनकी रंगीनियों पर चकित हो रहा हूँ। चिड़ियों के झुंड उड़ रहे हैं, मैं उनकी चंचलता पर मुग्ध हो रहा हूँ। उनकी मधुर चहक सुनाई दे रही है, मुझे उनके कंठ का स्वर अच्छा लग रहा है।

इस मनमोहक दृश्य ने मेरी इच्छा को भी जगा दिया है। मन किया है कि मैं एक चेतन भोला मन का व्यक्ति बनूँ। यह एक सबसे अच्छी और श्रेष्ठ उदात्त भावना है, जो मुझे आत्मिक प्रगति के शिखर की ओर ले चलेगी। मैं इस विषय में गंभीर हो गया हूँ। मैं उत्कृष्ट और निकृष्ट दोनों का चिंतन करने लग गया हूँ। मेरे संवेदित सोच के दायरे में भी बढ़ोतरी हो गई है। एकाएक कड़क और क्रोधित हो जाने वाले मेरे मन में विनम्रता आ गई है। लेकिन इससे मन में बड़ी व्याकुलता है।

मेरा भोला मन पूछता है—"तुम कहाँ पर हो?" उत्तर देता हूँ—"मेरे स्वयं के विश्वास के अनुसार मैं सही स्थान पर हूँ।" वह आगे पूछता है—"अच्छा। लेकिन क्या दूसरे लोग भी तुम्हारी तरह सही स्थान पर हैं?" मेरा उत्तर होता है—"मेरे अनुमान से कुछ हैं भी सही स्थान पर, कुछ नहीं भी हैं। जो सही स्थान पर नहीं हैं, वे समाज में सही दृश्य उपस्थित नहीं कर रहे।" वह फिर प्रश्न करता है—"तुम्हारा मतलब वे लोग दृश्यमान होते हुए भी दृश्य रचना से पृथक् हैं?" मैं फिर उत्तर देता हूँ—"इसी बात का तो रोना है। ठीक रचना के समय अदृश्य होने वाले लोगों की यही तो अकर्मण्यता है। उनका नहीं रहकर नहीं सोचना खलता है। भई, मैं तो निरंतर अच्छा-खराब सोच लेता हूँ, इसलिए मैं हूँ। मेरा अस्तित्व है।"

तब मन कैसा हो? इस पर शुक्ल यजुर्वेद के चौंतीसवें अध्याय के प्रथम मंत्र में बड़ी सुंदर शुभकामना की गई है—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

अर्थात् जो मन जाग्रत् मनुष्य से बहुत दूर चला जाता है, वही द्युतिमान मन सुषुप्तावस्था में सोए मनुष्य के समीप आकर लीन हो जाता है। जो दूर तक जाने वाला है, जो प्रकाशमान है और जो श्रोत्र आदि इंद्रियों को ज्योति देने वाला है, वह मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला हो।

मैं मन को संबोधित करता हूँ—"ऐ मेरे प्रिय भोले मन! तुम शुभकर्ता हो। गतिशील हो। कल्पना करते हो। अतीत में जाते हो। भविष्य में जाते हो। फिर वर्तमान में लौट आते हो। पर्यवेक्षण करते हो। विचार करते हो। तुम

सुपरिचित लेखक। 'अभिषेक को लग गया चश्मा' तथा कुछ संपादित पुस्तकें एवं साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। आकाशवाणी केंद्रों से प्रसारण। युकस, ग्राम्य भारती, छत्तीसगढ़ी साहित्य परिषद्, छत्तीसगढ़ राजभाषा आयोग, मुक्तिबोध रचना लेखन शिविर राजनांदगाँव सहभागिता प्रमाण-पत्र से सम्मानित।

वैचारिक हलचल हो। तुममें संज्ञान है। बोध है। विवेक है। चेतना है। होश में रहना तुम्हारा धर्म है। मेरे मस्तिष्क के भीतर में ही तुम्हारा निवास है। मैं समझता हूँ, जहाँ मैं रहता हूँ, वहाँ तुम भी रहते हो। जहाँ मैं जाता हूँ, वहाँ तुम भी जाते हो।"

लेकिन समय के साथ मेरे भोले मन के स्वभाव में परिवर्तन आ गया है। यह मन मेरी ही बात को नहीं सुनता। मैं जब भी बोलूँ, मेरी बात को अनसुनी कर देता है। अपने मन की करने में लग जाता है। इस मन को मैं क्या कहूँ। अब तो स्थिति बहुत रुलाती है। अफसोस जताती है। स्वस्थ मन मेरे ही भीतर में नहीं है। मेरे ही नियंत्रण में नहीं है। उसने अस्वस्थ मन को मेरे पास छोड़ दिया है और भोलेपन से लबरेज स्वस्थ मन को अपने साथ लेकर कहीं चला गया है। मैं बिना स्वस्थ मन के अपने मनोभावों को प्रकट करने में असुविधा का अनुभव कर रहा हूँ। मैं उसके बिना अनाथ-सा हो गया हूँ और उसी भोले मन को निरंतर ढूँढ़ रहा हूँ।

तत्क्षण मैं अपने मन को स्थिर कर लेता हूँ। मन के कर्तृत्व का स्मरण करता हूँ—उस भोले मन में बहुत सारी विशेषताएँ थीं। बहुत सारे गुण थे। वह कितना निर्दोष था। उसकी कितनी प्रशंसा होती थी। उसे सुरक्षित रखना मेरा दायित्व था। मैं मन को ही उस सीधे-सादे मन की पिछली भूमिका का स्मरण दिलाता चलता हूँ।

वह भोला मन कितना सुंदर था, जो गाँव के किसी भी अमीर-गरीब घर की किशोरी या किशोर को अपनी भगिनी या अपना भ्राता और अपनी पुत्री या अपना पुत्र मानता था। एक घरु रिश्ता-सा निभता था। कुछ कमी या अड़चन आ जाए तो सहायता को हाथ ऊपर उठ जाते थे। उसे बराबर सम्मान ही देता था। उसका सम्मान अपना सम्मान होता था। उसकी प्रसन्नता अपनी प्रसन्नता होती थी। उस समय की आँखें ईमानदारी की आँखें होती थीं। नाचती नहीं थीं। कुछ और दृष्टि से देखने की चेष्टा कभी नहीं करती थीं। हाय, कहाँ चला गया ऐसे व्यक्ति का वह शिष्ट भोला

मन! उस भोले मन को मेरा विकल मन यहाँ-वहाँ ढूँढ़ रहा है।

वह भोला मन कितना विवेकवान था और उसमें कितनी सहानुभूति थी, जो गाँव से गुजरते किसी अनजान पथिक का हालचाल पूछता था। मसलन 'तुम कहाँ से आ रहे हो और कहाँ जा रहे हो। आओ, थोड़ी देर मेरे घर के औसारे पर बैठ लो। धूप जुड़ा लो। पसीना पोंछ लो। थकान मिटा लो। भूख-प्यास लगी होगी। मेरे घर का चींवड़ा-गुड़ खा लो। रोटी-तरकारी खा लो। पानी पी लो। तुम्हारी अभी खाने की इच्छा नहीं है? तब अपने अँगोछे में बाँध लो, रास्ते में खा लेना। अच्छा, तुम लँगड़े भी हो? चलो, तुम्हारे जाने के लिए साइकिल की व्यवस्था करवा देता हूँ। मेरा आदमी तुम्हें साइकिल पर बिठाकर आधी दूर छोड़ देगा। अच्छा, पैरों में चप्पल नहीं है? धूप से पाँव जलते हैं? बड़ी मुश्किल से इस गाँव में पहुँचे हो? कोई बात नहीं, मैं हूँ न। तुम्हारे पैरों के लिए अभी एक जोड़ी नए चप्पल दिलवा देता हूँ। अच्छा, विवाहिता बेटी को देखने समधी के घर जा रहे हो? धोती-कमीज फट गई है? अरे भाई, मुझे अपना ही समझो। तुम्हारी इज्जत मेरी इज्जत। तुम्हें नई धोती-कमीज दे देता हूँ, पहन लो। बेटी को ग्यारह रुपए भी मेरी ओर से पकड़ा देना। बेचारी कोई तकलीफ-वकलीफ में न रहे।' इन दिनों कौन पथिक आता है और कहाँ जाता है, कोई पूछता है, न ही पता लगाता है। हाय, कहाँ चला गया ऐसे दयालु और सहृदयी व्यक्ति का वह भोला मन! मैं उस भोले मन को कब से ढूँढ़ रहा हूँ।

वह संयुक्त परिवार में रहने वाला भोला मन कितना आनंदित था, जो सहकार की भावना को महत्त्व देता था। संयुक्त परिवार में सबका काम बँटा हुआ था। खेत-खलिहान के काम को कौन-कौन मिलकर करेंगे, यह तय होता था। नौकरी-चाकरी और विद्यालयीन शिक्षा की ओर कौन-कौन जाएँगे, इस पर विचार होता था। खाना एक चूल्हे में बनता था। रात में सब एक साथ बैठकर भोजन करते थे। किस्से-कहानियों का दौर चलता था। पर्व-समारोह में सबकी भागीदारी होती थी। घर के मुखिया से सब सलाह-मशविरा करते थे। सबकी आवश्यकताएँ पूरी होती थीं। सबमें एकता, समर्पण, त्याग और सम्मान का भाव था। कितना भी दु:ख और समस्या आ जाए, उसके समाधान के लिए सब तत्पर रहते थे। पारिवारिक जीवन-यापन में एक सरलता, सुविधा और प्रसन्नता दिखाई देती थी। उस रहन-सहन को भूल गए लोग। अब तो क्रमश: एक-एक पुत्र का विवाह होते ही वे सब अलग-अलग रहने की चुपचाप योजना तैयार करते हैं। माता-पिता और भाइयों में बँटवारे को लेकर कलह, झगड़े और तनातनी की स्थिति बन जाती है। घर के गोपनीय मामलों को पूरा गाँव जान जाता है। ये विवाद चौपाल, ग्राम पंचायत और पुलिस-थाना-कचहरी तक चले जाते हैं। निर्मम अपराध भी होते हैं। उसके पीछे पूरा घर-परिवार बरबाद हो जाता है। उनके लिए तो घर, जमीन-जायदाद, टी.वी., कंप्यूटर, वाहन, मोबाइल और बाहरी दोस्त-यार ही अपने संयुक्त परिवार के सदस्य हो जाते हैं। दादा-दादी, माता-पिता, भैया-भौजी, काका-काकी, ननद-देवर, नाती-पोते इन सब रिश्तों में बिखराव आ गया है। ओह, कहाँ चला गया वह सद्प्रवृत्ति की मिठास वाला भोला मन! मैं उस भोले मन को ढूँढ़ रहा हूँ।

वह भोला मन कितना संजीदा था, जो ग्रामीण महिलाओं को लघु कुटीर उद्योग से जोड़कर रखता था। पुरुषों का प्रोत्साहन पाकर वे उद्यमी महिलाएँ चना, तिल, मूँगफली, धान और जुवार के फुटेना, लाई और मूढ़ी को गुड़ के साथ मिलाकर अलग-अलग मीठा लड्डू बनाती थीं। आम, इमली, शिमला मिर्च, लेसवा, टमाटर, गाजर, नीबू और आँवला आदि का अचार, सॉस व मुरब्बा बनाती थीं। हवा करने के लिए बाँस की खपच्चियों से रंगीन धागे गूँथकर सुंदर हाथपंखा बनाती थीं। मिट्टी के नमूनेदार रंगीन गुल्लक बनाती थीं। अनेक प्रकार के खेल-खिलौने भी बनाती थीं। उन्हें बाजार में ले जाकर बेचती थीं। उनके ग्राहक बच्चों के साथ-साथ बड़े भी होते थे। उन्हें खूब शौक से खरीदते थे। इससे उन महिलाओं को आर्थिक आमदनी होती थी। वे महिलाएँ कितनी होशियार थीं। अब उसी गाँव की कुछ महिलाएँ जमकर गप्पें लड़ाती हैं। इसकी-उसकी चुगली करती हैं। दो-तीन घंटे के कीमती समय को यों ही व्यर्थ गुजार देती हैं। अंत में कहती हैं कि बहना, बड़ी गरीबी है, क्या करें। पहले की सुंदर पाक, हस्तकला और दो पैसे कमाने की सद्बुद्धि उनकी सूझ में नहीं आती। कहाँ चला गया वह आत्मनिर्भरता वाला भोला मन! मैं उस भोले मन को ढूँढ़ रहा हूँ।

नई प्रेरक बातें सीखने के लिए कलाविदों, ज्ञानियों और महापुरुषों की संगत करता था। तभी तो गाँव से कोई नानकदेव, विवेकानंद, टैगोर, बंकिमचंद्र, शरतचंद्र, ईश्वरचंद्र, सुभाषचंद्र, सावित्रीबाई फुले, सुभद्रा कुमारी, महादेवी, प्रेमचंद, प्रसाद, माखनलाल, दिनकर, रेणु, मुकुटधर, नागार्जुन, प्रदीप, नीरज, श्रीराम शर्मा आचार्य, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, लालबहादुर शास्त्री, महर्षि महेश योगी, दशरथ माँझी और डॉ. अब्दुल कलाम जैसी महान् धुनी विशिष्ट प्रतिभाएँ निकलती थीं। पूरा गाँव उन पर गौरवान्वित होता था।

वह भोला मन कितना अनुशासित था, जो गाँव के सामाजिक वातावरण को स्वच्छ रखता था। विशेषकर युवावर्ग हर प्रकार के नशापान से दूरी बनाता था। द्यूतक्रीड़ा से तौबा करता था। आपराधिक कृत्यों को गलत मानता था। उनका ध्यान समग्र कला, शिक्षा और चारित्रिक उत्थान पर केंद्रित होता था। नई प्रेरक बातें सीखने के लिए कलाविदों, ज्ञानियों और महापुरुषों की संगत करता था। तभी तो गाँव से कोई नानकदेव, विवेकानंद, टैगोर, बंकिमचंद्र, शरतचंद्र, ईश्वरचंद्र, सुभाषचंद्र, सावित्रीबाई फुले, सुभद्रा कुमारी, महादेवी, प्रेमचंद, प्रसाद, माखनलाल, दिनकर, रेणु, मुकुटधर, नागार्जुन, प्रदीप, नीरज, श्रीराम शर्मा आचार्य, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, लालबहादुर शास्त्री, महर्षि महेश योगी, दशरथ माँझी और डॉ. अब्दुल कलाम जैसी महान् धुनी विशिष्ट प्रतिभाएँ निकलती थीं। पूरा गाँव उन पर गौरवान्वित होता था। सामाजिक कमियों को दूर करने के लिए शिक्षाएँ ली गईं। पर कमियाँ उल्टा बढ़ गईं। चालाकियाँ हावी हो गईं। कहाँ चला गया अति जिज्ञासु और धुनी वह भोला मन! मैं उस भोले मन को ढूँढ़ रहा हूँ।

वह भोला मन कितना संस्कृतिप्रेमी था, जो गाँव में सांस्कृतिक

आयोजन को प्राथमिकता देता था। कला और कलाकारों का सम्मान करता था। गाँव में आए दिन कोई-न-कोई कला मंडली आमंत्रित होती थी। अपनी कलाओं का प्रदर्शन करती थी और बहुत बड़ी सामाजिक सीख दे जाती थी। रामलीला, कृष्णलीला, हरिश्चंद्र-तारामती, बालक ध्रुव, भक्त प्रह्लाद, नारद मोह, सत्यवान-सावित्री और बुद्ध चरित जैसे गीतिनाटिका, नाटक और एकांकियाँ होती थीं। लोकनौटंकी, ओपेरा, लोकनृत्य और लोकखेल भी होते थे। इस बहाने गाँव में कला प्रवृत्ति बढ़ती थी। समरसता का वातावरण बनता था। गाँव के सयाने लोग सामाजिक कार्यों में लोगों की मानसिक ऊर्जा का नियोजन करते थे। दरवाजे पर आई गाय को एक-दो रोटी अवश्य खिलाते थे। कुओं-तालाबों की खुदाई और सफाई कराते थे। पेड़-पौधे लगवाते थे। उनकी सुरक्षा की जाती थी। गाँव से पलायन करने के बारे में कोई सोचता भी नहीं था। एकाएक कहाँ चला गया वह सांस्कृतिक उत्थान करने वाला भोला मन! मैं उस भोले मन को ढूँढ़ रहा हूँ।

वह भोला मन कितना उदार विचारों का था, जो मानवीय सद्भाव को मद्देनजर रखकर परस्पर संतुलित जीवन में सहभागी होता था। लड़का काना, कनबहरा, लँगड़ा या काला-कलूटा भी होता था, तब भी लड़की उससे विवाह के लिए राजी हो जाती थी। उसी प्रकार लड़का भी लड़की के विकलांग होने के बावजूद उससे वैवाहिक संबंध के लिए राजी हो जाता था। एकमात्र कारण होते थे एक-दूसरे की विशिष्ट योग्यताएँ और विशेषताएँ। विशेष शारीरिक कुरूपता और कमियाँ नहीं देखी जाती थीं। बुजुर्गों की समझाइश पर दोनों पक्षों को ये स्वीकार्य हो जाते थे। जीवनसाथी के रूप में पति-पत्नी एक-दूसरे को पूरक ही समझते थे। उनके मध्य आत्मिक प्रेम के फूल सुरभित होते थे। जीवनयात्रा में गाड़ी अंतिम समय तक सहज भाव से दौड़ती थी। थक गए, कितना तलाशें, क्या-क्या पाएँ, क्या-क्या गँवाएँ, खोट तो हममें भी हैं। हम मनुष्य तो संपूर्ण बिल्कुल नहीं हैं। चारित्रिक सुंदरता ही सार है। इन्हीं सब बातों पर सकारात्मक निर्णय लिए जाते थे। कहाँ चला गया वह समाज के सामने उदाहरण प्रस्तुत होने वाला भोला मन! मैं उस भोले मन को ढूँढ़ रहा हूँ।

वह भोला मन कितना संतुष्ट था, जो छुट्टियों में परिवार के साथ नाना-नानी के गाँव जाता था। आम की अमराई और बगीचा देखता था। आम, अमरूद और केला खाता था। बेल का शरबत, आम का पन्ना, काँजी बड़ा, दही लस्सी और छाछ पीता था। धनिया-टमाटर की चटनी से रोटियाँ खा लेता था और प्रसन्न होता था। अब वह छुट्टियों में नाना-नानी के गाँव नहीं जाता। ग्राम्य जीवन की संस्कृति की जानकारियाँ लेने वाली उसकी रुचि पता नहीं किस खोह में घुस गई। किसी हिल स्टेशन या गोवा-मसूरी-शिमला-सिंगापुर-थाईलैंड टूर पर जाने की सोचता है। जन्मदिन या अवसर विशेष पर खाना भी घर में बनाकर नहीं खाता। किसी रेस्टोरेंट और फाइव स्टार होटल में खाना खाता है। वहाँ एक-दो किलोमीटर दूर आने-जाने के लिए पैदल भी चल नहीं सकता। उसके लिए कार की व्यवस्था करता है। बाद में महँगाई पर विलाप करता है। जिह्वा पर नियंत्रण नहीं कर सकता। फिजूलखर्ची पर कटौती नहीं कर सकता। सीधे व्यवस्था को कोसता है। कहाँ चला गया अपने ही निकट के गाँव को देखकर आनंदित हो उठने वाला वह भोला मन! मैं उस भोले मन को चिराग लेकर ढूँढ़ रहा हूँ।

वह भोला मन कितना सरल था, जो अपने शरीर के पहनावे के लिए मात्र एक जोड़ी कपड़े पर ही संतुष्ट रहता था। पैंट-कुरता, कमीज-पजामा या धोती-कमीज, जो भी मिले, पहनकर गुजारा कर लेता था। उसी कपड़े को धो-धोकर पहनते साल बिता देता था। जब दीपावली का त्योहार आता था, तब ही उसके लिए नए कपड़े का जुगाड़ जमता था। बरसात में कपड़े धो ले या पानी की बौछार से कपड़े भीग जाएँ तो धूप में सुखाने में उसे बड़ी मुश्किल होती थी। बिना कपड़ा पहने घर से निकलना हो जाता था पूरा बंद। तब जैसे-तैसे आग से सेंक-साँककर उसे अधसूखे कपड़े पहनने पड़ते थे। काम चलाने की एक विवशता होती थी। जिस प्रकार आज के जमाने में लोगों का अपने स्टेटस सिंबल को बनाए रखने के लिए हर दो माह में शॉपिंग मॉल से कपड़े खरीदकर पहनने का शौक है। उन दिनों लोगों के हाथ में उतने पैसे जुटते नहीं थे। नए कपड़े पहनने का उनका मन तो होता था, लेकिन इच्छा मन में ही दम तोड़ देती थी। फटे कपड़े पहनने में लज्जा भी आती थी। उसी को पैबंद लगाकर सिल-सिलकर पहनते थे। शहरी सभ्यता को देखें तो आजकल फटे कपड़ों को कूड़ेदान में फेंक दिया जाता है। जाँघ-घुटना दिखाने वाले फटे जींस कपड़ों को पहनना एक फैशन बनाया गया है। फिर भी नए कपड़ों के लिए पूरे एक साल की प्रतीक्षा लोगों के धैर्य और सहनशीलता का परिचायक है। कहाँ चला गया मात्र एक जोड़ी कपड़ों में टिके रहकर तपस्वी-सा तपकर कुंदन-सा दमकने वाला वह संतोषी भोला मन! मुझे उस भोले मन की कई दिनों से तलाश है।

वह भोला मन कितना सत्यभाषी था, जो हर पल, हर किसी से सत्य भाषण करता था। जिससे भी सत्य वचन करता था, उसे पूरा निभाकर ही छोड़ता था। उससे पलटता नहीं था। भले ही सत्य बोलने में भारी कष्ट मिले, उसे भारी कष्ट सहना मंजूर था। उसके चेहरे की आभा में ही सत्यता दिख जाती थी। ऐसा कदापि नहीं होता था कि कोई व्यक्ति किसी सज्जन की कला की भरपूर प्रशंसा करे। उसके बाद किसी रविवार की संध्या उन्हें समोसा, बड़ा, दूध, खीर आदि अल्पाहार या स्वादिष्ट मूँग की खिचड़ी जिमाने के लिए अपने घर में आमंत्रित करे और कहीं खिसक जाए। जब भेंट हो तो मीठी-मीठी बातों से सफाई दे दे कि श्रीमान्, मैं तो अचानक मित्र के साथ फिल्म देखने शहर के टाकीज में चला गया था। मुझसे भूल हो गई क्षमा करें। आप कल सोमवार को पक्का उसी समय पर मेरे घर आइए। मैं अवश्य मिलूँगा। जब श्रीमान् उस दिन पहुँचे तो कहे कि बहुत दुःख की बात है, आज ठीक समय पर हमारा गैस चूल्हा खराब हो गया है। चूल्हा जलाने के लिए सूखी लकड़ी का भी टोटा हो गया है। हाँ, कल मंगलवार का दिन एकदम पक्का रहेगा। आप खाने के लिए अवश्य पधारें। फिर अगली संध्या को जब वे बहुत विश्वास से जाएँ तो उस मेजबान के घर में अलीगढ़ का ताला लटकता हुआ मिले।

इस प्रकार किसी भूखे-प्यासे सज्जन के साथ हास्यास्पद मजाक

और झूठा व्यवहार सर्वथा निंदनीय था। लोकलाज के भय से कोई करता भी नहीं था। वस्तुओं के लेन-देन की बातें मुँहजुबानी भी होती थीं, जो सत्य वचन पालन के लिए पर्याप्त थीं। सत्य की रक्षा के लिए लोग मर मिटते थे। जैसे कि सत्य और मानव कल्याण के लिए गौतम बुद्ध ने राजभोग का सुख छोड़ दिया। भिक्षुक बन गए। दु:खियों के आँसू पोंछे। उनकी सेवा की। कहाँ चला गया ऐसा सत्यसेवी और सत्यमार्गी वह भोला मन! मैं उस भोले मन की खोज में भटक रहा हूँ।

वह भोला मन पहले कितना ज्ञानी भी था, जो सदैव मीठी वाणी बोलता था। आत्मभाव में रहता था। स्वयं को देहभाव से पृथक् रखता था। उसने भलीभाँति जान लिया था कि देहभाव उसमें अहंकार उत्पन्न करेगा, क्योंकि उसी देहभाव में ही द्वेषभाव आता है। जबकि आत्मभाव में निर्मलता आती है। जैविक रूप से सब मनुष्यों का शरीर समान है। शरीर की संरचना भी समान है, लेकिन लोगों की तेरे-मेरे की सोच उसे केंद्रिक, सांप्रदायिक और सामाजिक बंधन में बाँधती है। यही सोच सबको देह अहंकार से ग्रसित करती है। भोला मन कहता था—"मैं स्वयं को आत्मा मानता हूँ। अपने शरीर में आत्मशक्ति की वृद्धि करता हूँ। वाक् संयम करता हूँ। जहाँ भी रहूँ, वाणी का उपयोग सोच-समझकर करता हूँ। वाणी का संयम मेरे मन को एकाग्र रखता है। मुझे मालूम है, मेरी वाणी से निकले शिष्ट भाषा के सार्थक शब्द किसी झगड़ा, बहस, कटुता और द्वेष को जन्म नहीं देंगे।" मधुर वचन अमृत तुल्य होता है। वह औषधि का काम करता है, यह जानते हुए भी कई लोग दूसरों को बात-बात में कटु वचन बोलते हैं। उनके मर्मस्थल को चोट पहुँचाते हैं। इस दोष से बचना चाहिए और मधुर वाणी ही बोलनी चाहिए। कहाँ चला गया ऐसा वाणी का ज्ञान रखने वाला वह मृदुभाषी भोला मन! मैं उस भोले मन को आज ढूँढ़ रहा हूँ।

मैं अपने मन को आर्त स्वर में बार-बार पुकार रहा हूँ—"ऐ मन! तुम कितने अच्छे हो। मेरे अतिरिक्त जिस मनुष्य में भी रहते हो, उसके द्वारा नियंत्रित रहो, कुशल रहो। तुम अपनी संकल्प शक्ति को बेजोड़ बनाए रखो। तुम्हारा बचकर रहना आवश्यक है। तुम बचे रहोगे तो मेरी मनुष्यता बची रहेगी। सभ्यता और संस्कृति बची रहेगी। तुम्हारी पवित्र निश्छलता वरेण्य है। तुम्हें बचाना मेरा ही दायित्व है। मेरी दृढ़ इच्छा पूरी करो, आओ, शीघ्र लौट आओ और मेरे अंतर प्राण-मस्तिष्क में स्थायी रूप से बस जाओ।"

अब तो मेरी प्रार्थना स्वीकारी जा चुकी थी, इसका शुभ संकेत वह भोला चेतन मन अपनी पुलकन से ही दे रहा था। मन की चेतना का प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा था। मन जाग रहा था। वास्तव में मन कहीं गया नहीं था, बल्कि मेरे ही अंदर के किसी कोने में सोया पड़ा था।

साअ

ऋतु साहित्य निकेतन, जूट मिल थाना के पीछे बगल गली,
हनुमान मंदिर के पास,
रायगढ़-४९६००१ (छत्तीसगढ़)
दूरभाष : ७०६७६४३४५२

देशभक्ति

लघुकथा

• मोहम्मद तारिक असलम

उस दिन मैं अपने ऑफिशियल चैंबर से बाहर निकला ही था कि महेश बाबू की मुझ पर दृष्टि पड़ गई। उन्होंने आवाज दी, "सर! एक मिनट के लिए इधर आइए।"

"कहिए क्या बात है, महेश बाबू?"

"इनसे मिलिए। ये हैं मनोज सिंह। ये हमारे कार्यालय से होने वाले विकास कार्यों में अपना योगदान देना चाहते हैं। इनकी इच्छा है कि ये समाज के लिए कुछ योगदान करें। अपने आसपास के विकास कार्यों में हाथ बटाएँ।"

"यह तो बहुत ही अच्छी बात है।"

"मगर मैंने आपको पहले यहाँ कभी देखा नहीं। इसलिए अपने बारे में कुछ बताएँ। जानकर प्रसन्नता होगी।"

यह सुनकर वह प्रफुल्लित हुए और बताने लगे, "जी सर! मैं आर्मी में सूबेदार था। रिटायर हो चुका हूँ। मैं चाहता तो कुछ साल और देश की सेवा कर सकता था, किंतु इसके लिए एक बार फिर ग्लेशियर क्षेत्र में छह माह ड्यूटी करनी पड़ती, जो मैं एक बार कर चुका हूँ, अब हिम्मत नहीं हुई। अबकी बार तो शरीर की चमड़ी उतर जाती। यह सोचकर रिटायरमेंट ले ली।"

"बहुत अच्छी बात है।"

"हम आपकी क्या मदद कर सकते हैं?"

"जी, मैं सोचता हूँ कि आपके ऑफिस से जारी विकास योजनाओं में अपना योगदान दूँ। इससे मुझे भी आर्थिक लाभ होगा सर! मैं स्पष्ट विचार रखता हूँ, सैलूट करना मेरा धर्म है, किंतु अब इससे काम नहीं चलेगा। कुछ इधर से भी आता रहेगा तो सबकी सेवा भी करता रहूँगा। वैसे मैं वाटर सप्लाई भी करता हूँ। कोई कमी नहीं है, लेकिन आपके ऑफिस से करोड़ों-अरबों का विकास कार्य होता है तो कुछ भागीदारी मेरी भी होनी चाहिए कि नहीं सर!"

फिर कहा, "समाज-सेवा का यह शुभ अवसर मैं खोना नहीं चाहता। क्यों सर! मैंने कुछ गलत तो नहीं कहा न?"

"अजी नहीं, असली देशसेवा तो यही है।"

साअ

हारून नगर कॉलोनी, प्लाट-६,
सेक्टर-२, रोड नं.-३, फुलवारी शरीफ,
पटना-८०१५०५ (बिहार)
दूरभाष : ६२०२७४३६५५

कालचक्र

● श्यामसुंदर मिश्र

ज्योतिष विद्या को जातक की एक्सरे मशीन कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। जन्म के समय शिशु के ऊपर ब्रह्मांड में मौजूद ग्रह-नक्षत्रों की अदृश्य किरणों का प्रभाव पड़ना शाश्वत सत्य है। जिसका विश्लेषण भारत की अतुलनीय गणित विद्या द्वारा किया जाता है। पंडित वंशीधर राजस्थान के टोंक जिले के अंतर्गत मँहरूँ गाँव के सुप्रसिद्ध ज्योतिष घराने से थे। इनके पूर्वजों के द्वार पर राजा-महाराजा एवं जमींदारों की बग्घियाँ ज्योतिषाचार्यजी को लेने हेतु आती रहती थीं। पंडितजी बिना भेदभाव के पहले आई बग्घी में बैठ जाते थे। शेष को अगली किसी तिथि को आने का निर्देश देकर विदा कर देते थे। उनकी यह ख्याति मात्र इसलिए थी कि ज्योतिषीय गणना के पश्चात् वे जो फलादेश सुनाते एवं लिखकर देते थे, वह अकाट्य था और फलित होकर ही रहता था। वर्षों पैतृक ग्राम मँहरूँ को अपनी प्रतिभा से रोशन करने वाले पंडितजी की इच्छा सर्वविद्या की राजधानी काशी में प्रवास करने की हुई तो जयपुर की रामगंज की बड़ी चौपड़ स्थित करणोत हाउस के मालिक, जो कोटखावदा स्टेट के गद्दीनशीन और दुर्गादास राठौड़ के वंशज थे, इस हेतु आगे आए और अपने वकील कल्याण बख्शजी (जो जयपुर की रामगढ़ तहसील के निवासी थे) के माध्यम से काशी के गोपी-गोविंद घाट (जिसे अब लालघाट के नाम से जाना जाता है) स्थित दो मकान व लाटभैरों स्थित दो बगीचे पंडितजी को दान कर दिए। सुप्रसिद्ध वकील कल्याण बख्शजी के बड़े पुत्र एडवोकेट भँवर लालजी शर्मा बाद में नगर पालिका जयपुर के चेयरमैन एवं हवामहल क्षेत्र से सात बार विधायक तो बने ही, स्वायत्त शासन जलदाय तथा शिक्षामंत्री भी बने। घाट की सीढ़ियों पर बने मकान में पंडितजी के भतीजे लक्ष्मीनारायण मिश्र अपनी पत्नी व पाँच पुत्रों के साथ रहने लगे एवं घाट के ऊपर गली में स्थित मकान के ऊपरी हिस्से में ज्योतिष कार्यालय खोल लिया गया। क्योंकि नीचे के तल में गोप्रेक्षेश्वर महादेव की स्वयंभू मूर्ति स्थापित थी, जो कालांतर में गौरीशंकर महादेव के नाम से विख्यात हुआ। क्योंकि मूर्ति के लिंग में ही माता पार्वती का भव्य मुखमंडल समाहित है। अचूक फलादेश के चलते कार्यालय शीघ्र ही प्रसिद्धि की ऊँचाइयाँ छूने लगा और पंडितजी के यहाँ भीड़ उमड़ने लगी।

पंडितजी दरियादिल इनसान थे। अत: लाटभैरव स्थित बगीचों में कभी रामकथा व कभी सुंदरकांड के पाठ का आयोजन कराने लगे। जहाँ अकसर दाल-बाटी-चूरमा अथवा काशी की पहचान भाँग-ठंडई, रबड़ी व मलाई भी आगंतुकों को परोसे जाने लगे। इस नश्वर संसार की रीति

सुपरिचित कवि, लेखक। आकाशवाणी वाराणसी द्वारा २०११ से कविताओं, वार्त्ता एवं साक्षात्कार का प्रसारण; दूरदर्शन वाराणसी से कविताओं का प्रसारण, आकाशवाणी बीकानेर से अनेक बार काव्य प्रसारण। २०१४ में पुस्तक गोवंश के विविध स्वरूप प्रकाशित।

के अनुसार पंडितजी भी एक दिन स्वर्ग सिधार गए। अत: आयोजन तो दूर की बात, दोनों बगीचे भी क्रमश: हाथ से निकल गए। इधर ज्योतिष कार्यालय उनके भतीजे पं. लक्ष्मी नारायण मिश्र ने सँभाल लिया। क्योंकि दोनों मकानों पर उनका नाम चढ़ चुका था। पर सम्यक् ज्ञान के अभाव में पहले जैसा कुछ न था। पं. लक्ष्मी नारायण ज्योतिष के साथ ही झाड़-फूँक का कार्य करके जीविका चलाने लगे। उनकी पत्नी सरयूबाई धर्मभीरु महिला थीं। पं. लक्ष्मीनारायणजी के दूसरे नंबर के पुत्र पं. बंशीधर के मन में ज्योतिष विद्या की गहराइयों में उतरने की असीम ललक थी। अत: वे बनारस के तीन-चार धुरंधर ज्योतिषियों के यहाँ शिष्य बनकर शिक्षा ग्रहण करने लगे। जिनमें दाऊजी का नाम ज्यादा ही चर्चित था। अत्यधिक ज्ञान के चलते देश के कोने-कोने से जिज्ञासु आने लगे। मायानगरी बंबई से यदा-कदा फिल्म डायरेक्टर भी पंडितजी के पास आने लगे। प्रसव के दौरान पंडितजी की दो पत्नियाँ दिवंगत हो चुकी थीं। वर्तमान में युवा पत्नी कमला के साथ सुख से जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनका पहला पुत्र छैल बिहारी ग्राम मँहरूँ में मुंडन संस्कार के दौरान चल बसा। ग्रामीण मान्यताओं के अनुसार उसे डाकिनी खा गई, क्योंकि शायद ही किसी ने बालक को रोते हुए देखा था। इस वज्राघात ने उन्हें तोड़कर रख दिया। इस पीड़ा से दंपती तभी उबरे, जब दो वर्ष बाद श्याम का जन्म हुआ। अब श्याम के लालन-पालन में तनिक सी चूक से भी वे घबरा जाते थे। अत: बड़ी ही सावधानी एवं लाड़-प्यार से उसकी देखरेख होने लगी। संभवत: विधाता ने वंशीधर के भाग्य में पुत्र का अल्पकालीन सुख ही लिख रखा था। श्याम ने अभी तीसरे वर्ष में प्रवेश किया ही था कि उन्हें अपनी बड़ी साली की पुत्री के विवाह में मध्य प्रदेश के सागर शहर में जाना पड़ा। विवाह समारोह के दौरान ही वे लू से ग्रसित हो गए। साधारण इलाज से ठीक होकर काशी भी चले आए, किंतु दबे हुए रोग ने फिर जोर पकड़ा तो छूटने का नाम ही न ले रहा था। हताश वंशीधर ने अपनी कुंडली निकाली और बड़ी ही बारीकी से उसका अध्ययन करने लगे। आखिरकार वे जान

ही गए कि यह रोग नहीं, मौत का परवाना है। फलादेश के आधार पर पत्रे में उन्होंने अपनी कलम से मृत्यु का दिन, तारीख व मृत्यु के पल तथा सेकेंड का विवरण लिख दिया। जो उनके गोलोक गमन के पश्चात् ही परिवार के हाथ लग सका। अपना भविष्य ज्ञात होते ही वे कमला से बोल पड़े, "कमला, लू तो एक बहाना है। सच तो यह है कि मैं अतिशीघ्र इस नश्वर संसार को छोड़ने वाला हूँ। तुम स्वयं को बेसहारा मत समझना। मेरी निशानी श्याम तुम्हारा सहारा बनेगा। इसका खयाल और भी अच्छी तरह से रखना। भाइयों के चूल्हे अलग हैं तो क्या, तुम्हारे पास सोने-चाँदी के पर्याप्त गहनों के साथ ही मेरे द्वारा अर्जित चाँदी के रुपए तो हैं ही।" "ऐसा मत कहिए!" कमला सिसक पड़ी, "आपने जीवन भर साथ निभाने का वादा किया था। फिर किस अपराध की सजा देना चाहते हैं?" "सजा नहीं कमला, मैं तो विधि के लेखे की बात कर रहा हूँ। जो अटल है और स्वयं विधाता भी उसमें दखल नहीं देते।"

आखिर वह दिन आ ही गया, जब पं. वंशीधर को गोलोक प्रयाण करना था। जमीन पर बिस्तर लगवाकर कमला से बोल उठे—जल्दी से मेरे मुँह में तुलसी पत्र व गंगाजल डाल दो। सामने ही श्रीकृष्ण की मोहिनी मूरत व विमान नजर आ रहा है। गंगाजल व तुलसी सेवन करके उन्होंने तीन बार राधाकृष्ण! राधाकृष्ण! राधाकृष्ण का उच्चारण करते हुए प्राण त्याग दिए। किंकर्तव्यविमूढ़ कमला यह आघात सह न सकी और मूर्च्छित होकर पति की निष्प्राण देह पर गिर पड़ी। जब उसे होश आया तो बालक श्याम पल्ला पकड़कर पूछ रहा था, "माँ, सारे लोग पिताजी को लेकर कहाँ गए हैं? वे कब आएँगे?" बुरी तरह टूट चुकी कमला क्या जवाब देती? पर कुछ कहकर उसे शांत तो करना ही था। अत: बोली, बेटा भगवानजी ने उन्हें जरूरी काम से बुलाया है। काम खत्म करके जल्दी ही आ जाएँगे और पूर्व की भाँति तेरे लिए मिठाई भी लाएँगे। बालक खुश होकर माँ से लिपट गया। उसे सीने से लगाकर कमला अपनी पीड़ा को दबाने का प्रयास करने लगी।

पिता की छत्रच्छाया से वंचित श्याम का मन पढ़ाई-लिखाई से अधिक खेलकूद में लगता था। गंगाघाट स्थित पैतृक मकान के नीचे बालू का मैदान मौजूद था। मुहल्ले के बच्चों संग कबड्डी व गुल्ली-डंडा खेलना, गलियों में कंचे खेलना तथा छत पर चढ़कर पतंग उड़ाना तो उसके शौक में शामिल ही था। अपने ताऊजी के पुत्र, जो काशी हिंदू विश्वविद्यालय बी.कॉम. के छात्र और कैरम बोर्ड के चैंपियन भी थे, उनके कमरे में मौजूद कैरम बोर्ड पर मकान के किराएदारों के पुत्र व पुत्रियों के साथ कैरम खेलने का अवसर भी प्राप्त हो गया। बड़े भाई बताया करते थे कि भोजपुरी फिल्म अभिनेता सुजीत कुमार बी.एच.यू. के ग्राउंड पर उनकी कैप्टनशिप में क्रिकेट खेल चुके हैं। पर श्याम के आसपास न तो इस योग्य ग्राउंड था, न ही साथी। अत: वह गुल्ली डंडा को क्रिकेट से बेहतर मानकर संतोष कर लेता। गंगातट वासी तैरने की कला न सीखें, ऐसा कम ही होता है। अत: श्याम ने भी तैराकी का प्रशिक्षण प्राप्त करके मुहल्ले के बच्चों संग घंटों नदी में तैराकी एवं स्नान का शौक पाल लिया। नदी के दूसरे किनारे को छूकर कौन पहले लौटता है, इसकी भी शर्त लगने लगी। गंगा के बीच में बड़े-बड़े बाँसों में रस्सी की मदद से बड़े व भारी पत्थर बाँधकर तलहटी तक लटकाए हुए थे, ताकि उन पर बैठकर पंछीगण अपनी प्यास बुझा सकें। साथीगण यह देखने से भी न चूकते थे कि कहीं उसके सहारे कोई विश्राम तो नहीं कर रहा है। क्योंकि शर्त यह होती थी कि गंगा पार के किनारे को छूकर तुरंत लौटना है। आने व जाने के दौरान विश्राम की मनाही थी। आखिर तैराकी के साथ-साथ स्टेमिना की परीक्षा का भी प्रश्न था। बची-खुची कसर कॉमिक्स व कहानियाँ निकाल लेते। हाईस्कूल में दाखिला लेते ही उपन्यासों का चस्का लग गया। संभवत: उपन्यासों ने उसकी हिंदी को और भी सशक्त करने का काम किया, जो पहले से ही काफी अच्छी थी।

गंगातट के मकान से, जो चंद्राकार घाटों के मध्य में था, एक तरफ रामनगर का किला व दूसरी तरफ राजघाट का मालवीय पुल उसकी खिड़की से दिखाई देते थे। साथ ही बीच के घाटों का नजारा भी दिखाई पड़ता था। गंगा पार के खेतों की हरियाली और बारिश के दिनों में मालवीय पुल के पीछे प्रकट होते इंद्रधनुष की छटा उसे सम्मोहित करती रहती थी। वैसे पूर्व दिशा में राजघाट का पुल था। अत: नित्य उगते हुए सूर्य की लाली व पश्चिम में रामनगर की ओर डूबते सूर्य की सिंदूरिया आभा भी उसे बहुत ही प्रिय लगती थी। चाँदनी रात में चंद्र किरणें गंगा में प्रवेश कर जब गंगा की लहरों से अठखेलियाँ करतीं तो उसका भावुक हृदय उसे कविता में ढालने को बेचैन हो जाता। उसकी हिंदी पर पकड़ अच्छी थी ही। अत: उसने छायावादी कविताएँ लिखनी शुरू कर दीं। उस समय वाराणसी के राष्ट्रीय दैनिक 'आज' की संपूर्ण भारत में धाक थी। स्वनामधन्य मोहनलाल गुप्त (भैयाजी बनारसी) उसकी कविताओं से प्रभावित हुए और दैनिक आज के 'बाल संसद्' कॉलम में उसकी कविताएँ छपने लगीं। १९६२ में जब चीन ने भारतवर्ष पर आक्रमण कर दिया तब वह हाईस्कूल का छात्र था। पर भावुक हृदय श्याम के अंदर ऐसे आक्रोश ने जन्म लिया, जो धोखे से किए गए आक्रमण और हिंदी चीनी भाई-भाई का नारा देने वाले चाऊ एन लाई को धिक्कारने वाली कविताओं और भारतीय सैनिकों में जोश भरने वाली कविताओं के रूप में आकार में आया। उसकी जोशीली कविता—

"उठो देश के वीर जवानो! दुश्मन ने ललकारा है।
आज हिमालय के प्रांगण में बरस रहा अंगारा है॥"

वाराणसी के आज दैनिक, सन्मार्ग एवं सांध्य दैनिक गांडीव में प्रमुखता से छपी कविता काफी चर्चित हुई। दैनिक आज ने तो युवा श्याम की फोटो भी कविता के साथ छापी थी, पर श्याम कवि प्रदीप की तरह मुंबई में तो था नहीं, जो उनकी दर्द भरी रचना, 'ऐ मेरे वतन के लोगों जरा आँख में भर लो पानी, जो शहीद हुए हैं उनकी जरा याद करो कुर्बानी' को लता मंगेशकरजी द्वारा गाई जाने पर रातोरात प्रसिद्धि पा गए। समय काल

एक ही था, पर नसीब अलग-अलग। श्याम ने किसी तरह हाईस्कूल पास कर लिया। किंतु तृतीय श्रेणी आने से मन खिन्न हो गया। किसी ने यह तंज कस दिया कि थर्ड-डिवीजन वाला आगे क्या गुल खिलाएगा, कौन जाने? यह तंज श्याम बरदाश्त न कर सका। उसने आजीविका का खयाल करते हुए तकनीकी डिप्लोमा प्राप्त करने का निश्चय कर लिया। पर इसके लिए इंटर पास करना भी जरूरी था। संयोग से काशी हिंदू विश्वविद्यालय के इंजीनियरिंग कॉलेज के अंतर्गत चलने वाले इंडस्ट्रियल ट्रेनिंग सेंटर के विद्युत् ट्रेड में प्रवेश मिल गया। जो डिप्लोमा के समकक्ष तो था ही, संपूर्ण भारतवर्ष में मान्य भी था। रुचि व संकल्प के चलते उसने अच्छे अंकों से परीक्षा पास भी कर ली। फलस्वरूप १९६५ में ही रेनुकूट स्थित हिंडाल्को के अल्युमिना प्लांट में अप्रेंटिशशिप पूर्ण करके वहीं मुख्य विद्युत् तकनीशियन का पद प्राप्त कर लिया। इसे ईश्वर की महती कृपा ही कहेंगे कि उसके व्यवहार और कर्मठता से प्रभावित होकर प्लांट सुपरिंटेंडेंट श्री बी.के.एस. नारायण ने उसे अपने साथ ही परिवार की तरह बँगले में रख लिया। बेटे की नौकरी लगते ही माँ ने सुघड़ व सुसंस्कृत बहू की तलाश शुरू कर दी। प्रकृति-प्रेमी श्याम गरमियों में छुट्टी लेकर पहाड़ों की रानी मसूरी एवं नैनीताल भी घूम आया। पर फैमिली क्वार्टर के अभाव में वह माँ को रेनूकूट नहीं ला सकता था। माँ को अपने दक्षिण भारतीय सुपरिंटेंडेंट के बँगले पर लाना उचित न था। उसे पैतृक मकान के अपने जर्जर भाग की चिंता सताने लगी, जो अकेले ही जिंदगी की गाड़ी खींच रही माँ के ऊपर कभी भी गिर सकता था। फिर माँ के अतिरिक्त दुनिया में उसका कोई भी सगा न था। अत: २ वर्ष बाद ही तनख्वाह से रुपए बचाकर उसने घर के जर्जर भाग को गिराकर नया निर्माण कराना प्रारंभ किया। पर सारे भाग इतने जर्जर हो चुके थे कि एक को गिराओ तो दूसरा अपने आप गिरने लगता था। पैसों की तंगी से दोनों तल्लों का निर्माण असंभव था। लंबाई-चौड़ाई भी ३६ फीट गुणे १२ फीट थी। ऐसे में माँ ने सहेजकर रखे चाँदी के रुपयों को बेचकर भरपूर सहयोग किया तो दोनों तल्लों को मिलाकर चार शानदार व हवादार कमरे तैयार हो गए। तीन तरफ से बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ हल्के रंग के शीशे व जालीदार खिड़कियों से हवा एवं रोशनी भी आने लगी। जबकि प्राचीन बनावट में मात्र एक खिड़की गंगा नदी की तरफ खुलती थी। शेष कमरों में एक या दो जालीदार झरोखे थे, जैसा महलों के निर्माण में होता है। आखिरकार वह करीब दो सौ वर्ष पुराना महल ही तो था। विधवा माँ बेटे की अच्छी नौकरी व कमरों के नवनिर्माण से फूली न समाती। सुदर्शन पुत्र के लिए सुघड़ कन्याएँ भी तलाशीं। पर श्याम की सोच के अनुसार एक भी उसके लायक न थी। ऐसे में उसके कानपुर निवासी मामा ने, जो केसर कस्तूरी के व्यापार के साथ ही गोपी मलहम का भी निर्माण करते थे। उनकी शाही बग्घी व राजसी ठाठ-बाट से कानपुर वाले बड़े प्रभावित थे। कीमती वस्त्र पहन बग्घी में सफेद घोड़े जोतकर वर्दीधारी कोचवान के साथ यदा-कदा गोपी बाबू नगर भ्रमण पर निकलते तो उत्सुकता व चर्चा का विषय बन जाते। उन्होंने श्याम के नाम अजीब-सी चिट्ठी भेजी। न हाल-चाल न आशीर्वाद। सीधी-सपाट भाषा में लिखा था, 'बड़े सौंदर्य प्रेमी बनते हो तो चले आओ कानपुर! जो कन्या तुम्हारे लिए देखी है, उसकी न तो फोटो भेजूँगा न कुंडली। इतना जरूर कहूँगा, किसी कन्या विद्यालय से निकल रही सबसे सुंदर लड़की से उसकी तुलना कर लेना। तुम जैसे नालायक से इससे ज्यादा कहना ठीक नहीं लगता। पत्र की चैलेजिंग भाषा से श्याम तो प्रभावित हुआ ही, उसकी माँ भी भाई की पसंद से वाकिफ थी। अत: अविलंब श्याम को लेकर कानपुर जा पहुँची। लड़की की ननिहाल भी कानपुर में ही थी, जो बिरहाना रोड की कोठी में माँ-बाप एवं चंद परिवारीजनों के साथ आ चुकी थी। श्याम हटिया स्थित अपनी ननिहाल वालों एवं माँ के साथ बिरहाना रोड जा पहुँचा। पूर्वकाल में इंटरव्यू की प्रथा तो थी नहीं। लड़की को ठीक से देख लें, इतना ही पर्याप्त था। काफी प्रतीक्षा के बाद लड़की आई। मगर नाश्ते की प्लेट थमाकर यह गई-वो गई। ठीक से देखने का प्रश्न ही न था। किंतु इस दौरान उसका दूधिया रंग, छरहरा बदन, चेहरे का भोलापन व बड़ी-बड़ी आँखें श्याम को भा गईं। उसने तुरंत ही हाँ कर दी। किंतु कन्या के परिजनों का व्यवहार माँ को पसंद न आया। अत: कुंडली मिलान करने के बाद ही सहमति देंगे, यह कहकर बेटे के साथ वाराणसी आ गईं। कुंडली मिलान की गई तो वर के देवगण और कन्या के राक्षसगण का खुलासा हुआ। गहन विवेचना के बाद ज्योतिषियों ने घोषणा कर दी कि विवाह संपन्न होते ही वर की बरबादी प्रारंभ हो जाएगी। ऐसे में माँ ने किसी भी कीमत पर शादी से इनकार का मन बना लिया। पर श्याम की जिद के आगे उसकी एक न चली। विधि का विधान कैसे टल सकता था? कानपुर के नवाबगंज वाले बँगले में श्याम व रमा ने सात फेरे ले ही लिये। जो रमा के दूसरे नाना का था। पिता के अभाव में श्याम के बड़े भाई ने पट्टे पर बैठकर रस्म निभाई।

सुदर्शन पुत्र के लिए सुघड़ कन्याएँ भी तलाशीं। पर श्याम की सोच के अनुसार एक भी उसके लायक न थी। ऐसे में उसके कानपुर निवासी मामा ने, जो केसर कस्तूरी के व्यापार के साथ ही गोपी मलहम का भी निर्माण करते थे। उनकी शाही बग्घी व राजसी ठाठ-बाट से कानपुर वाले बड़े प्रभावित थे।

भारतीय ज्योतिष बेमिसाल है। बशर्ते ज्योतिषी को उसका सम्यक् ज्ञान हो। फिर बनारस तो इसमें शीर्ष पर है। फलादेश घटित होने लगा। सुहागरात के मधुपर्व पर पलंग पर बैठी रमा ने पति का स्वागत इन शब्दों से किया। ईश्वर ने मुझे कैसे सुनसान व भयानक स्थान पर ला पटका है। मेरा जन्म कलकत्ते के गुलजार इलाके बड़ा बाजार की कोठारी बाड़ी में हुआ है। जहाँ सैकड़ों परिवार रहते हैं। यहाँ मैं कितने दिन जी पाऊँगी? शायद ही किसी पति को कम-से-कम सुहागरात के दिन ऐसी किसी पीड़ादायी स्थिति से गुजरना पड़ा हो। उसने समझाते हुए कहा, तुम्हें कुछ दिनों तक ही यहाँ रहना है। फिर अपने साथ रेनूकूट ले चलूँगा। जहाँ शादी का कार्ड पाते ही मेरे अधिकारियों ने क्वार्टर की व्यवस्था कर दी होगी। पति के प्यार से विश्वास प्रबल हुआ तो स्थिति सामान्य हुई। पर उत्साह

व उमंग पर पानी फिर चुका था। मधुयामिनी फर्ज अदायगी बनकर रह गई। रमा ने सुन रखा था कि उसकी सास सलीका पसंद व कड़े स्वभाव की हैं। उनके साथ कैसे निभाऊँगी, यह सोच भी कायम थी। मन के भाव तिल को भी ताड़ समझने लगते हैं। एक छोटी सी घटना ने इसे सिद्ध भी कर दिया। हुआ यों कि रमा आटा बहुत गीला सानती थी और यदाकदा साड़ी से ही हाथ पोंछ लेती थी। हाथ धोने की जहमत कौन पाले? पर एक दिन सास ने ऐसा करते हुए देख लिया तो बोल उठीं, "बहू, पानी से धोना न था तो पुराने कपड़े से हाथ पोंछ लेतीं। नई साड़ी खराब करना कहाँ की बुद्धिमानी है?" फिर क्या था, दुलारों में पली निरंकुश बहू ने जहर उगल ही दिया, "साड़ी मेरे माँ-बाप की दी हुई है, आपकी नहीं। चिंता न करें, उन्हें भूलकर भी न पहनूँगी।" कमला अवाक् रह गई। ऐसे उत्तर की कोई कल्पना भी कैसे कर सकता है? श्याम को घटना का पता चला तो रमा से गलती के लिए माँ से माफी माँगने को कहा। वह बोल पड़ी—सच्ची बात कड़वी लगती ही है। मैंने कौन सा अपराध किया है, जो माफी माँगूँ? तुम्हारी विधवा माँ को बहू का सुख-चैन कैसे भा सकता है? इससे अधिक सुनने का माद्दा श्याम में न था। उसने जोरदार चाँटा रमा के गाल पर जड़ते हुए कहा, अविलंब माँ से माफी माँगो, वरना ठीक न होगा। वाद-विवाद एवं रोने की आवाज संयोग से श्याम के ताऊ के कानों में पड़ गई। उन्होंने दरवाजा खुलवाया और बहू को रोता देखकर श्याम को डाँट लगाई, "बेवकूफ बहू को मारना किसने सिखाया, कोई बात थी तो प्यार से समझा देते।" फिर रमा से बोले—बेटा! हमारा श्याम दिल का बुरा नहीं है। पर बेचारे में बरदाश्त की क्षमता कम ही है। ऐसा कोई काम न करना, जिससे इसे पीड़ा हो। अगर भूल से भी इसने दुबारा ऐसी हरकत की तो मुझे बताना, इसकी अच्छे से खबर लूँगा। ताऊजी तो चले गए, पर मानिनी को मनाना श्याम के लिए असंभव था। रमा का आक्रोश शांत न हुआ, उसने अपने बड़े भाई मोहन को सारी घटना तोड़-मरोड़ व बढ़ाकर लिख भेजी और अपनी जान पर खतरा बताते हुए शीघ्र-से-शीघ्र आने की गुहार लगा दी। मायके में सबसे दुलारी रमा का पत्र पाते ही कानपुर में कार्यरत मोहन अपने दबंग मामा किशन के साथ बनारस आ पहुँचा। भाई बहन से सिर्फ एक वर्ष बड़ा था और मामा भी हम उम्र ही थे। पिता व ताऊ कलकत्ते में ही थे। ऐसे में युवा मस्तिष्क से गंभीरता की आशा कैसे की जा सकती थी? दोनों ने आते ही तल्ख तेवर दिखाते हुए रमा को अपने साथ ले जाने की घोषणा कर डाली। घर-परिवार से लेकर पड़ोसी तक जुट गए। सभी ने समझाया कि ऐसी बचकाना हरकत न करें। बहू पर कोई अत्याचार नहीं हुआ। नए माहौल में सामंजस्य बिठाने में समय तो लगता ही है। श्याम अकारण क्रोध नहीं कर सकता। झगड़ा तो दूर की बात किसी से बेअदबी भी उसके स्वभाव में नहीं है। बहू का भविष्य खराब हो, ऐसी कोई भी हरकत उचित नहीं है। दोनों ने स्थिति भाँपकर उस समय तो चुप्पी साध ली। पर रात का अँधेरा घिरते ही मंत्रणा करने लगे। आधी रात के बाद चुपके से निकलना ही ठीक है। घर व मुहल्ले के सभी लोग सो रहे होंगे। अत: किसी प्रकार की बाधा का सवाल ही न होगा। यही हुआ भी। मुख्य द्वार का दरवाजा खोलकर ये तीनों चुपचाप निकल गए। प्रात: उठने पर श्याम, उसकी माँ व घर के अन्य सदस्यों को इस नादानी का पता चला तो सभी सन्न रह गए। खानदान की प्रतिष्ठा का सवाल न होता तो तुरंत ही पुलिस काररवाई व बाद में कोर्ट-कचहरी का मार्ग तो खुला ही था। बुद्धिमानी भी इसी में थी कि इस घटना के बाद बहू के माता-पिता की प्रतिक्रिया का इंतजार कर ही लिया जाए। कमला ने बहू के परिजनों की जिस मानिकसता का अंदाज लगाया था, वह सही साबित हुई। उधर से एक भी पत्र नहीं आया। श्याम व उसके परिजनों के पत्र का जवाब देना भी उन्हें मंजूर न था।

यह स्थिति दो वर्ष तक कायम रही तो हिंदू मैरिज एक्ट के तहत तलाक की काररवाई प्रारंभ करने का श्याम ने मन बना लिया। पर पिता तुल्य बड़े भाई ने अपनी प्रतिष्ठा का हवाला देते हुए कहा कि एक बार मुझे बहू के परिजनों से मिल लेने दो। यदि सम्मानजनक हल न निकला तो तुम जो चाहे करना, मैं रोकूँगा नहीं। इनकार का प्रश्न ही न था। श्याम ने कहा—भैया, आप जो ठीक समझें करें। भाई कन्हैयालाल कानपुर जा पहुँचे। पता चला, बहू ने सूरेंद्रनाथ गर्ल्स कॉलेज में रामा शर्मा के नाम से दाखिला ले रखा था। संभवत: उसे रमा मिश्र लिखने से भी चिढ़ थी। ऐसे में श्याम गया होता तो बात बिगड़ सकती थी। पर कन्हैयालाल बुद्धिमान व सुलझे हुए व्यक्ति थे। राजा बलदेवदास बिरला एवं सेठ जुगुल किशोर बिरला ने उन्हें यों ही अपना निजी सचिव नहीं बनाया था। धर्मार्थ का सारा कार्य राजा बलदेव दास की मृत्यु के बाद भी उन्हीं के हाथों में था। जो बलदेव दास के पुत्र जुगुल किशोर बिड़ला ने सँभाल लिया था। श्याम जब इंजीनियरिंग कॉलेज में पढ़ रहा था तो भाई कन्हैयालाल ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के विश्वनाथ मंदिर में सह-प्रबंधक का भार भी सँभाल रखा था। जिसके अधूरे निर्माण को पूर्ण करने का वादा श्री जुगुल किशोरजी बिड़ला ने मदन मोहन मालवीयजी से किया था।

बड़े भाई का प्रयास रंग लाया और रमा घर आ गई। पर सास के प्रति तेवरों में तनिक भी अंतर न आया था। श्याम ने स्थिति को देखते हुए कहा, तुम्हें कौन सा यहाँ रहना है, चलो रेनूकूट चलते हैं। वहाँ मेरी अच्छी खासी नौकरी है। शादी का कार्ड पाते ही मेरे अधिकारियों ने मेरे नाम क्वार्टर भी एलॉट कर दिया होगा। प्रस्ताव रमा को पसंद आया और वह श्याम के साथ रेनूकूट जा पहुँची। फैक्टरी घूमने और कवार्टर देखने के बाद रमा ने पुन: घोषणा कर दी कि मैं यहाँ भी नहीं रह सकती। मेरे साथ रहना है तो तुरंत नौकरी से त्यागपत्र दे दो। श्याम को काटो तो खून नहीं। पर पूरी जिंदगी अकले कैसे कटेगी? कौन जाने समय व काल इसकी मानसिकता को बदलने का सबब बन जाए? श्याम ने तो नौकरी छोड़ दी। पर रमा को न बदलना था न बदली। संभवत: यह सब कुंडली के फलादेश के अनुसार ही हो रहा था। इसमें किसको दोष दें? उसकी समझ से परे था। कालचक्र अभी कौन-कौन से गुल खिलाएगा यह तो भविष्य के गर्भ में है।

के. ४/२१ लालघाट,
बिड़ला संस्कृत कॉलेज के नीचे घाट की सीढ़ियों पर,
सब पोस्टऑफिस-गायघाट,
वाराणसी-२२१००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ८००५१०७२९९

बुंदेलखंड में रामकथा

• विभा नायक

डॉ. फादर कामिल बुल्के ने अपने शोध ग्रंथ 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास' के प्रथम संस्करण की भूमिका में कहा है—भारत तथा निकटवर्ती देशों के साहित्य में रामकथा की अद्वितीय व्यापकता एशिया के सांस्कृतिक इतिहास का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

इस छोटे से उद्धरण से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि रामाख्यान विश्व का कितना बड़ा आख्यान है। डॉ. फादर कामिल बुल्के ने अपने शोध के अंतर्गत ३०० रामकथाओं का उल्लेख किया है। इतना ही नहीं, विश्व की विभिन्न भाषाओं में रामकथा अपने अलग-अलग कलेवर के साथ उपस्थित है। विभिन्न भाषाओं में वाल्मीकि रामायण और तुलसीकृत रामचरितमानस के अनुवाद हुए हैं, शोध हुए हैं। अनुवाद और शोध करते हुए विभिन्न विद्वानों ने रामकथा विषयक इन ग्रंथों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। फिर चाहे वे जॉर्ज ग्रियर्सन हों, गारसां द तासी हों, एटकिंस हों या रामचरितमानस के रूसी अनुवादक वरान्नीकोव हों। फिर रामकथा तो भारतीय संस्कृति का प्राणतत्त्व है। भारतीय जनमानस के लिए उसका क्या महत्त्व होगा, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

भारत के कण-कण में राम और उनकी कथाएँ बसी हुई हैं। ऐसा इसलिए, क्योंकि रामकथा लोक से जुड़ा हुआ आख्यान है। इसमें जिस सौंदर्य के साथ लोकजीवन, ज्ञान, भक्ति और आदर्श का निदर्शन है, वह ऐसे ही गांभीर्य और औदात्य के साथ अन्यत्र दुर्लभ है। ऐसा इसलिए, क्योंकि भारतीय जनमानस के संस्कार राम से जुड़े हुए हैं। राम साधारण नहीं, बल्कि लोक के हृदय में रमे हुए राजा राम हैं। यही कारण है कि राम लोक की भाषा में हैं। लोक के मुहावरे में हैं, जनजीवन, जगत् में राम हैं। भारत के प्रत्येक अंचल में राम हैं। जब हर स्थान राममय तो पुण्य भारत की वह पुण्य भूमि, जहाँ आदिकवि वाल्मीकि ने विश्व के प्रथम महाकाव्य में लोक के राम की कथा को लोक के समक्ष प्रस्तुत किया था, वह अंचल विशेष भला राममय कैसे न होगा!

चित्रकूट गिरि यहाँ, जहाँ प्रकृति प्रभुताद्भुत
वनवासी श्रीराम रहे सीता लक्ष्मण युत
हुआ जनकजा स्नान तीर से जो अति पावन
जिसे लक्ष्य कर रचा गया धाराधर धावन
यह प्रभु पद रजमयी पुनीत प्रणम्य भूमि है,
रमें राम बुंदेलखंड वह रम्य भूमि है।
(पृष्ठ संख्या-३८, भारतीय भाषाओं में रामकथा : बुंदेली साक्षी)

ओरछा के अंतिम राजकवि स्व. मुंशी अजमेरी, जिनका वास्तविक नाम श्री प्रेम बिहारी था, की उपर्युक्त पंक्तियाँ यह सिद्ध करती हैं कि बुंदेलखंड के कण-कण में राम बसते हैं।

विगत १३ वर्षों से अध्यापन। 'कैद आवाजें', 'मीडिया विविध प्रसंग' (संपादित पुस्तक), 'कुछ नहीं है' (कहानी-संग्रह), ऑल इंडिया रेडियो आकाशवाणी से विविध साहित्यिक-सामाजिक विषयों पर वार्त्ता-प्रस्तुति एवं कविता-पाठ। वर्ष २०१३ में उदंत मार्तंड सम्मान।

सप्तकुल पर्वतों में ज्येष्ठ विंध्याचल, जिसकी महिमा का वर्णन महाभारत के भीष्म पर्व में भी है, से आच्छादित भारत का हृदयस्थल, जिसके उत्तर में यमुना, दक्षिण में नर्मदा, पश्चिम में काली सिंध, चंबल और बेतवा नदी के साथ, पूर्व में टोंस और सोन नदी प्रवाहित हैं, बुंदेलखंड है। चंदेल और फिर बुंदेल राजाओं की शासनस्थली होने के कारण इस क्षेत्र का नाम बुंदेलखंड पड़ गया और यहाँ बोली जाने वाली बोली बुंदेलखंडी कही जाने लगी।

बुंदेलखंड तपस्वियों की धरती है। यही कारण है कि इस भूमि का रामकथा से भी गहरा नाता है। कहते हैं कि यदि श्रीराम की जन्मस्थली अयोध्या नगरी है तो बुंदेलखंड ही वह प्रदेश है, जहाँ श्रीराम ने पत्नी सीता और अनुज लक्ष्मण के साथ अपने वनवास का समय बिताया। अयोध्याकांड का वह प्रसंग जब वनवास के समय श्रीराम जानकी, अनुज लक्ष्मण और गुह के साथ ऋषि भरद्वाजजी के आश्रम में पधारते हैं और उनसे वन के मार्ग के विषय में पूछते हैं—

राम सप्रेम कहे मुनि पाहीं। नाथ कहि हम केहि मग जाहीं॥
(दोहा १०८, चौपाई १, अयोध्याकांड, रामचरितमानस)

तब भरद्वाजजी मन-ही-मन श्रीरामजी से कहते हैं कि आपके लिए तो सभी मार्ग सुगम हैं और अपने चार ब्रह्मचारियों को उन्हें मार्ग बताने के लिए साथ भेजते हैं। जहाँ गाँव जंगल होते हुए, गाँव के लोगों से बोलते-बतियाते राम वाल्मीकि आश्रम पहुँचते हैं। वहाँ जाकर वे वाल्मीकिजी से कहते हैं कि मुझे कोई ऐसा स्थान बताएँ, जहाँ मैं सीता और लक्ष्मण के साथ अपनी पर्ण कुटी बनाकर निवास करूँ—

अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ।
सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला।
बासु करौं कछु काल कृपाला॥
(दोहा १२५, चौपाई ३, अयोध्याकांड, रामचरितमानस)

और वाल्मीकिजी भी राम की महिमा जानते हैं, उनके लीला रूप से भी वे परिचित हैं, अत: वे भी कहते हैं—

पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ ।
जहँ न होहु तहँ हु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ॥

(दोहा १२७, अयोध्याकांड, रामचरितमानस)

और फिर वे चित्रकूट, जहाँ अत्रि आदि मुनियों का निवास है, पवित्र मंदाकिनी नदी जहाँ प्रवाहित है, का माहात्म्य बताते हैं और वहीं निवास करने के लिए राम को कहते हैं—

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥

(दोहा १३१, चौपाई २, अयोध्याकांड, रामचरितमानस)

और फिर राम पधारते हैं इस विंध्याचल की भूमि पर। बुंदेलखंड की भूमि पर। विंध्याचल पर्वत-श्रृंखला से घिरी यह बुंदेलखंड की भूमि जितनी वन-संपदा से आच्छादित है, उतनी ही ऊबड़-खाबड़ और पथरीली भी है। इन घने जंगलों और पर्वतों की गहन दुर्गम कंदराओं में न जाने कितने योगी, यति, तपस्वी साधनारत रहते हैं। जो श्रीराम के आगमन से स्वयं को बड़ा ही पुण्यभागी मानते हैं। कवितावली के अयोध्याकांड में तुलसीदासजी बड़े ही रोचक ढंग से, रस लेकर यह वर्णन करते हैं कि किस प्रकार राम के आने से सब तपस्वी प्रसन्न हो गए हैं—

बिंध्य के बासी उदासी तपोब्रतधारी महा बिनु नारी दुखारे ।
गौतमतीय तरी तुलसी, सो कथा सुनिभे मुनिबृंद सुखारे ॥
ह्वै हैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू करुना करि कानन को पगु धारे॥

(कवित्त २८, अयोध्याकांड, कवितावली)

तो कहने का तात्पर्य, राम और रामकथा से बुंदेलखंड का गहरा संबंध है। बल्कि यदि यह कहा जाए कि बुंदेलखंड ही रामकथा की उत्पत्ति का केंद्र है तो अन्यथा न होगा।

इस भूमि की विशेषताएँ तो बहुत हैं, जिनमें से एक यह कि ऐसा कहा जाता है कि जिस पर विपत्ति पड़ती है, वह इस भूमि पर जरूर आता है। राम के इस भूमि पर पधारने के साथ ही यह मुहावरा बना होगा, जिसे अपने दोहे के रूप में शब्दबद्ध करते हुए रहीम कहते हैं—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जा पर बिपदा परत है, सो आवत यह देस॥

सीधा सा अर्थ है कि यह भूमि राम की भूमि है और राम के साथ ही रामभक्तों, रामकथा लेखकों और रामकथा प्रेमियों की भी भूमि है। वाल्मीकि और तुलसीदास दोनों का ही इसी भूमि से संबंध रहा। आदिकवि वाल्मीकि का आश्रम लालापुर गाँव में चित्रकूट से कुछ पहले ही स्थित है और तुलसीदास भी चित्रकूट में राजापुर के निवासी थे।

इन्हीं की परंपरा में ग्वालियर निवासी विष्णुदास का भी नाम आता है। विष्णुदास ने तुलसीदास से लगभग १०० वर्ष पूर्व बुंदेली मिश्रित ब्रज भाषा में 'रामायण कथा' लिखी। 'रामायण कथा' में तीन कांड (बालकांड, सुंदरकांड व उत्तरकांड) और ५१ सर्ग हैं। 'रामायण कथा' के प्रथम कांड में रामजन्म से किष्किंधा कांड तक की कथा है। सुंदरकांड में राज्याभिषेक तक की कथा है और उत्तरकांड में राम के स्वर्गारोहण तक की कथा का वर्णन है। कह सकते हैं कि 'रामायण कथा बुंदेलखंड का पहला महाकाव्य है।' रामायण कथा से एक उदाहरण दृष्टव्य है, जिसमें कवि विष्णुदास ने रामराज्य का वर्णन किया है—

रोग शोक आपदा न होई। विधवा नारि न दीखत कोई॥
परजा चरन सकल विधि धेरै। परधन लोभ न कोउ करै॥
मीत्रु अराज होइ नहिं काल। नित माँगे धन बरसै धन माल॥
कछू अनीति न होइ अकाज। सात दीप मँह पाजत राज॥

(पृष्ठ २०४/१७८-१८०, विष्णुदास कृत रामायन कथा)

१५वीं शताब्दी में ही ग्वालियर के जैन कवि रईधू ने सोनगिरि में रहकर 'पद्मपुराण' नाम से अपभ्रंश में रामकथा की रचना की। कविवर कन्हरदास, जिनका समय १५८० माना जाता है, की फुटकर रचनाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। इनके बाद गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस के विषय में तो कहा ही क्या जाए, वह तो बुंदेलखंड ही नहीं, पूरे भारत का कंठहार है। इसके पश्चात् संवत् १६५८ में ओरछा के राजकवि केशवदास ने 'राम चंद्रिका' नामक प्रबंध काव्य का सृजन किया, जिसमें एकदम अलग ढंग से उन्होंने रामकथा का प्रणयन किया है। इस संबंध में उनकी पुस्तक 'रसिक प्रिया' भी महत्त्वपूर्ण है, जिसमें वे राजा राम की नगरी ओरछा का महत्त्व बताते हुए कहते हैं—

नदी बेतवै तीर जहँ तीरथ तुंगारन्य
नगर ओढछों बहुबसै धरनीतल मैं धन्य

(पृष्ठ २३, भारतीय भाषाओं में रामकथा : बुंदेली साक्षी)

इसी प्रकार कवि मोहनदास मिश्र कृत 'रामअश्वमेध', मुंशी अजमेरी कृत 'श्रीरामचरित नाटक' भी बुंदेलखंड की भूमि पर लिखे गए उल्लेखनीय ग्रंथ हैं। जानकी प्रसाद रसिक बिहारी का 'राम रसायन ग्रंथ' भी महत्त्वपूर्ण है। गोप कवि कृत 'रामचंद्राभरण' जैसा ग्रंथ भी महत्त्वपूर्ण रचना है, जिसमें राम के ऐश्वर्य का चित्रण है। पद्माकर भट्ट कृत 'रामभक्ति प्रबोध पचासा', नवल सिंह प्रधान कृत 'अद्भुत रामायण', 'अध्यात्म रामायण', 'आल्हा रामायण', 'रामचंद्र विलास' आदि भी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। नवल सिंह प्रधान ने 'अयोध्या रामायण' और 'उर्दू रामायण' की भी रचना की। वृंदावन दास ने तुलसीकृत रामचरितमानस के आधार पर 'रामचरितावली' की भी रचना की। इसके अतिरिक्त और भी कई ग्रंथ रामकथा को आधार बनाकर लिखे गए। ओरछा की रानी वृषभानु कुँअरि कृत रामभक्तिपरक पद भी बुंदेलखंड में बहुत उत्साह से गाए जाते हैं।

बुंदेली लोककवि ईसुरी ने भी रामभक्तिपरक चौकड़ियाँ लिखी हैं—

जीके राम चंद्र रखवारे को कर सकत तगारे
बड़े भए प्रह्लाद बचाये हिरनाकुस खों मारे
राना जहर दओ मीरा खों प्रीतम मान समारे
मसकी जाय ग्राह की गर्दन गह गजराज निकारे
ईसुर प्रभु ने गाज बचायी सिर पै गिरत हमारे

(पृष्ठ ४२१, महक बुंदेली माटी की, गोइल गौरव ग्रंथ)

ऐसा माना जाता है कि रामनाम अद्भुत मंत्र है। यही कारण है कि रामकथा, विशेषकर रामचरितमानस की एक-एक चौपाई में भी मंत्रों के समान शक्ति है। रामचरितमानस के बालकांड में रामनाम का माहात्म्य

बताते हुए गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं—

मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥

इसीलिए कहा जाता है कि रामकथा का पाठ दु:ख, दैत्य को दूर करने के लिए प्रभावी है। रामकथा के प्रेमी, विशेषकर उत्तर भारत के लोग इसी कारण अपनी प्रत्येक समस्या का समाधान रामकथा में पाते हैं। रामचरितमानस में अंकित 'रामशलाका' उनकी हर शंका का समाधान करने के लिए काफी है। बुंदेलखंडी कवि ईसुरी भी कहते हैं कि रामकथा व्यथा हरती है, बेड़ा पार करती है। अत: रामकथा का श्रवण, मनन और गायन करना चाहिए—

रामकथा हरती बिथा, करती बेड़ा पार,
सुनियो, गुनियो, गाइयो रामकथा सुख सार।

(पृष्ठ ६७, भारतीय भाषाओं में रामकथा : बुंदेली साक्षी)

इसी प्रकार पन्ना दरबार के राजकवि पंडित कृष्णदास ने जिस प्रकार का काव्य रचा, उसका विषय या तो श्रीराम रहे या रामभक्त हनुमानजी। इनकी रचनाएँ भी लोक में अत्यंत प्रसिद्ध हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है—

राजन के राजा महराजन के महाराज,
साहन के शाह बात ऐन के लखैया हौ।
देवन के देव सर्व सेवन के महासेव,
धर्मिन के धर्म कर्म-कर्म के रखैया हौ॥
कृष्ण कवि वीरन के वीर, धीर धीरन के,
परम कृपालु दीन दास के सहैया हो।
भानुकुल तिलक सुजान वरदायक हो,
भानुकुल तिलक भानु सो हमारे रघुरैया हो॥

(पृष्ठ २३५-२३६, बुंदेलखंड की छंदबद्ध काव्य परंपरा, लेखक—डॉ. बहादुर सिंह परमार)

बुंदेली लोक मानस की वाणी में रामकथा जीवन का मुहावरा बन चुकी है—

एक राम एक रावन्ना
वे छत्री वे बाभन्ना
उन्ने उनकी नार हरी
उन्ने उनकी कुगत करी
बात बड़ गयो बातन्ना
तुलसी रच दओ पोथन्ना

(पृष्ठ १९, भारतीय भाषाओं में रामकथा : बुंदेली साक्षी)

असल में तुलसीकृत रामचरितमानस और ओरछा में राम राजा की प्रतिष्ठा, ये दो ऐसी घटनाएँ थीं, जिन्होंने बुंदेलखंड को रामकथा का क्षेत्र ही घोषित कर दिया। यह एक विशेष संयोग है कि ४ अप्रैल, १५७४ के दिन ही, जबकि रामभक्त तुलसीदासजी ने रामचरितमानस का प्रणयन आरंभ किया था, उसी दिन ओरछा की महारानी गणेश कुँअरि ने अयोध्या से लाई गई रामलला की प्रतिमा की अपने महल में प्रतिष्ठा कराई थी। तभी से रामलला ओरछा के राम राजा सरकार बने। यही कारण है कि राजा राम सरकार की आरती में आज भी रानी कुँअर गणेश को याद करके गाया जाता है—

मधुकर शाह महाराज की रानी कुँअर गणेश
अवध पुरी से ओरछा लायीं अवध नरेश,
सप्त धार सरयू बहे, नगर ओड़छा धाम
फूल बाग नौ चौक में बिराजे राजा राम।

(पृष्ठ १२३, भारतीय भाषाओं में रामकथा : बुंदेली साक्षी)

किंवदंती है कि ओरछा के महाराज मधुकर शाह ने अपनी रानी कुँअर गणेश को व्यंग्य में कहा था कि अबकी बार भगवान् राम को अपने साथ ही लेती आओगी, जिसे महारानी कुँअर गणेश ने पूरा कर दिखाया।

ऐसी भी मान्यता है कि भगवान् श्रीराम प्रात: से संध्याकाल तक ओरछा में रहते हैं और रात्रि समय अयोध्या में विश्राम करते हैं। कहा जाता है कि जब सरयू में रानीजी को श्रीराम का विग्रह प्राप्त हुआ तो ओरछा चलने हेतु उन्होंने तीन शर्तें रखी थीं—एक तो अयोध्या से ओरछा तक की यात्रा पुष्य नक्षत्र में ही होगी, रामजी एक बार जिस स्थान पर स्थापित हो जाएँगे, वहाँ से फिर कहीं नहीं जाएँगे और तीसरी शर्त यह थी कि जहाँ वे रहेंगे, वह स्थान उजाड़ हो जाएगा। ऐसी स्थिति में गोस्वामी तुलसीदासजी के साथ पंचायत हुई। इस पंचायत में यह निर्णय लिया गया कि राम अकेले ही ओरछा पधारें। माता सीता अयोध्या में ही विराजेंगी अत: प्रभु श्रीराम को वापस अयोध्या पधारना ही होगा। तभी से यह कहा जाता है—

राम राजा सरकार के दो निवास हैं खास,
दिवस ओरछा में रहत रैन अयोध्या वास।

(पृष्ठ ५८, ओरछा का इतिहास, ले. ठा. लछमन सिंह)

कहते हैं कि ओरछा में राजा राम के आगमन पर ओरछा के राजा श्री मधुकर शाह जू देव ने अपना राज्य श्रीराम राजा के चरणों में समर्पित कर दिया था। कारण कि एक राज्य के दो अधिपति होना असंभव है। अत: भगवान् श्रीराम ओरछा के राम राजा सरकार हो गए और ओरछा के राजा मधुकर शाह जू देव ओरछा के कार्यवाहक नरेश। यही कारण है कि आज भी राम राजा की आरती के समय पुलिस गार्ड द्वारा विधिवत् सलामी दी जाती है।

बुंदेलखंड के जन-जीवन में राम बसे हैं। लोक-काव्य और लोकगीतों में भी रामकथा विषयक प्रसंगों को आधार बनाकर जीवन की व्याख्या की गई है। बुंदेलखंड के भित्ति चित्रों, 'लोककथाओं', यहाँ तक कि स्थापत्य में भी रामकथा से संबंधित वृत्तांत मिलते हैं। पूरा बुंदेलखंड ही असल में राममय है। राम और उनकी कथाएँ बुंदेलखंड में किस प्रकार रमी हुई हैं, इसे राम चरणामृतम् में वर्णित इस श्लोक से भलीभाँति समझा जा सकता है—

मार्गे मार्गे शाखिनां रसवेदी वेद्यां किन्नरी वृन्द गीतम्
गीते गीते मञ्जुलालाप गोष्ठी, गोष्ठयां त त्कथा रामचन्द्र
वृक्षे वृक्षे वीक्षिता: पक्षिसङ्घा: सङ्घे सङ्घे मञ्जुलामोद वाक्यम्
वाक्ये वाक्ये मञ्जुलालाप गोष्ठी गोष्ठयां गोष्ठयां तत्कथा रामचन्द्र:।

(राम चरणामृतम्, प्रथम प्रकरण, श्लोक-६४-६५)

साअ

एच.एन.ओ.-१४९, स्ट्रीट नंबर-४,
उत्तरांचल एन्क्लेव, बुराड़ी स्कूल के पीछे,
बुराड़ी, दिल्ली-११००८४
दूरभाष : ७६८३०२६९२८

लोहे-पत्थर की बस्ती में काँच के घर

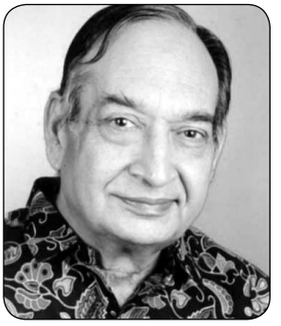

● गोपाल चतुर्वेदी

अपना बचपन देवास नाम के एक छोटे शहर में बीता है। उसकी विशेषता है। बमुश्किल, तब के चालीस-पचास हजार आबादी के इस छोटे से नगर में एक नहीं, दो-दो राजा थे—एक सीनियर, एक जूनियर। वहाँ से बीस-बाईस किलोमीटर दूर इंदौर था, जहाँ मेरे मामा का निवास मल्हारगंज नामक मोहल्ले में था। उनके पुत्र और मेरे भाई सूरज तब किसी शीशमहल का जिक्र करते थे, जो इंदौर के किसी सेठ ने बनवाया था। रोचक तथ्य यह है कि न उन्होंने उसे स्वयं देखा था, जाहिर है कि हम कैसे देखते? जब भी हम मिलते, इस काल्पनिक शीशमहल की बात जरूर होती। उसे देखने का कार्यक्रम भी बनता, पर यह अनूठा अवसर आ ही नहीं पाया। बड़े होने पर भी कई बार इंदौर आना-जाना हुआ, सूरज के साथ शीशमहल के दर्शन की ललक जारी रही। आज तो खैर, न सूरज है, न इंदौर जाने की इच्छा, न शीशमहल की चर्चा। बहरहाल, यह ऐसा शीशमहल है, जो मन में बसा है। कौन जाने है भी कि नहीं?

ऐसे एक निजी कंपनी के अध्यक्ष के नाते हमें, यानी हम और हमारी पत्नी को गोआ जाने का अवसर कई बार मिला है। गोआ ऐसी-वैसी जगह नहीं है, बल्कि अंतरराष्ट्रीय पर्यटन का आकर्षण है। वहाँ हर प्रकार के पाँच सितारा होटल हैं। उनकी अपनी शराब 'फैनी' है। देशी-विदेशी भोजन है। समुंदर की कई सुंदर 'बीच' हैं। बीच पर न्यूनतम वस्त्रधारी सुंदरियाँ हैं। मानव को आसमान की सैर कराते उड़ते गुब्बारे हैं। समुंदर के लोकप्रिय खेल भी हैं। सामान्यत: टैक्सी तो है ही, अनूठी मोटरसाइकिल टैक्सी भी है, जिस पर बैठी एक सवारी कहीं आने-जाने का सुख भोग सकती है। गोआ के पास ही मंगेश मंदिर भी है। मंगेश देवी की भक्ति के आधार पर अमर गायिका लताजी का 'मंगेशकर' जुड़ा हुआ उपनाम है। बहरहाल, गोआ का वर्णन शायद हम कभी न करते, यदि वह हमारे बचपन के शीशमहल से न जुड़ा होता।

हुआ यों कि एक बार हमें एक ऐसे होटल में ठहराया गया, जहाँ के कमरे शीशे के थे, दीवालें भी। लगता कि आप काँच के कमरे में बैठे हैं। निजता के नाम पर दीवाल नहीं, बस चारों ओर काँच है। गनीमत थी कि बाहरी दीवाल का काँच पारदर्शी न होकर 'ओपेक' था, जिससे भीतर का कुछ न दिखे। हमें उन नव-विवाहितों का खयाल आया, जो हनीमून के लिए इस होटल में ठहरते होंगे। जब अंदर से बाहर का हर दृश्य नजर आता हो तो किसी भी अंदर वाले को भ्रम हो कि बाहर से भी सब दिख रहा है। नव-विवाहित जोड़ों की मानसिकता का अनुमान लगाना अपने वश में नहीं है। पिछले दशकों में फैशन से लेकर, रहन-सहन और विचार-चिंतन में भी बड़ा बदलाव आया है।

हमें तो कभी-कभी शक होता है कि इधर फैशन ही क्यों, जीवन के मानक भी बदले हैं। अब खिड़की-दरवाजों का महत्त्व ही कहाँ है? सरकार के पास ऐसी पैनी और सर्वव्यापी दृष्टि है कि जब वह चाहे तो नागरिक का कच्चा चिट्ठा देखने में समर्थ है। किसी के फोन के माध्यम से उसके सारे संपर्क, बातचीत, दोस्त, दिनचर्या क्या-क्या उपलब्ध नहीं है? हम तो अभी इसी तथ्य के आभारी हैं कि अपनी सामान्य सी जिंदगी में ऐसा क्या है, जिसमें किसी को कुछ भी जानने की रुचि हो? ऐसी सब चिंताएँ पूँजीपतियों और नेताओं के लिए हैं, जिनकी कथनी कुछ है, करनी कुछ और। हमारे एक मित्र का तो कथन है कि समाज में नंगेपन की प्रवृत्ति कुछ ऐसी बढ़ी है कि फैशन ही क्यों, जीवन ही उसका पर्याय हो चुका है। आज के जमाने में सब बिकाऊ है, स्त्री-पुरुष से लेकर उनकी इज्जत तक। जो जितने नैतिक जीवन-मूल्यों की बात करता है, वह आचरण और व्यवहार में उनकी उतनी ही खिल्ली उड़ाता है। ऐसे हुनरमंद इक्कीसवीं सदी की शोभा, आभूषण, शृंगार व प्रतिनिधि हैं। यही सफलता और प्रसिद्धि के हकदार हैं। लोग इन्हें आदर्श मानकर इनका अनुकरण करते हैं। यही समाज की प्रतिष्ठा व शान हैं।

गोआ के इस होटल में रहकर हमने बचपन के शीशमहल की कल्पना तो जी ली, पर जाने क्यों हमें यह भी संदेह हुआ कि कहीं आज की लोहे-सीमेंट की बस्ती में सबके घर तो काँच के नहीं हैं? या शीर्ष के लोग अपवाद हैं। हमारे मोहल्ले में ताक-झाँक की प्रवृत्ति ऐसी प्रबल है कि किसी के घर में क्या पकता है, यह एक सार्वजनिक सूचना है। सास, बहू, ससुर और बच्चे कितने हैं, सब जानते हैं। किसकी लड़की घर से तड़ी हो ली है, यह भी। स्कूटर दहेज का है या निजी खरीद का, सबको पता है। महँगाई ने सब्जी की खरीद पर कितना नियंत्रण लगा दिया है, यह सूचना सर्वसुलभ है। घर में थोक बाजार से आलू और प्याज एक मुश्त आ गए हैं। तब से आलम यह है कि वही पकाने के प्रयोग में आते हैं। अभी हमारे पुत्र पप्पू की वर्षगाँठ के उत्सव में दो तरह के पकौड़े बने, यानी आलू और प्याज के। फिंगर चिप्स भी आलू की थी। पत्नी को एक

ही शिकायत थी कि तेल फालतू जल गया। वैसे वह भी सहमत है कि आलू सब्जियों का सर्वाधिक उपयोगी ऑल राउंडर है। तेल बचाने के चक्कर में हमने कई दिन उबले आलू का सेवन किया है। वह भी स्वादिष्ट है। हमें शक है कि हमारे घर की ऐसी निजी और गोपनीय जानकारी से भी सब परिचित हैं। गनीमत यही है कि अभी कोई यह नहीं पूछता है कि नकदी होने पर ज्यादा मत इतराओ, हमें सब खबर है। इधर उबले आलू पर गुजारा हो रहा है। हमारी जिंदगी भी जैसे सीक्रेट सरकारी फाइल हो गई है। हर बाबू जानता है कि उसमें क्या जानकारी है?

इधर भ्रष्टाचार की रेट भी मुद्रा-स्फीति के अनुरूप बढ़ गई है। हमारे दफ्तर में कुछ प्रयोगधर्मी भ्रष्टाचारी हैं। वे सबको बताते हैं कि नगदी लेना करप्शन है। वह इससे पूरी तरह मुक्त हैं, जैसे सरकार कार्यकुशलता से। उन्होंने नकदी के स्थान पर नया, अभिनव और अनोखा तरीका सोचा है। जो घर का राशन-रसद सप्लाई कर दे, उसका काम तत्काल और प्राथमिकता से होता है। इसमें गाहे-बगाहे मौसम की हरी सब्जी और फल की आपूर्ति भी शामिल है। संपर्क में रहने वाले पैसे वालों को भी इस खोज की खबर है। सुपात्र और योग्य कर्मचारी, अफसरों को भी घर आई आपूर्ति की कुछ 'जूठन' भेंट कर शांत और प्रसन्न रखते हैं। नतीजतन, वह ईमानदार-के-ईमानदार ही नहीं उल्टे ईमानदारों के ठेकेदार भी बने रहते हैं। वही सुझाते हैं कि कौन बेईमान है? कौन विजीलैंस की आँखों में धूल झोंककर वसूली में पूरे ध्यान और प्रयास से व्यस्त है? इनमें से कुछ कर्मचारी सामान्य से कहीं अधिक कुशल-चालाक हैं। उनका संपर्क सी.बी.आई. से है। वह सिर्फ निगरानी विभाग की ही नहीं, अपने अफसरों की भी पोल खोलने में माहिर हैं। जिस किसी अफसर ने ऐसे घातक बाबुओं से काम की अपेक्षा की, कर्तव्य-पूर्ति में कड़ाई दिखाई, उसकी शामत आनी-ही-आनी है। कब ऐसे के घर भ्रष्टाचार के विरुद्ध 'रेड' पड़ जाए, कहना कठिन है? जानकारों का आकलन है कि अधिकतर भ्रष्ट और करप्ट अफसर स्थानीय सी.बी.आई. से साँठ-गाँठ बना कर रखते हैं। कभी निरीक्षक के घर कुछ भेंट-गिफ्ट भेज दी, कभी अफसर-अधिकारी को फॉर्म हाउस की पार्टी में बुला लिया वरना फाइव स्टार में। ऐसे सर्वसंपन्न अधिकारियों की वेतन से अलग कमाई का कोई अंत नहीं है। यह सरकारी सेवा में सठिया कर भी घर नहीं बैठते। उनकी सेवा इतनी खास है कि उसका विस्तार होता रहता है। कहीं किसी कमेटी की शोभा बढ़ाते हैं, कभी किसी कमीशन की। कभी-कभार तो उनका सियासी प्रभाव ऐसा असर डालता है कि वह किसी राज्य के राज्यपाल तक बन बैठते हैं।

ऐसे महानुभाव अफसर अपवाद हैं। ये काँच के घरों में नहीं रहते है। उल्टे उनके आवासीय दरवाजे-खिड़कियाँ ऐसी पुख्ता हैं कि न बाहर का शोर अंदर पहुँच पाता है, न अंदर की आवाज बाहर आ पाती है। लोगों को इनके खान-पान का भी ज्ञान नहीं है। इनकी ऊपरवाले में आस्था है कि नहीं, यह भी कोई नहीं कह सकता है। हाँ, इतना अवश्य है कि जहाँ इनका आका जाता है, ये वहाँ सिधारते हैं। वह चाहे मसजिद, मंदिर या गुरुद्वारा हो। ऐसा बहुधा चुनाव के मौसम में होता है। उनके सियासी आका घूमने-फिरने के शौकीन हैं। पहले वह उनके साथ जाते थे, पर इधर सैर-सपाटा नए कार्यभार से स्थगित है। फिर भी दुनिया के चक्कर के बाद बचा ही क्या है?

ऐसे महानुभाव अफसर अपवाद हैं। ये काँच के घरों में नहीं रहते है। उल्टे उनके आवासीय दरवाजे-खिड़कियाँ ऐसी पुख्ता हैं कि न बाहर का शोर अंदर पहुँच पाता है, न अंदर की आवाज बाहर आ पाती है। लोगों को इनके खान-पान का भी ज्ञान नहीं है। इनकी ऊपरवाले में आस्था है कि नहीं, यह भी कोई नहीं कह सकता है। हाँ, इतना अवश्य है कि जहाँ इनका आका जाता है, ये वहाँ सिधारते हैं। वह चाहे मसजिद, मंदिर या गुरुद्वारा हो। ऐसा बहुधा चुनाव के मौसम में होता है। उनके सियासी आका घूमने-फिरने के शौकीन हैं।

ऐसे आदर्श पुरुष न केवल सरकारी कर्मचारियों के बल्कि हर क्षेत्र के कर्मियों के अनुकरणीय पात्र हैं। हर नश्वर इनसान की महत्त्वाकांक्षा है कि वह रहे-न-रहे, उसका नाम तो रहे। पहले राजपरिवार थे तो राजा को विश्वास था कि उसका नाम और परिवार चलता रहेगा। तब भी कभी-कभी विद्रोह हो जाता और यह स्वप्न सच न होता। पर यह नाम की अमरता का हर प्रयास व्यवस्था का अनिवार्य अंग है। भारत दशकों से प्रजातंत्र है। पर हमारे जन-मानस की मानसिकता ऐसी है कि वह प्रजातांत्रिक परिवारों का भी वैसा ही सम्मान देती है, जैसे पहले के राजघरानों को। वर्तमान में उद्योगपतियों, दुकानदारों और सट्टेबाजारियों की सफलता के बावजूद कामयाब नेतागीरी सर्वाधिक कमाऊ पेशा है। इसमें न बाजार की प्रतियोगिता है न माल की गुणवत्ता की ख्याति, बस खानदान का नाम है। जब कोई जनसेवक परिवार में जन्म की दुर्घटना का शिकार हो तो उसका नेता का धंधा तै है। पढ़ाई-लिखाई तो विवशता है, करनी ही पड़ती है। इसी सिलसिले में वह विदेशों के सैर-सपाटे भी कर आता है, कभी डिग्री लेकर, कभी यों ही। उसके खानदानी चमचे हैं। यह भी भारतीय प्रजातांत्रिक व्यवस्था की खासियत है। उसके डिग्री न लाने पर वह अफवाह फैलाते हैं कि 'भैया वहाँ भी पिछड़ों की सेवा में ऐसे लगे थे कि उन्हें परीक्षा 'मिस' करनी पड़ी। उस समय वह एक दुर्घटना-ग्रस्त को अपनी गाड़ी से अस्पताल में भरती करवा रहे थे, जब कि इम्तहान होना था। उन्होंने जन-सेवा को परीक्षा से प्रमुख माना। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात,' वह विदेश से ही जनसेवा की डिग्री लेकर लौटे हैं। देश को ऐसा नेता कहाँ मिलेगा? कौन जाने यह सच है कि प्रचार का झूठ?

सच भी है नौकरी, निजी हो या सरकारी, पाना कठिन है। क्लास वन में सरकारी नौकरी में लिखित प्रतियोगिता है, उसे पास करने के बाद साक्षात्कार है। दूसरों से बेहतर करने के बाद सेवा की बारी आती है। राज्यों में भी यही पद्धति है। पर यहाँ कुछ अपना वोट बैंक नौकरी देकर बनाते हैं। राज्य के एक भूतपूर्व अपनी जाति पर ऐसे आसक्त थे, उन्हें पुलिस के सिपाही से लेकर प्रादेशिक सेवा तक केवल अपनी जाति के ही व्यक्ति योग्य मिले। तब थाने के सिपाही से लेकर राज्य सेना के अधिकारी भी,

अधिकतर उन्हीं के जात-भाई थे। उनकी जात-सेवा इतनी प्रशंसनीय और यशवर्धक रही कि वह चुनाव में चित हो गए। जनसेवा में हो-न-हो, जात सेवा में आज भी उनका नाम है। इतना ही नहीं, सियासत एक ऐसा पुश्तैनी धंधा है, जहाँ नाकारा और श्रेष्ठ दोनों की समान खपत है। एक बार सत्ता में घुस-पैठ हुई तो कमाई का ही क्यों, सार्वजनिक लूट का भी चांस है। ऐसे स्वर्णिम अवसर, तुलनात्मक रूप से बड़ी-से-बड़ी नौकरियों में भी कम ही मिलते हैं। ऐसे भी शीर्ष के अतिरिक्त सबके घर काँच के हैं। उनके साथी, मित्र, बॉस सब जानते हैं। वह कुछ भी ऐसा-वैसा करें तो किसी-न-किसी स्तर पर पकड़ा जाता है। तब न उनके अधीनस्थ उनकी मदद करते हैं, न उनके बड़े अधिकारी। ऐसे अवसर के शिकार शेष जीवन अपयश में बिताते हैं। उनके सहयोगी ही उनके आलोचक हैं—"हम सब काँच के घरों के वासी हैं। भ्रष्ट आचरण के जेवर एकत्र करोगे तो भ्रष्टाचार का एक पत्थर ही घर बरबाद करने को काफी है।"

सियासत में इसका उलट है। पारिवारिक वारिस का पैसे बनाना एक ऐसा हुनर है, जिसका अनुकरण करने को उसके साथी-सहयोगी लालायित हैं। उसकी अनुशंसा में वह ईर्ष्यावश कहते भी हैं, "देखो, कितना योग्य है यह। इसने मंत्री-मुख्यमंत्री रहते आधा दर्जन कोठी-बँगले बनवा लिए हैं, इतना ही नहीं, कौन जाने कि इसका एक फॉर्म-हाउस है कि दो?" बहरहाल, कोई कुछ भी कहे। यह नेतागीरी के पुरखों की पुश्तैनी परंपरा का। आज जैसा नहीं है कि यदि विरोधी दल में है तो सत्ताधारियों से जैसे निजी शत्रुता है। सच है कि इसने कमाई भले जनता को लूटकर की है, पर हर दल के सदस्यों से इसकी निजी मित्रता है। अपना जन्मदिन हो या वैवाहिक वर्षगाँठ, सब को शानदार पार्टी में निमंत्रित करता है। जब सत्ता में था, तब भी विरोधियों की सिफारिश सुनता ही नहीं, मानता भी था।

यों वर्तमान स्थिति है कि बहुसंख्यक नेताओं की मान्यता है कि सियासत का स्तर गिरा है। फिर भी यह स्वीकार करने को कोई भी प्रस्तुत नहीं है कि इसके लिए वही सब सामूहिक रूप से जिम्मेदार हैं। उनकी सत्ता की ललक ऐसी है कि वह दूसरे दल के नेक कामों की प्रशंसा के बजाय आलोचना करते हैं। खुद उद्योगपतियों के सन्मुख झोला फैलाते हैं और उल्लू सीधा होने या चंदा मिलने पर उन्हें सार्वजनिक रूप से गाली देते हैं। खुद धेले भर की जनसेवा नहीं की, पर पुरखों के योगदान पर ऐसा इतराते हैं, जैसे वह उनका ही कर्म हो। उनके लिए राजनीति केवल कमाने और प्रसिद्ध होने का पुश्तैनी पेशा है। सड़कों से लेकर श्मशान तक, पार्क से लेकर होटलों तक उनके पुरखों के नाम पर है। इस विषय में पूरे देश में उनका कोई सानी नहीं है। ऐसों के आवास भी इस तरह से निर्मित हैं कि उनमें ताक-झाँक की कोई गुंजाइश नहीं है। फिर भी आलोचक किसके नहीं होते? वह उनके पुरखों से लेकर वर्तमान पीढ़ी के सदस्यों तक के चरित्र-हनन से बाज नहीं आते हैं। क्या सच है, झूठ क्या का निर्णय भविष्य पर निर्भर है।

वर्तमान में एक अन्य वर्ग है, जिसका पूरा जीवन ही पारदर्शी काँच है। उसकी जिंदगी देश के नेताओं, पूँजीपतियों और महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के विपरीत एक खुली किताब है। वह एक पाँच तारा होटल के पीछे बनी झुग्गियों में रहता है। यहाँ बेसहारा लोगों के बसने की भी एक रोचक गाथा है। सरकारी जमीन समझकर होटल ने इसका उपयोग नहीं किया वरना एक दिलकश बगीचा तो बन ही जाता। सरकार कागजी योजनाओं पर कई मंत्रालयों का स्वामित्व है। जमीन किसकी है, ऐसे विवाद सरकारी कार्यप्रणाली के प्रतीक हैं। जब तक इस अंतहीन प्रक्रिया का अंत हो, तब तक एक लालची जनसेवक ने 'झुग्गी आवास' योजना प्रारंभ कर दी। जिसने उसे एक दो हजार की राशि दी, उसने झुग्गी छाने की अनुमति प्राप्त कर ली। दस रुपए से शुरू अब झुग्गी का किराया सौ रुपए प्रति माह है, जो झुग्गीवासी बिना चूँ-चपट दे देते हैं। हर सियासी दल गरीब-समर्थक है। फिर यहाँ तो 'वर्कर' और वोट दोनों की सप्लाई है। हर पार्टी की रैली या मीटिंग एक वक्त की पूड़ी-आलू और निर्धारित कैश देकर आयोजित होती है। जनसेवक हर चुनाव में इन वोटों के एवज में झुग्गी बस्ती के न हटाए जाने की कीमत वसूलता है। अब तो इस गौरवशाली झुग्गी में बिजली-पानी की सुविधा भी है।

सियासी दलों के लिए यह बस्ती निर्धन-कल्याण का आदर्श उदाहरण है। पुलिस वालों को भी जब कहीं अपराधी पकड़ में नहीं आते, तो वे जनसेवक दादा की अनुमति से, किसी भी झुग्गी वाले को उठा ले जाते हैं। पता लगता है कि उसने किराए की रकम निर्धारित तिथि को नहीं भरी थी। पाँच तारा होटल भी वर्दीवालों से प्रार्थना करता है कि उसके पीछे के इस स्थायी कलंक को हटाया जाए। वह भी हाँ-हूँ करते रहते हैं, यह जानते हुए कि ऐसा अन्याय निर्धन-समर्थक कोई भी दल कैसे कर सकता है?

हमें तो धीरे-धीरे विश्वास होने लगा है कि हर लोहे-पत्थर की बस्ती में काँच के घरों की बहुतायत है। जिन अति महत्त्वपूर्ण घरों में झाँकने की गुंजाइश नहीं है, वहाँ भी लोग सेंध-सुराख से झाँककर किसी-न-किसी रहस्य से परदा उठाते रहते हैं। ऐसे घर-परिवार खोजू पत्रकार या शोध-परक लेखकों के निशाने पर हैं। वह कोई-न-कोई 'राज' खोलकर अपना महत्त्व सिद्ध कर इन अभेद्य किलों को भी काँच के घरों में तब्दील करते रहते हैं।

साअ

९/५, राणा प्रताप मार्ग,
लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

इस अंक के चित्रकार

मार्टिन जॉन

सुपरिचित साहित्यकार। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ तथा रेखाचित्र प्रकाशित। दर्जनों पुस्तकों और पत्रिकाओं के आवरण पृष्ठ का सृजन। आकाशवाणी से रचनाएँ प्रसारित। 'स्पेनिन साहित्य गौरव सम्मान' सहित कई सम्मान प्राप्त। संप्रति सेवानिवृत्त रेलकर्मी, स्वतंत्र लेखन।

संपर्क : अपर बेनियासोल, पो. आद्रा,
जि. पुरुलिया, पश्चिम बंगाल-७२३१२१
दूरभाष : ९८००९४०४७७

लोकगीतों में प्रगतिशील तत्त्व

• हरीश कुमार शर्मा

सर्वप्रथम तो हम इस प्रगतिशील शब्द को समझ लें। कई बार प्रगतिवाद और प्रगतिशीलता को एक समझ लेने के कारण भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यद्यपि शाब्दिक दृष्टि से दोनों में कोई बहुत अंतर नहीं है—दोनों में प्रगति शब्द विद्यमान है; पर प्राय: रूढ़ से हो चले अर्थ में 'प्रगतिवाद' साहित्य के क्षेत्र में एक आंदोलन है, जो एक विचारधारा विशेष से संबद्ध है और वह विचारधारा है मार्क्स की। यानी दर्शन के क्षेत्र का मार्क्सवाद ही साहित्य के क्षेत्र का प्रगतिवाद है। पर 'प्रगति' का शाब्दिक अर्थ है—आगे बढ़ना, उन्नति करना, समय के साथ चलना, परंपरा में कुछ जोड़ते हुए, उसकी समीक्षा करते हुए चलना आदि। अत: प्रगतिशील होने का संबंध किसी विशेष विचारधारा से जुड़े होने से नहीं है। कोई भी प्रगतिशील हो सकता है और एक तरह से देखें तो हर साहित्यकार कहीं-न-कहीं प्रगतिशील होता ही है। अपने समय और समाज को आगे ले चलने वाली सोच ही किसी साहित्य और उस साहित्य के रचयिता को बड़ा बनाती है। तुलसीदास इसलिए बड़े कवि हैं, क्योंकि वे अपने समय से आगे की सोच लेकर चले। जितने भी बड़े रचनाकार हुए हैं, उनका बड़प्पन उनकी अभिनवता में है, मौलिकता में है, सोच के नएपन में है, विचारों के खुलेपन में है, समय की नब्ज को टटोलकर उसकी समस्या के समुचित निदान में है, युगीन बोध और फिर युग की नवसंरचना की संकल्पना में है।

लोकसाहित्य के संबंध में प्रारंभिक अध्येताओं के मन में कोई बहुत अच्छी धारणाएँ नहीं रहीं। सामान्यत: उसे पिछड़े और गँवार लोगों का साहित्य माना जाता रहा, क्योंकि लोक की ही परिभाषाएँ इस तरह से की गईं। लेकिन लोक का अर्थ पिछड़ा, गँवार और गतानुगतिक भर नहीं है और न लोक कोई वायवी चीज है—संग्रहालय में रख देने योग्य या संग्रहालय में दर्शन कर लेने योग्य! लोक का अर्थ बहुत बड़ा है, उसकी परिधि वृहत्तर है। लोक में हम सब समाए हैं—चाहे गाँव में रहते हों, चाहे शहर में आकर बस गए हों। बहुत थोड़े से अभिजन वर्ग को छोड़ दें, तो प्राय: समूची जनता ही इसके अंतर्गत आती है। लोकवृत्त से हम तब तक पूरी तरह बाहर नहीं होते, जब तक स्वयं को उससे सायास अलग न कर लें। अन्यथा लोक से हम और हमसे लोक पूरी तरह से दूर हो ही नहीं सकता। कितनी ही लोक-मान्यताओं, परंपराओं, मूल्यों, प्रवृत्तियों को हम जाने-अनजाने, यहाँ तक कि चाहे-अनचाहे भी अपनाए रहते हैं। तो यहाँ कहना इतना भर है कि लोक पिछड़ेपन का प्रतीक भर नहीं है और

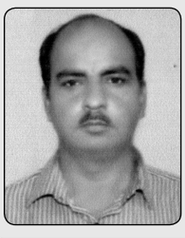

सुपरिचित लेखक। अब तक पाँच पुस्तकें तथा राष्ट्रीय स्तर की विभिन्न पत्रिकाओं में शताधिक सृजनात्मक एवं आलोचनात्मक रचनाएँ प्रकाशित। अक्तूबर २०२० से सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु के हिंदी विभाग में आचार्य पद पर कार्यरत।

न लोकसाहित्य दकियानूसी विचारों का वाहक मात्र है। उसमें भी अपने समय और समाज के सापेक्ष चलने की चाहत होती है, उनको नवयुगीन सोच से जोड़ने की सामर्थ्य होती है। लोकगीतों पर तो यह बात और भी सटीक ढंग से लागू होती है।

लोकसाहित्य में लोकगीतों का क्रम सर्वप्रथम आता है। संभवत: यह लोकप्रियता की दृष्टि से हो। परंतु यदि हम देखें तो लोकसाहित्य की समस्त विधाओं—लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य, लोक-सुभाषित में लोकगीत ही अद्यतन होते हैं, 'अपडेट' होते हैं। देशकाल-परिस्थितियों के अनुसार इनमें त्वरित विस्तार होता रहता है। इनका आधार संवेदना होती है, भावना होती है, मन:स्थिति होती है। अत: जब कभी कोई ऐसी परिस्थिति आती है, जो राष्ट्र की हृत्तंत्री को झकझोर देती है, तो नवीन-नवीन विषयों पर लोकगीतों का स्फुरण लोककवि के मन में हो उठता है और उसके रचे गीत अनायास लोककंठ से नि:सृत होने लगते हैं। इसलिए चाहे भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का दौर हो, चाहे भारत पर चीन और पाकिस्तान के आक्रमण का समय हो, चाहे गांधीजी की मृत्यु-संबंधी त्रासद घटना हो; ऐसे अनेकानेक अवसरों पर लोकगीतकार ने सदैव अपने दायित्व को निभाया है और लोक ने सहज भाव से अपनाकर इसे चरितार्थ किया है।

समसामयिकता लोकगीतों की एक बड़ी विशेषता है। समय के साथ होने वाले परिवर्तनों से ये अप्रभावित नहीं रहते। भारत में जब मोटरकार आई और गाँव तक पहुँची या गाँव की नारी ने शहर जाकर उसे देखा तो उसका मन भी उसमें बैठने को मचल उठा। उसके मन की अभिलाषा गीत के रूप में फूट पड़ी—

चाहे बिक जाये हरो रूमाल, बैठूँगी मोटरकार में!
चाहे सास बिकै चाहे ससुर बिकै,
चाहे बिक जाय ननद छिनाल, बैठूँगी मोटरकार में!''

नए जमाने में गाँव-गाँव तक बिजली पहुँचाने का उपक्रम आरंभ हुआ। किसी गाँव में बिजली के खंभे तो गड़ गए, उन पर तार भी खिंच गए। परंतु बिजली जोड़ने वाला बिजली जोड़कर नहीं गया। देखें इसी पर एक गीत में ग्रामीण स्त्री का मनोभाव, जिसमें उसका उत्साह भी झलकता है और निराशा भी—

खंभे गड़ने लगे, तार खिंचने लगे,
बिजली वाला न आया तो मैं क्या करूँ ?
मैंने भोजन बनाया उसी के लिए,
खाने वाला न आया तो मैं क्या करूँ ?''

नवयुगीन संसाधनों का प्रयोग प्रेम की उपमा के लिए किस प्रकार किया गया है, इसका एक रोचक उदाहरण अरुणाचल-असम में निवास करने वाली मिसिंग जनजाति के एक लोकगीत में देखा जा सकता है। नवयुवक नायक इसमें कहता है—"जैसे स्कूटर होने पर देश-विदेश का भ्रमण किया जा सकता है, उसी प्रकार सच्चे प्रेम के आधार पर गृहस्थी भी सफलतापूर्वक चलाई जा सकती है।"

इस तरह लोकगीतों में यदि हम प्रगतिशीलता की पड़ताल करें तो इसके अनेक आयाम हैं। अनेकानेक परंपरागत धारणाओं, गतानुगतिक रीति-रिवाजों, रूढ़ियों, विश्वासों-अंधविश्वासों, कुप्रथाओं, आडंबरों आदि के प्रति इनमें परिष्कार, प्रतिरोध तथा युगीन बोध के अनुरूप नवाचार या उसके प्रति रुझान देखने को मिलता है। यहाँ कुछ उदाहरणों के माध्यम से इसको स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा।

एक लोकगीत की पंक्तियाँ हैं—

मेरो घर रीतो मेरो अंगना रीतो
मोरे सब सुख रीते
मेरी धीय लै गयो रे जमैया
मैं तो कभी न जनौंगी धीय
मैं तौ नित जनौंगी पूत
मेरो पूत नित लै आइयो बहू री।

इस गीत में माँ कहती है कि मेरा घर-आँगन रिक्त हो गया है। मेरे सारे सुख रिक्त हो गए हैं, क्योंकि मेरी बेटी को मेरा दामाद अपने साथ ले गया है। इसलिए मैं कभी बेटी को जन्म नहीं दूँगी। मैं सदा पुत्र को ही जन्म दूँगी, क्योंकि वह हमेशा घर में बहू लाता है।

भारतीय समाज पर बेटी की उपेक्षा का आरोप लगता है। बेटे को बेटी से अधिक महत्त्व देने की आलोचना की जाती है। पर इसका कारण क्या है ? एक कारण है 'सामाजिक परंपरा', जिसका उल्लेख इस गीत में होता है कि विवाह के पश्चात् बेटी घर सूना करके चली जाती है, जबकि बेटा विवाहित होकर घर में एक सदस्य को जोड़ता है। बेटी के जाने से रिक्त हुए स्थान को बहू लाकर भरता है।

भारतीय समाज पर बेटी की उपेक्षा का आरोप लगता है। बेटे को बेटी से अधिक महत्त्व देने की आलोचना की जाती है। पर इसका कारण क्या है? एक कारण है 'सामाजिक परंपरा', जिसका उल्लेख इस गीत में होता है कि विवाह के पश्चात् बेटी घर सूना करके चली जाती है, जबकि बेटा विवाहित होकर घर में एक सदस्य को जोड़ता है। बेटी के जाने से रिक्त हुए स्थान को बहू लाकर भरता है।

पितृसत्तात्मक भारतीय समाज में पुत्र के प्रति मोह की भावना बहुत पुरानी है। वही वंशरक्षक, कुलदीपक, कुल का तारनहार आदि माना गया है। अब यह किन कारणों से, किन परिस्थितियों में और किस आवश्यकता से हुआ, वह एक अलग विषय है; परंतु अभिजन से लेकर पिछड़े-से-पिछड़े समाज तक यही भावना विद्यमान है। इसीलिए पुत्र-जन्म भारतीय जननी की एक बड़ी साध है। कितने ही लोकगीत इस भावना को लिए हुए हैं, जिनमें पुत्र के प्रति समाज की कलप और समाज की इस कलप के अनुरूप पुत्र-जन्म के लिए माँ की तड़प दिखाई देती है। पुत्र को जन्म न दे पाने वाली माँ का सामाजिक तिरस्कार और उसके लिए उसकी चिंता या कहें तो उस दर्द की अभिव्यक्ति भी हमें अपने गीतों में दिखाई देती है। यह एक सामान्य बात है, पर विशेष बात यह है कि समाज में ऐसे भी गीत साथ-साथ प्रचलित हैं, जिनमें माँ की इस धारणा के उलट भावना और प्रगतिशील दृष्टि अभिव्यंजित होती है।

जैसा कि पहले कहा गया कि पुत्र के प्रति समाज के मोह के अनेक कारण हैं और उनमें से एक यह भी है, जो उपर्युल्लिखित गीत में व्यंजित होता है। पुत्री को पराया धन कहा गया है। यद्यपि यह भी समाज ने कभी तय किया होगा कि बेटी को विदा होकर ससुराल में जाकर नया घर सँभालना है, उसी को अपना मानना है और अंततः उसकी मालकिन बनना है। पर उसे जाना तो है घर छोड़कर। अपना घर छोड़कर जाने की कसक जितनी लड़की के भीतर होती है, माँ के भीतर भी उतनी ही होती है; भले ही वे दोनों परंपरा तथा सामाजिक नियम के नाम पर इससे समय के साथ समझौता कर लेती हैं, पर यह कसक कहीं-न-कहीं तो प्रकट होती ही है। एक माँ की भावना इस गीत में देखिए। बेटी को भारतीय समाज में लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती आदि पूज्य रूपों में देखा गया है। उसके जन्म से माँ की कोख सुलक्षणी हो जाती है, इसमें कोई संदेह नहीं। लेकिन समस्या यह कि उसे एक-न-एक दिन पिता का घर छोड़, पतिगृह जाना ही है। एक घर उसके जाने से आबाद होगा, तो दूसरा सूना। सूना घर बहू के आने से ही फिर से भरा-पूरा हो सकता है।

पारंपरिक रूप से स्त्रियों का काम घर सँभालना और पुरुषों का बाहर की जिम्मेदारी निभाना माना जाता रहा है। आधुनिक स्त्री ने यह मानदंड बदले हैं। वह अब वे सारे काम कर रही है और करना चाहती है, जो पुरुषों के हिस्से के माने जाते थे। वह आज पुरुषों की बराबरी पर खड़ी है और कहीं-कहीं तो आगे भी निकलती हुई दिखाई पड़ रही है। सैनिक से लेकर बस कंडक्टर और ड्राइवर तक के वह सारे काम आज कर रही है, जो कभी पुरुषों के ही हिस्से के काम माने जाते थे। देखें समाज की इस बदलती हुई मनोवृत्ति का एक बिंब हिंदी लोकगीत में—

लेकर मोतियों का थाल पूजा करने जाऊँगी।
आप स्कूल जाएँगे, आपके साथ जाऊँगी।
लेकर मास्टर वाली डंडी बच्चे मैं पढ़ाऊँगी।
आप स्टेशन जाएँगे, आपके साथ जाऊँगी।
लेकर गार्ड वाली झंडी, गाड़ी मैं चलाऊँगी।'''

देश के स्वाधीनता-संग्राम में देश की जनता ने बड़ी भूमिका निभाई। स्त्री-पुरुष दोनों ने इसमें योगदान दिया। लोकगीतों ने इसका दस्तावेजीकरण किया है कि कैसे स्त्रियों ने न सिर्फ परोक्ष रूप से बल्कि प्रत्यक्ष ढंग से भी इस महायज्ञ में स्वेच्छा से और सोत्साह अपनी महान् आहुतियाँ दीं। एक गीत में स्त्री अपने पति से कहती है—

मैं भी तेरे साथ चलूँगी आजादी के झलसे में।

एक अन्य गीत में देखें कैसे एक अल्पवयस्क बालिका पढ़ाई छोड़कर स्वाधीनता-आंदोलन से जुड़ने की जिद करती है—

केस खोल्ले खड़ी लाड्डो अरज दादा से करती है
दादाजी मेरी मत करो शादी, मेरी उमर १२ बरस की है।
लिखा दियो नाम कांग्रेस में, बनूँ मैं सत्यवती नारी।

परदा ग्रामीण भारतीय स्त्री के आगे बढ़ने में एक बड़ी रुकावट रहा है। यह उसकी जहालत का भी कारण है और जहालत के भी कारण है। यह कब कैसे चलन में आया, वह एक अलग प्रश्न है, लेकिन जब एक बार प्रथा बन गई तो बन गई। आज भी ग्रामीण स्त्रियों की एक बड़ी आबादी इससे मुक्त नहीं हो पाई है। भारत को अगर पूरी तरह से जागना है, आगे बढ़ना है, समग्रता में विकसित होना है तो आधी आबादी को जहालत के परदे से बाहर लाना पड़ेगा। उसकी सामर्थ्य का उपयोग करना होगा। आज यह काफी हद तक होता हुआ दिखाई देता है, परंतु लोकगीतकार ने बहुत पहले ही इसका आह्वान किया—

जागो हे प्यारी बहनो, भारत जगाई चलो।
परदा जहालत का दूर हटाई चलो।''

एक अन्य लोकगीत में एक बहू सास के भेजने से बार-बार बगिया में जाने को इसलिए मना करती है कि उसे वहाँ मौजूद ससुर के कारण घूँघट काढ़ना पड़ेगा। यह निश्चय ही आधुनिक नारी है, जो परदा-प्रथा के प्रति प्रकारांतर से अपना विरोध व्यक्त करती है—

मैं बेरि-बेरि बगिया न जाने वाली।
बहिरे बगिया ससुर जी के अवना
मैं बेरि-बेरि घुँघटा न काढ़ै वाली।

प्रदूषण आज की एक बड़ी समस्या है। इसको लेकर तमाम तरह की चिंताएँ, तमाम तरह के प्रयास, तमाम तरह के प्रतिबंध, जनजागरण, प्रचार अभियान आदि चलते ही रहते हैं। लोकगीतकार भी इस समस्या से अनवगत नहीं है। एक भोजपुरी लोकगीत की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस दृष्टि से द्रष्टव्य हैं—

बचावे के परी हो, बचावे के परी
प्रदूषण से धरती, बचावे के परी
चिमनियन के करिया धुआँ से
दूषित भइल असमनवाँ
खतम करऽना हरियाली के
मत काटऽ अब बनवाँ
अब डेगे डेग गछिया लगावे के परी।
प्रदूषण से धरती, बचावे के परी॥

परस्पर लड़ाई-झगड़ा, द्वंद्व-फसाद फिर कोर्ट-कचहरी आदि विकास के पथ की बाधाएँ हैं—व्यक्तिगत जीवन की भी और सामाजिक-राष्ट्रीय जीवन की भी। कोर्ट-कचहरी में धन की बरबादी करने से बेहतर है कि पंचायत-व्यवस्था सुदृढ़ हो, इसमें सुधार हो। समाज स्वावलंबी हो। स्थानीय स्तर पर ही समस्याओं का समाधान हो। लोग विकृतियों से मुक्त हों। मेल-मिलाप, शांति और सामूहिकता की भावना के साथ आजादी के बाद व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास की एक परिकल्पना इस गढ़वाली गीत में की गाई है—

गौं गौं पंचायत करा, अर सुधारा पाणी जी,
सुख से उठली-बठली राणी बौराणी जी।
न करा मुकदमा भायों, करा आपस मा मेल जी,
कोर्ट माँ पड्यां रला, बाललला बोई बुआ जी।
अच्छो काम करा भायों, नी खेलणू जुवा जी,
गली-गल्यों पड्यां रला, बोलला बोई बुबा जी।
पंचू मा जैक बोला, घूस जरा नी खाणी जी,
सही-सही निसाब कर्णू, बाल-बच्चों जाणी जी।
अपणी छ खेती, अपणू छ राज जी,
मेल से रणो भाई, आजाद आज जी।
डाली बोटी लगावा, वणा बग्वान जी,
जगू जागू मोटर पौंछा, देवा श्रमदान जी।
(गाँव-गाँव में करे पंचायत और सुधार पानी का जी।
सुख से उठेंगीं-बैठेंगीं हाँ रानी सी दुलहनिया जी।
लड़ाई-झगड़ों से दूर रहें औ आपस में करें मेल-मिलाप
कोर्ट के भरोसे रहे समझो, रोटी रोजी जाएगी जी।
अच्छे-अच्छे काम करें औ खेलें न कानून का जुबा भाई,
गली-गली में पड़े रहेंगे, फिर माता-पिता कहेंगे बार-बार
पंचों से कहेंगे जाकर जी, घूस मत खाना भाई हाँ,
सही-सही न्याय करना भाई, बाल-बच्चों की कसम खाकर जी।
आज खेती अपनी है और राज भी अपना ही भाई।
मेल से रहना भाई, पाई है आजादी भाई।
पेड़-पौधे लगाए भाई, बनों औ बागों में आज,
जगह-जगह मोटर पहुँचाएँ, श्रमदान करें सभी आज।)

राजनीतिक रूप से भले भारत कभी एक रहा और कभी अलग-अलग इकाइयों में विभक्त रहा, परंतु सांस्कृतिक रूप से हमेशा एक राष्ट्र रहा। अंग्रेजों से स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद यह एक लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान लिए खड़ा है। अपनी इस राष्ट्रीयता का बोध प्रबुद्ध से लेकर एक आम जन तक को है। इसका

उदाहरण है—अरुणाचल प्रदेश जैसे सुदूर सीमावर्ती राज्य में रहने वाली तांग्सा जनजाति का एक लोकगीत, जिसका भावार्थ कुछ यों है—

"अरुणाचल प्रदेश भारत के विशाल भू-भाग में अरुणाचल प्रदेश का जन्म हुआ, जहाँ तङ्सा, नोक्ते, आदी, न्यीशी, आपातानी, खाम्पती जैसी जनजातियाँ विद्यमान हैं। उसी के अंतर्गत हम तङ्सा जनजाति का एक विशाल क्षेत्र है, जिनका तिरप नदी के ऊपरी क्षेत्रों में निवास-स्थान है। तङ्सा के अंतर्गत आने वाली हम सभी जनजातियाँ मुकलोम, लोंङ्चाङ्, जुगली, पाङ्सा आपस में भाईचारे के साथ रहते हैं। भारत के विशाल भू-भाग में अरुणाचल प्रदेश का जन्म हुआ।"

एक नागपुरी गीत में इसी भावना को और भी सुंदर शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है। देश के सौंदर्य एवं गरिमा का बखान करती इस गीत की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

भारत महाबड़ कारी अंत परी जड़
झबरल डलिया
पाती-पाती हमनी बसिया, हेकी आगे भारतीया
सागर धोवे गोड़, पहाड़ मुकुटमूड़
गंगा-जमुना कतइ पावन नदिया, हेकी आगे भारतीया
बंग से गुजरात, जम्मू से तमिलनाडु
रंग-रंग बोलिया
नाना धरम नाना मतिया, हेकी आगे भारतीया
महान् नर नारी, एहि देशे अवतारी
ज्ञान-विज्ञान के अनुपम जोतिया,
हेकर आगे भारतीया
जुग-जुग के एके नात
भारत सब के माता
एक ही गोतिया
सारदा जल बोले जय भारतीय
हे की आगे भारतीय।

अर्थात् भारत एक डाल है, जिसके हम पत्ते हैं। सागर जिसके चरण पखारता है, गंगा-जमुना जैसी पावन नदिया जिसका शृंगार हैं। बंगाल से गुजरात तक, कश्मीर से कन्याकुमारी तक, जहाँ रंग-रंग की बोलियाँ, जाति और धर्म हैं, जहाँ ज्ञान-विज्ञान की अनुपम ज्योति जलती है, जहाँ महान् नारी ने अवतार लिया, वह भारतभूमि सबकी माता है।

किसी-न-किसी तरह का नशा करना समाज की अतीत में एक सामान्य प्रवृत्ति रही ही। पान, बीड़ी, सिगरेट, तंबाखू, चिलम आदि ग्रामीण जीवन का तो एक भाग ही थे। सभी नहीं तो अच्छी-खासी संख्या में लोग इनका सेवन करते थे। पान, सुपारी इत्यादि तो संस्कृति का भाग रहे हैं। अब यह प्रवृत्ति कुछ कम हुई है तो जनजातीय समाजों तक भी यह चेतना पहुँची है। अरुणाचल प्रदेश में कभी अफीम का सेवन खूब किया जाता था, जिसकी गवाही यह गीत भी देता है। पर, यह नवयुगीन चेतना है कि वहाँ की एक नोक्ते जनजाति का लोकगीतकार भावी पीढ़ी को समय के साथ चलने का मंत्र दे रहा है। वस्तुत: इस नोक्ते लोरी-गीत में बच्चे को आगे चलकर एक अच्छा नागरिक बनने का आशीर्वाद और शिक्षा दी जा रही है। द्रष्टव्य हैं कुछ भाव—

"तुम्हारा जन्म एक महान् उद्देश्य के लिए हुआ है। तुम बड़े होकर अधिक-से-अधिक कृषि-कार्य करो और अधिक अनाज उपजाओ। इससे तुम इतने अमीर हो जाओगे कि दूसरे गाँव में जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। तुम अफीम नहीं खाना, यानी नशे से परहेज करना।"

लोकगीतों में ही नहीं, अपितु लोकसाहित्य की अन्यान्य विधाओं में भी यदि हम देखें तो यह प्रगतिशील चेतना वहाँ भी दिखाई पड़ जाती है। लोकनाट्य लोकसाहित्य की एक बहुत ही लोकप्रिय विधा है, जिसको देखने के लिए सैकड़ों-हजारों की संख्या में जनसमूह उमड़ता है। पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि अनेक विषयों से जुड़े यह लोकनाट्य जनता का मनोरंजन तो करते ही हैं, उसके मूल्य-निर्माण में भी बड़ा योगदान देते हैं। ऐसा ही एक लोकनाट्य है—'अमरसिंह राठौर'। इस ऐतिहासिक नाटक में राजपूत राजा अमरसिंह राठौर मुगल दरबार से सात दिन की छुट्टी लेकर अपना गौना कराने गया। लौटकर आने के बाद नवविवाहिता के साथ ऐसे रास-रंग में खो गया कि सात के बजाय चौदह दिन हो गए, दरबार में वापस हाजिरी लगाने नहीं आया। दरबारियों द्वारा कान भरे जाने पर बादशाह ने अमरसिंह पर प्रत्येक दिन का एक लाख रुपया जुर्माना अनुपस्थित दिनों के लिए तय किया और यह संदेश लेकर उसके भतीजे रामसिंह को अमरसिंह के पास भेजा। रामसिंह दरबार में अपने चाचा के बारे में हुई कुचर्चाओं से बड़ा खिन्न था, पर बिना उनकी अनुमति के कुछ कर नहीं सकता था। अत: उसने अपना सारा आक्रोश अपने चाचा पर निकाला। सामंती संस्कृति में शराब का सेवन आम बात थी, पर इस नौटंकी में नाट्यकार उसकी आलोचना के लिए अवकाश निकाल लेता है। देखें कुछ पंक्तियाँ—

किस गफलत की नींद में, रहे चचा जी सोय।
चाचा नशा शराब का, अब सब मालुम होय॥
अब सब मालुम होय, पड़ेगा जब पीछे पछताना।
सात रोज का सात लाख, देना होगा जुर्माना॥"

इस तरह से यदि हम देखें तो लोकसाहित्य के अनेकानेक आयाम हैं और लोकगीत इसमें अग्रणी भूमिका निभाते हैं। लोकसाहित्य पिछड़े लोगों का साहित्य भर नहीं है और न उसमें सर्वत्र पिछड़ी मानसिकता के ही दर्शन होते हैं। ध्यान से देखा जाए तो उसमें ऐसे कितने ही तत्त्व प्राप्त होंगे, जो हमें नवयुगीन चेतना से जोड़ते हैं, गतानुगतिकता से बाहर लाते हैं और उन विचारों-भावों के वाहक बनते हैं, जो हमें प्रगति की ओर ले जाते हैं तथा समय के साथ चलने की प्रेरणा देते हैं। समयानुसार समाज का रुझान बदलने से साहित्य और संस्कृति भी प्रभावित होते हैं तथा समाज को प्रभावित भी करते हैं।

सा अ

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर-२७२२०२ (उ.प्र.)
दूरभाष : ७९८३८०९६६४

ऋष्यमूक पर्वत के आर-पार

● पद्मावती

श्रीराम राम रामेति, रमे रामे मनोरमे।
सहस्र नाम तत्तुल्यम, श्रीराम नाम वरानने॥

प्रभु राम का नाम सभी कष्टों से तारने वाला तारक मंत्र है। यह एक अद्वितीय मंत्र सहस्र नामों के समान है। कलियुग में भवसागर से पार कराने में सक्षम केवल राम नाम का मंत्र ही है।

सर्व सौभाग्य प्रदाता अनंत कल्याणकारी विराटरूपी, त्रिलोकनाथ आनंददाता प्रभु श्रीराम के चरण-कमलों में प्रणाम कर आपके सामने प्रस्तुत है एक और यात्रा-वृत्तांत, जिसमें कर्नाटक राज्य में स्थित ऋष्यमूक पर्वत के पौराणिक स्थल उसके निकट श्रीयंत्रोधारक हनुमान मंदिर के वैशिष्ट्य के साथ-साथ 'नव वृंदावन' और हंपी की शब्दयात्रा कराई जाएगी। आइए, पहले इस स्थल के ऐतिहासिक और पौराणिक परिदृश्य का अवगाहन किया जाए।

इस बार हम चले थे कर्नाटक के सुदूर प्रांत में अनिगुंदि में स्थित 'नव वृंदावन' स्थल का दर्शन करने। यह मध्वाचार्य संप्रदाय के नौ तीर्थंकरों की जीव-समाधि का पुण्य धाम है और बीच में अनायास आ जुड़ गए थे यंत्रोद्धारक हनुमानजी, जिनका दर्शन हमारी निर्णीत यात्रा में नहीं था। वैसे हमारी कोई भी यात्रा निर्णीत नहीं होती। हवा का रुख जिधर हो, हम बस चल पड़ते हैं। अब यह तो 'उसकी' अनुकंपा है कि जो दिखाना चाहता, दिखा देता है। तो चेन्नई से निकले गाड़ी में और सीधा रुके बेल्लारी जाकर, जो ५७५ कि.मी. की दूरी पर है और गम्य स्थान से लगभग साठ कि.मी. दूर। अँधेरा हो गया था, इसीलिए यात्रा को विराम दिया। रात को कर्नाटक की भोजन थाली का आनंद लिया और चले निद्रा के आगोश में।

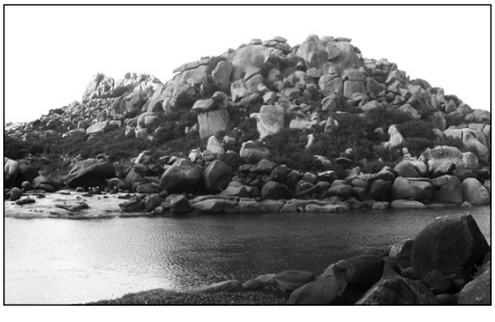

ऋष्यमूक पर्वत

सुपरचित लेखिका एवं आचार्य। शिक्षक सम्मान, हिंदी साहित्य रत्न सम्मान, विशेष हिंदी प्रचारक सम्मान २०२१, नारी गौरव सम्मान सहित कई सम्मानों से सम्मानित। संप्रति आसन महाविद्यालय, चेन्नई में हिंदी भाषा साहित्य का अध्यापन।

अगली सुबह तरोताजा होकर रागी दोसा का, जो कर्नाटक का विशेष व्यंजन माना जाता है, भोग लगाया और निकल पड़े अपने गम्य स्थान की ओर—नव वृंदावन। बेलारी से हंपी केवल साठ कि.मी. की दूरी पर है और हंपी से नव वृंदावन लगभग बीस कि.मी. की दूरी पर। तो सोचा पहले 'नव वृंदावन' देखकर हंपी में रैन बसेरा होगा। मार्ग में दृष्टिगोचर हुईं 'ऋष्यमूक पर्वत श्रेणियाँ'। आइए, जानें इस अज्ञात स्थल के माहात्म्य को मानस के आधार पर।

वाल्मीकि रामायण में वर्णित ऋष्यमूक पर्वत वानरों की राजधानी किष्किंधा के निकट है। इस पर्वत को घेरकर तुंगभद्रा नदी बहती है। इसी से कुछ दूरी पर माता अंजनी के नाम से भी एक पर्वत श्रेणी मिलती है। इसी प्रदेश में कभी पंपासर तीर्थ हुआ करता था। वर्तमान समय में यह प्रदेश कर्नाटक के पास हंपी शहर के निकट का प्रदेश माना जाता है।

मानस के अरण्य कांड में प्रसंग आता है कि प्रभु श्रीराम अपने अनुज सहित माता सीता की खोज में वन मार्ग से गुजरते हैं, जहाँ वे मार्ग में कई राक्षसों का उद्धार करते हैं और फिर घूमते-घूमते वे मतंग मुनि के आश्रम में पधारते हैं। यहाँ उनकी भेंट भक्त शिरोमणि शबरी से होती है। शबरी की तपस्या और भक्ति से प्रसन्न होकर प्रभु उस पर अपनी विशेष अनुकंपा दिखाते हैं और उसे नव विधा भक्ति का वरदान भी देते हैं। सीता वियोग में व्यथित श्रीराम को माता शबरी सांत्वना देकर प्रभु को पंपासर जाकर ऋष्यमूक पर्वत पर निवास कर रहे सुग्रीव से मैत्री करने का सुझाव देती है।

पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होईहि सुग्रीव मिताई॥

(मानस, अरण्यकांड, पृ. ६५२)

ऋष्यमूक पर्वत सुग्रीव का निवास-स्थान था। जब दुराचारी बालि अपने बल से मदांध हो अपने भाई सुग्रीव को युद्ध में पराजित कर उनकी

पत्नी और राज्य छीनकर उन्हें किष्किंधा से निष्कासित कर देता है, तब सुग्रीव प्राण बचाकर भाग जाते हैं व मंत्रियों समेत इस पर्वत की शरण में आकर छिप जाते हैं। महाबली बालि से प्राण संकट की आशंका से भयभीत सुग्रीव इसी पर्वत को अपना गुप्त निवास-स्थान बना लेते हैं। सुग्रीव का ऋष्यमूक पर्वत को चुनने के पीछे एक और बलिष्ठ कारण था। बालि को मतंग मुनि से श्राप मिला था कि इस पर्वत पर आते ही वह मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। उसकी कथा इस प्रकार है—

वाल्मीकि रामायण में वर्णन आता है कि ऋष्यमूक पर्वत पर महर्षि मतंग का आश्रम हुआ करता था। माना जाता है कि बालि को उसके पिता इंद्र से एक स्वर्ण हार प्राप्त हुआ था, जिसको ब्रह्मा ने मंत्रयुक्त करके उसे यह वरदान दिया था कि इस हार को पहनकर जब भी वह रणभूमि में दुश्मन का सामना करेगा तो दुश्मन की आधी शक्ति क्षीण हो जाएगी और वह बालि को मिल जाएगी। इस कारण वह लगभग अजेय बन गया था और अपरिमित बल के नशे में चूर होकर उसने अपने भाई तक को नहीं छोड़ा था।

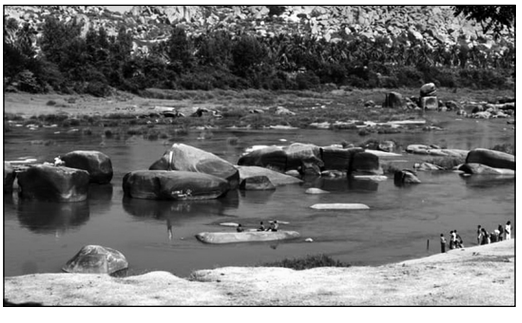

मतंग पर्वत

वहीं दुंदुभि महिष रूपी असुर था। उस मूर्ख को भी अपनी शक्ति पर दंभ हो आया था। कालांतर में एक बार असुर दुंदुभि ने बालि को द्वंद्वयुद्ध के लिए ललकारा। मदमस्त बालि ने उसको समझाने की बड़ी कोशिश की, लेकिन वह मंद बुद्धि नहीं माना। बालि युद्ध के लिए राजी हो गया और उसने बड़ी सरलता से दुंदुभि का वध कर डाला। तत्पश्चात् बालि ने उसके निर्जीव शरीर को दोनों हाथों से उठाकर एक योजन दूर फेंक दिया। इस प्रकरण में उसके मृत शरीर के मुँह से टपकती हुई रक्त की कुछ बूँदें महर्षि मतंग के आश्रम में पड़ीं। महर्षि में दिव्य दृष्टि से देखा और कुपित होकर बालि को श्राप दे दिया कि भविष्य में जब कभी वह इस आश्रम के दायरे में आएगा तो मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। सुग्रीव इस बात से परिचित थे। इसीलिए जब बालि ने उन्हें युद्ध में हराकर राज्य से खदेड़ दिया था, तो उन्होंने इस ऋष्यमूक पर्वत की शरण ली थी। क्योंकि बालि इस पर्वत पर आने से डरता था और सुग्रीव उसकी तरफ से निश्चिंत होकर इस पर्वत श्रेणी में छिपकर अवसर की प्रतीक्षा में काल यापन कर रहे थे।

इस पर्वत का एक और वैशिष्ट्य यह भी रहा है कि इसी स्थल पर भक्त हनुमान को अपने प्रभु राम के प्रथम दर्शन हुए थे।

किष्किंधा कांड के आरंभ में गोस्वामीजी इस प्रदेश का संदर्भ देते हैं—

आगे चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्बत निअराया॥
तँह रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखी अतुल बल सींवा॥

(श्रीरामचरितमानस, पृ. ६६६)

जब प्रभु श्रीराम माता सीता की खोज करते हुए ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचते हैं, तब सुग्रीव का मन उन्हें देखकर आशंकित हो उठता है। सोचते हैं कि जरूर बालि ने ही इन तेजस्वियों को उसे मारने के लिए भेजा है। प्रभु राम के तेज को देखकर भयाकुल सुग्रीव हनुमान को आज्ञा देते हैं कि 'हे हनुमान! ये दोनों पुरुष बल और रूप के निधान जान पड़ते हैं। तुम विप्र वेश धर जाओ और इनका रहस्य पाकर वापस आकर मुझे बताओ।'

तब हनुमान ब्रह्मचारी के वेश में जाते हैं और उनका प्रभु श्रीराम से मिलन होता है। अपने प्रभु का परिचय पाकर हनुमान प्रेमवश भाव-विह्वल उनके कमल चरणों में गिर पड़ते हैं। वाणी साथ छोड़ देती है, मुख से वचन नहीं निकलते और असीम आनंद में डूब जाते हैं—

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष के रचना॥

(श्रीरामचरितमानस, किष्किंधाकांड, पृ. ६६७)

यह पर्वत-शृंखला अति पावन मानी गई है। इन्हीं पहाड़ियों पर अतुलित बल निधान पवनपुत्र अपने प्रभु श्रीराम और उनके अनुज लक्ष्मण को कंधों पर बिठाकर वानर राज सुग्रीव के पास लेकर जाते हैं। यहीं पर उन दोनों की मैत्री होती है, जो प्रकारांतर से माता सीता की खोज का हेतु बनती है।

इसी पर्वत-शृंखला पर श्रीराम सुग्रीव से रावण द्वारा सीता अपहरण की कथा सुनते हैं। अत्याचारी उच्छृंखल रावण का वध करने के लिए वानर सेना के साथ मिलकर वे यहीं बैठकर रणनीति बनाते हैं। यही वह बिंदु है, जहाँ उनके राजनैतिक जीवन का आरंभ होता है। यह एक ध्यातव्य तथ्य है कि उनके इन राजनैतिक क्रियाकलापों की शुरुआत इसी पर्वत-शृंखला पर हुई थी। यहीं से लंका प्रस्थान का निर्णय लिया गया था। वानरों की टोलियों को विभिन्न दिशाओं में भेजा गया था। धर्म के अधर्म पर विजय की नींव यहीं पड़ी थी। राम-रावण युद्ध परियोजना की संकल्पना की रूपरेखा इसी प्रदेश में तैयार की गई थी। सुग्रीव के राज्याभिषेक होने के पश्चात् यहीं एक शिला पर बैठकर प्रभु ने सुग्रीव को आदर्श राजनीति की शिक्षा दी थी। लंका प्रस्थान से पहले यह पर्वत उनका अस्थायी निवास स्थल भी माना जाता है। इसका प्रमाण मानस में मिलता है। कहा जाता है कि देवताओं को यह भान था कि प्रभु श्रीराम इस पर्वत पर कुछ दिन वास करेंगे, इसी कारण उन्होंने यहाँ सुंदर सी गुफा पहले से ही बनाकर रख छोड़ी थी।

प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखेऊ रुचिर बनाई।
राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ॥

(मानस, किष्किंधाकांड, पृ. ६७८)

इस दृष्टि से भी ऋष्यमूक पर्वत को रामायण में विशेष महत्त्वपूर्ण स्थल माना गया है।

पंपा सरोवर

तुंगभद्रा नदी और उसके निकट ऋष्यमूक पर्वत के आवृत्त को 'चक्र तीर्थ' कहा जाता है। यही चक्र तीर्थ रामायण में वर्णित पंपासर तीर्थ माना गया है। तुंगभद्रा नदी को पार करके कुछ गुफाएँ मिलती हैं, जिसके अंदर सप्त ऋषियों, सूर्य और सुग्रीव इत्यादि सभी की पत्थरों पर तराशी मूर्तियाँ पाई जाती हैं। उससे कुछ दूरी पर ही पर्वत की गुफाओं के बीच पंपा सरोवर है। तीर्थयात्री प्राय: इस प्रदेश में आते हैं। यह प्रदेश कई मंदिरों और पावन तीर्थों का संगम-स्थल है। यहाँ तुंगभद्रा नदी धनुष के आकार में बहती है। कमल सरोवर, छिटपुट पहाड़ियाँ, जैसे किसी ने सलीके से पत्थर बिछा दिए हों और सबसे बढ़कर—असीम शांति, मन खो गया था रामायण की चौपाइयों में। पर्यटक या कहिए भक्त न के बराबर थे। इस रोमांचक यात्रा में केवल हमारी ही गाड़ी जा रही थी, जो थोड़ा-बहुत संशय मन में उपजा रही थी और साइन बोर्ड भी तब न के बराबर थे। पर भला हो गूगल मेप का, सही रास्ता पहचानने में अधिक परेशानी न हुई। इन पर्वत-श्रेणियों को पार करते ही पहुँच जाते हैं अनिगुंदि गाँव, जो 'नव वृंदावन' जाने का प्रवेश द्वार है।

नव वृंदावन

इन पहाड़ियों को तो देखकर मन रामायण काल में चला गया और असीम आनंदानुभूति में गोते लगाने लगा था। अचानक पाया, गम्य स्थान नजदीक आ पहुँचा—'नव वृंदावन'।

पता ही न चला। दूर भद्रा नदी दृष्टिगोचर होने लगी थी। वहीं पूछताछ करने पर पता चला—नव वृंदावन तुंगभद्रा नदी के बीच एक छोटा सा टापूनुमा स्थल है, जहाँ पर जाने के लिए छोटी-छोटी कश्तियों की व्यवस्था है, जो बहुत ही कम दाम में आपको वहाँ पहुँचा देती हैं।

यह सब दोपहर तक ही संभव है। शाम होते ही वहाँ किसी का आना-जाना नहीं होता। हमने अपनी गाड़ी पेड़ की छाँव में पार्क कर दी और अधिक मोल भाव न करते हुए नाव को बुला लिया। नाविक नाव लेकर आ गया। हम नाव पर सवार हो गए। दोपहर के ग्यारह-बारह बज रहे थे। पंद्रह मिनट लगे प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर उस टापू पर पहुँचने के लिए। कल-कल बहती शांत भद्रा नदी, ठंडी हवा का मंद-मंद बहना, दूर-दूर तक पानी का सैलाब। सारी थकान मिनटों में कपूर बनकर उड़ गई। मन शांत हो गया। दरअसल प्रकृति का सान्निध्य दैहिक, आधि दैविक और आध्यात्मिक, तीनों तापों का शमन कर देता है।

पंद्रह मिनट की इस जलयात्रा के बाद हम उस स्थल पर पहुँच गए। चारों ओर कँकरीली छिट-पुट पहाड़ियाँ, पथरीला मैदान, बेतरह उगी कँटीली झाड़ियाँ और निर्जन नीरवता में मंत्रमुग्ध करने वाली निस्तब्धता। कुछ भी कहिए, शांति मन को मोह रही थी। अंदर बड़ा सा प्रांगण, वर्तुलाकार में नौ समाधियाँ। बीचोबीच गुरुवर व्यासराय तीर्थ की समाधि, जिसके चारों ओर बाकी आठ गुरुओं की समाधियाँ बनी हुई हैं। उसी प्रांगण में छोटा सा कुटियानुमा घर है, जिसमें पुजारी भोग की व्यवस्था करता है, क्योंकि नित्य दोनों समय इन महात्माओं को भोग लगाने की परंपरा का पालन होता है और फिर शाम से पहले पुजारी की वापसी हो जाती है। हमने पुजारी से वार्त्तालाप किया तो हमें बताया गया कि ये सभी जीव-समाधियाँ हैं। यानी इन महानुभावों ने जीवित ही अपनी इच्छा से समाधि ले ली थी। सुनकर रोंगटे खड़े हो गए। अद्वैत दर्शन के सिद्धांताचार्य मध्व परंपरा के इन नौ गुरुओं के नाम इन समाधियों पर खुदे हुए हैं। दर्शन, ज्ञान और भक्ति की संश्लिष्ट चेतना का शक्ति पुंज ये चैतन्यमयी संत आज भी भूगर्भ में अपनी साधना में निमग्न है और इसी कारण हर समाधि के चारों ओर एक पीले रंग की रेखा खींच दी गई है, ताकि पर्यटक/भक्त इनकी शांति भंग न कर सकें। आज भी ये समाधियाँ साँस ले रही हैं। अंदर आप उस स्पंदन को प्रत्यक्ष अनुभूत कर सकते हैं। एक ही स्थान पर नौ संतों का अदृश्य सान्निध्य? व्यक्ति की चेतना मोहाविष्ट आवरणों को भेदकर अप्रयत्न ही आज्ञाचक्र में प्रवेश कर साक्षात्कार की परिधि में पहुँच सकती है। इतनी शक्ति प्रतिध्वनित हो रही थी वहाँ। उन संतों की उपस्थिति कण-कण में अनुभूत हो रही थी। यह उनकी अखंड साधना से प्रदीप्त चैतन्य प्रभा का अलौकिक तप्त तेज ही था, जिसने पूरे स्थल को अपनी दिव्य तरंगों से आच्छादित कर रखा था और उस दायरे में प्रवेश मात्र से आध्यात्मिक प्रज्ञा का स्वत: उदीप्त हो जाना अब कोई असंभावित घटना न रह गई थी। यह शत-प्रतिशत स्थल का ही प्रभाव था। जिन आत्माओं में परमात्मा को भी प्रतिबंधित करने का सामर्थ्य हो, उनका सान्निध्य कुछ पलों के लिए ही सही, नि:संदेह दिव्य अनुभूति जाग्रत् करने में सक्षम था, जिसे केवल अनुभूत किया जा सकता है। शब्दों से परे, अलौकिक सम्मोहन। क्या था यह? सत्य या मतिभ्रम··· पर जो भी था, किसी चमत्कार से कम न था। देखा जाए तो इस यात्रा की कोई पूर्व निर्दिष्ट तैयारी हमने न की थी। केवल कहीं किसी किताब में पढ़ा था, मन में संकल्प आया और शायद वह संकल्प इन गुरुओं तक पहुँच गया—संकल्प मात्र से कार्य सिद्धि। आगे का दायित्व उन्होंने निभाया। हम कैसे इस अनजान मार्ग पर चल पड़े, संज्ञान ही न था। आज भी वह स्पंदन रीढ़ की हड्डी में शीत लहर ला देता है—विचारशून्य कर देता है। इन पुण्यात्माओं का एक बार नाम स्मरण पुन: उसी स्पंदन से हम सबको

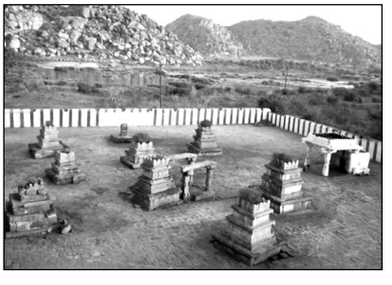

अभिभूत कर दे, इसी उद्देश्य से इन महानुभावों के नाम यहाँ दिए जा रहे हैं—

'पद्मनाभ तीर्थ, कविंद्र तीर्थ, वागीशा तीर्थ, रघुवर्य तीर्थ, व्यास तीर्थ, श्रीनिवास तीर्थ, राम तीर्थ, सुधींद्र तीर्थ, गोविंद वोडेयार।'

हमने सभी समाधियों की परिक्रमा की। कुछ पल मौन भाव-विह्वल होकर बिताए। मन में अनिर्वचनीय अनुभूति लिए हम चल पड़े होटल की खोज में 'हंपी'। बसेरा वहीं करना था।

किष्किंधा और ऋष्यमूक पर्वत वर्तमान में हंपी शहर के निकट का प्रदेश है, जो बेंगलुरु से तीन सौ चालीस कि.मी., होसपेट से तीन कि.मी. और बल्लारी से साठ मील की दूरी पर है। भारत के किसी भी प्रदेश से बेंगलुरु आसानी से पहुँचा जा सकता है। फिर वहाँ से सड़क मार्ग से हंपी तक की यात्रा की जा सकती है। हंपी से होसपेट तेरह मील की दूरी पर है। हंपी और होसपेट में आवास की सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, जिससे यात्रियों को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। पर्यटकों के लिए यहाँ कई और भी ऐतिहासिक दर्शनीय स्थल हैं।

विरुपाक्ष मंदिर

रात होने से पहले हम हंपी पहुँच गए। आवास की कोई कठिनाई न हुई। रेस्तराँ में 'उडुपी' स्वाद चखा और रात आराम के आगोश में।

अगले दिन काफी व्यस्तता में बीता। अभी हंपी देखना था और फिर वापसी। समय कम था तो अब स्थलों का विहंगावलोकन ही संभव था। पहला स्थल—विरुपाक्ष मंदिर।

यहाँ का ऐतिहासिक विरुपाक्ष मंदिर प्रख्यात आकर्षण का केंद्र है। विजयनगर साम्राज्य के संरक्षक देवता को समर्पित ७वीं शती में बनाया गया यह मंदिर अपने गौरवशाली इतिहास, समृद्ध विरासत और अद्भुत वास्तु व शिल्पकला के कारण यूनेस्को की विश्व धरोहर स्थल में शामिल है।

१६वीं शती में निर्मित द्रविड स्थापत्य शैली की उत्कृष्ट कलाकृति विजय विट्ठल मंदिर बहुत ही विख्यात एवं आकर्षण का केंद्र है, जिसके ५६ स्तंभों को थपथपाने से संगीत की लहरियाँ गूँजती हैं। इस मंदिर के मुख्य परिवेश में रखा हुआ पत्थर पर तराशा एक रथ है, जो हंपी की वास्तुकला का प्रतीक माना गया है।

विट्ठल मंदिर

इसके अतिरिक्त लोटस मंदिर, हेमकुंड पहाड़ी मंदिर, मतंग मुनि की पहाड़ी, इत्यादि कई आकर्षण के केंद्र हैं, जो पर्यटकों का मन मोह लेते हैं। हमने कुछ ही घंटों में सबका चक्कर लगा लिया। लेकिन एक मंदिर की विलक्षणता ने विशेष रूप से हमारा मन मोह लिया। आइए, आपको भी परिचित करवाते हैं उस चमत्कारी महिमांवित मंदिर से, क्योंकि जिन महानुभावों का स्पंदन हमें रोमांचित कर गया, उन्हीं की साधना और तप शक्ति का जीवंत उदाहरण है यह यंत्रोद्धारक हनुमानजी का मंदिर।

हंपी में तुंगभद्रा नदी के किनारे छोटी सी पर्वतमाला पर स्थित है, भगवान् हनुमान का विलक्षण दिव्य मंदिर, जो 'यंत्रोधारक हनुमान मंदिर' के नाम से विख्यात है। इस नामकरण के पीछे एक रहस्य है।

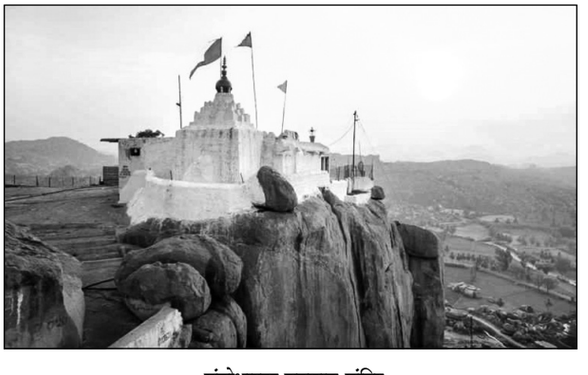

यंत्रोधारक हनुमान मंदिर

१५वीं शती में विजयनगर साम्राज्य के शासक तम्माराया द्वारा निर्मित यह मंदिर अद्भुत महिमा और शक्ति का पर्याय माना जाता है। मंदिर का क्षेत्रफल इतना विशाल तो नहीं, लेकिन अपने आप में एक अपूर्व छटा को समाहित किए हुए है। पर्वत की छोटी सी चोटी पर बने हुए इस मंदिर के गर्भगृह में श्री हनुमान की मूर्ति विलक्षण रूप से एक श्री यंत्र में प्रतिबंधित है। मूर्ति को आवृत्त करता है एक षट्कोणीय बंध, जिस पर बारह मर्कट एक-दूसरे की पूँछ को पकड़े हुए पीछे की ओर देखते हुए तराशे गए हैं। भगवान् की श्री मूर्ति ग्रेनाइट पत्थर की है, जिसमें वे पद्मासन में बैठे हुए दिखाई देते हैं। मूर्ति का दक्षिण हस्त व्याख्यान मुद्रा में और वाम हस्त

ध्यान मुद्रा में निर्मित है। भगवान् की मूर्ति किरीटमुक्तामणि सहित अन्य आभूषणों से सुसज्जित है।

श्रीचक्र यंत्र में प्रतिबंधित इस अद्वितीय मूर्ति की संरचना के पीछे एक रोचक कथा है।

मध्वाचार्य सिद्धांत के अनुसार भगवान् हनुमान वायुदेव का ही अवतार माने गए हैं, जो सृष्टिकर्ता श्री विष्णु के सदृश ही इस ब्रह्मांड की संरक्षिका शक्ति माने जाते हैं। इस संप्रदाय का बीज मंत्र है—

'हरि सर्वोत्तमा, वायु जीवोत्तमा'

अर्थात् श्रीमहा विष्णु इस सृष्टि के सर्वोच्च नियामक हैं और वायु देव जड़-चेतन के अधिष्ठाता देव हैं। इस वेदांत मार्ग के अनुसार श्रीहनुमान वायुदेव के प्रथम अवतार अधिनायक देव माने गए हैं। मध्व सिद्धांत के अनुयायी यह धारणा रखते हैं कि इस सृष्टि में श्री महा विष्णु के बाद हनुमान ही नियंता शीर्ष देव हैं।

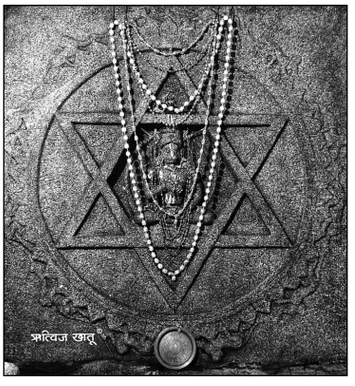

षटकोणी बंध में प्रतिबंधित हनुमान की प्रतिमा

इस मंदिर के स्थल पुराण के अनुसार मध्वाचार्य के द्वैत मार्ग में दीक्षित संत व्यासराय तीर्थ महाराज भगवान् हनुमान के प्रगाढ़ भक्त थे। ये विजय नगर राजाओं के आश्रय में रहते थे। इन्होंने दक्षिण में द्वैतवादी सिद्धांत के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका निभाई थी। कहा जाता है कि उन्हें भगवान् हनुमान को प्रसन्न करने की अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त थीं। तुंगभद्रा नदी के समीप ऋष्यमूक पर्वत पर श्री हनुमान की साधना कर रहे व्यासराय तीर्थ महाराज ने एक बार भगवान् की छवि को एक बड़े से पत्थर पर कोयले से चित्रित किया और फिर उसकी पूजा में निमग्न हो गए। पूजा के उपरांत उन्होंने पाया कि श्री हनुमान का चित्र अचानक विलुप्त हो गया है। वे आश्चर्य में पड़ गए। उनकी समझ में नहीं आया कि श्री भगवान् क्यों गायब हो रहे हैं। यह प्रक्रिया बारह दिन तक जारी रही। वे हनुमानजी को चित्रित करते और हनुमान अदृश्य हो जाते। बारह दिनों तक पत्थर पर चित्रित हनुमान के चित्र इसी तरह अदृश्य होते रहे। श्री जी की इस लीला से व्यथित होकर व्यासराय तीर्थ महाराज ने दु:खी मन उनसे प्रकट होकर दर्शन देने का आग्रह किया। भगवान् उनकी भक्ति से प्रसन्न हुए, दर्शन दिया और वरदान भी दिया। तदुपरांत हनुमान ने उन्हें आज्ञा दी कि उन्हें मंत्र द्वारा षटकोणीय यंत्र में प्रतिबंधित कर इसी स्थल पर उनकी मूर्ति की स्थापना की जाए। उसी बंध में अदृश्य हुए बारह मर्कटों को भी मंत्रोपासना से आह्वान कर प्रतिबंधित कर दिया गया। यह ऋष्यमूक पर्वत वायुपुत्र हनुमान का अत्यंत प्रिय स्थल माना गया है, क्योंकि इसी स्थल पर उन्हें उनके प्रभु श्रीराम मिले थे। इसी कथा के अनुसार यह मंदिर विजयनगर के तत्कालीन शासक के द्वारा उसी स्थल पर निर्मित किया गया है। यह मंदिर इस प्रदेश में प्राणदेव मंदिर के नाम से भी जाना जाता है। मंदिर के परिसर में कोदंडधारी भगवान् श्रीराम का भी मंदिर है, जो भक्त और भगवान् के मिलन को पुष्ट करता है। कहा जाता है कि श्री व्यासराय तीर्थ महाराज ने अपने जीवनकाल में असंख्य हनुमान मंदिरों की स्थापना की थी, लेकिन यह मंदिर एक विशेष वैशिष्ट्य से परिपूरित है। यंत्र प्रतिबंधित 'यंत्रोधारक हनुमान' मंदिर।

आश्चर्य हुआ कि प्राकृतिक सौंदर्य और महिमा से भरपूर यह पावन तीर्थ स्थल भक्तों व पर्यटकों के लिए लगभग अज्ञात और उपेक्षित क्यों रहा? कारण कुछ भी रहा हो, लेकिन यहाँ भक्तों का आवागमन बहुत कम ही दिखा। निर्जीव प्रांत, शांत वातावरण में बहता हुआ तुंगभद्रा का सघन जल-प्रवाह, छिटपुट पहाड़ियों की श्रेणियाँ, चारों ओर हरीतिमा से आवृत्त यह महिमान्वित स्थल भक्तों की मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला अद्वितीय क्षेत्र, जिसकी धरती में रामायण कण-कण पर गुंजायमान मालूम पड़ती है। दर्शन मात्र से भक्त हृदय पुलकित हो अंत:करण में श्रीराम नाम की ज्योति प्रज्वलित हो जाती है। यह भूमि ऋषियों की यज्ञभूमि है, तपोभूमि है। ऐसा लगा, इन पर्वत-शृंखलाओं में अद्‌भुत पारलौकिक सौंदर्य छिपा हुआ है। इतने महिमान्वित ऋष्यमूक पर्वत का दर्शन समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाली चिंतामणि है। कलियुग में तीनों प्रकार के दु:खों, पापों और दोषों को हरण करने वाला तारणहार स्थल है। श्रीराम की विशेष अनुकंपा जिस जीव पर हो जाती है, उसे ही इस प्रदेश के दर्शन का लाभ मिलता है। नि:संदेह हम पर यह अनुकंपा हुई और इसी कारण हम इस क्षेत्र से परिचित हो सके···और भगवान् तो आशुतोष हैं, नाम स्मरण मात्र से ही प्रसन्न हो जाते हैं। कलियुग में यही एक सरल उपाय है भगवान् की कृपा प्राप्त करने का···अविरल निरंतर राम नाम जप! सत्य वचन।

मन में असीम श्रद्धा लिए हम वापसी पर चल पड़े अपने प्रदेश। शब्दों को यहीं अल्प विराम अगली यात्रा तक। बहुत जल्द पाठकों के समक्ष एक और यात्रा-वृत्तांत लेकर उपस्थित हो जाएँगे।···तब तक के लिए···

गोस्वामीजी की पंक्तियाँ—

"सहज सुंदर सुमुख सुमन, शुभ सर्वदा, शुद्ध सर्वज्ञ, स्वच्छंदचारी।
सर्वकृत, सर्वभूत, सर्वजित, सर्वहित, सत्य संकल्प कल्पांतकारी॥
नित्य, निर्मोह, निर्गुण, निरंजन, निजानंद, निर्वाण, निर्वाणदाता।
निर्भरानंद, नि:कंप, नि:सीम, निर्मुक्त, निरुपाधि, निर्मम विधाता॥"

सा.अ

आसन महाविद्यालय
चेन्नई-६००१०० (तमिलनाडु)
दूरभाष : ९०८०२३२६०६

हाइकु

• सुषमा सहरावत

है यही दुआ
लहराए तिरंगा
सबसे ऊँचा

बसा दिल में
आन-बान-शान से
यह तिरंगा

सूर्य उदित
अँधेरा हुआ दूर
निकली धूप

बिछा लालिम
सुनहली किरण
आता सूरज

सूर्य ने किया
तम का दंभ दूर
छिटकी धूप

पार्क घूमते
पकड़े सेल फोन
सबके हाथ

गूगल सर्च
पाते हर उत्तर
झट से हम

मार्ग दिखाता
मंज़िल पहुँचाता
गूगल मेप

गूगल ने की
घर बैठे संभव
खरीददारी

नया भारत
डिजिटल इंडिया
आत्मनिर्भर

करता फोन
खरीद भुगतान
बटुआ लुप्त

बहा ले चला
धर्मांध बवंडर
आज चेतना

चतुर बाबा
अंधभक्त जनता
लुटती जाती

दिखते अब
चेहरे आतंकित
एक दूजे से

जाएगी बीत
अमावस की रात
हौसला रख

खुशमिजाजी
दिल जवाँ रखती
उम्र बढ़ाती

जो है आज है
किसने जाना कल
गँवा न पल

अति सुंदर
खिलता होंठों पर
मुसकान फूल

धीमा ज़हर
साँसों में रहा घुल
रोको दोहन

न हो मायूस
होगा परिवर्तन
यही नियम

करें व्यायाम
बदलेगा जीवन
होंगे स्वस्थ

भीड़ में खड़ा
वो आदमी अकेला
डरा-सहमा

कम उम्र में
चढ़ गया ऐनक
नेट की देन

रील का चस्का
बिगड़ी दिनचर्या
छूटे न लत

अनियंत्रित
संसाधन प्रयोग
धरा का अंत

घटते पेड़
विकसित कंक्रीट
साँसें बीमार

धीमा जहर
साँसों में रहा घुल
रोको दोहन

अप्रत्याशित
बदलते मौसम
चेता रहे हैं

अधम लोग
करें दंभ में चूर
घृणित कृत्य

नारी अस्मिता
हर पल रौंदता
क्रूर समाज

विभिन्न पुस्तकों, पत्रिकाओं और जर्नल में साहित्य एवं शोध-आलेख प्रकाशित। हाइकु, बाल एवं स्त्री संबंधी कविताओं का लेखन। 'अंतरराष्ट्रीय साहित्य गौरव सम्मान', 'शिक्षा रत्न राष्ट्रीय सम्मान', 'अभ्युदय अंतरराष्ट्रीय सुभद्रा कुमारी चौहान सम्मान', 'श्रीमती इंद्रा स्वप्न स्मृति साहित्य सम्मान २०२३' से सम्मानित। 'इक्कीसवीं सदी का हिंदी कथा साहित्य : चिंतन की विविध दिशाएँ' संपादित पुस्तक। संप्रति कमला नेहरू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर।

सुंदर घर
बरगद की छाँव
बड़ों का साथ

अनुभव का
प्रमाण-पत्र सच्चा
वृद्ध अवस्था

तन कोमल
मजबूत है मन
नारी सबल

अपने बूते
छाई हर क्षेत्र में
नारी क्षमता

युवा कुंठित
पढ़ा-लिखा बेकार
बेरोजगार

युवा निराश
ले उम्मीदों का भार
खोजता काम

हैं खेत हरे
सोने से दाने भरे
हाली क्यों पस्त

खेतों ने देखा
तिल-तिल मरता
जीवनदाता

बदल गए
मित्रता के मायने
साथ वक्त के

मित्र वही है
समझे सुख-दुःख
निभाए साथ

सा अ

१३४५, बी-१, वसंत कुंज,
नई दिल्ली-११००७०
दूरभाष : ९८९१४८३५१६

महायान

मूल : **एच.एस. वेंकटेशमूर्ति**

अनुवाद : **डी.एन. श्रीनाथ**

श्री एच.एस. वेंकटेशमूर्ति कन्नड़ भाषा के वरिष्ठ कवि और लेखक हैं। वे दो बार कर्नाटक साहित्य अकादेमी से पुरस्कृत हुए हैं। कॉलेज में कई सालों तक कन्नड़-प्राध्यापक के रूप में काम किया। अब सेवा से निवृत्त होकर साहित्य-कृषि कर रहे हैं। फिलहाल बेंगलुरु में रहते हैं।

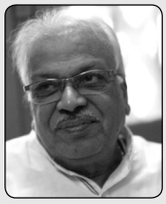

"यह महायान का अंतिम सोपान है, हमें सूरज के डूबने से पहले ही कैलास पहुँचना है। पार्थ, हम जिस मार्ग से आरोहण कर रहे हैं, वह कैलास का ही मार्ग है न?" युधिष्ठिर ने अर्जुन से पूछा।

"मार्ग ठीक ही है। जब मैं पिछली बार आया था, मार्ग इतना संकीर्ण नहीं लगा था। बस···" साँस लेते हुए अर्जुन ने कहा था।

वह छह यात्रियों का कारवाँ था। पाँच पुरुष, एक स्त्री। आसमान में काले-काले बादल जमे हुए थे। लगातार हिमपात हो रहा था। अभी-अभी ठंडी हवा बह रही थी, जो सारे बदन को हिला रही थी। युधिष्ठिर ने घोड़े को, जो आगे-आगे जा रहा था, लगाम खींचकर खड़ा किया और एक चट्टान के पास खड़े होकर कहा, "बाकी लोग आने तक हम यहीं इंतजार करेंगे। देखो, हिम-बारिश में जो अस्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है, वृकोदर है न? नकुल, सहदेव, पांचाली दिखाई ही नहीं दे रहे हैं न···"

पार्थ ऊन के कपड़े ओढ़े था, उसे कसकर लपेटते हुए कहा, "वे परस्पर आँखों की दूरी पर ही रहते हैं। हम बहुत आगे बढ़ आए हैं, इसलिए वे हमें दिखाई नहीं दे रहे हैं।" पार्थ चट्टान के किनारे बैठ गया और दीर्घ साँस लेते हुए कुछ अश्वस्त होकर थकान मिटाने लगा। वह रुक-रुककर बोल रहा था, "मुझे अच्छी तरह याद है। जब मैं पिछली बार आया था, यौवन का उत्साह था। घुटने इतने थकते नहीं थे। साथ में मातुली था, जो इस मार्ग से खूब परिचित था। हम कुछ दूर पैदल चलते थे और कुछ दूर घोड़े पर चढ़कर आरोहण करते थे। रास्ते भर में मातुली पहाड़ों की चोटियों से मुझे परिचित कराता था।"

"पीने के लिए कुछ पानी दोगे, न जाने क्यों, गला सूख रहा है?" युधिष्ठिर ने कहा। पार्थ ने अपनी पीठ पर जो चमड़े की थैली बाँध रखी थी, उससे एक छोटा सा लोटा भर पानी निकालकर युधिष्ठिर को दिया। तब तक भीम का स्पष्ट आकार दिखाई दिया।

"भैया···बाकी लोग पीछे आ रहे हैं न?" पार्थ ने ऊँची आवाज में पूछा।

"आ रहे हैं", उत्तर आया। घोड़े ने अपनी पीठ पर, गले पर और पूँछ पर जो हिम पड़ा था, जोर से झटककर अपने साथ आ रहे इन मानव प्राणियों को देखा। उसकी नजर मानो कह रही थी कि सब क्यों बैठ गए··· हमें और भी दूर का आरोहण-मार्ग रगड़ना है।

भीम हिम के घेरों को भेदकर समीप आया। अब तराई में जो उसके पीछे था, नीचे पांचाली दिखाई पड़ी। उसके कुछ पीछे नकुल और सहदेव आ रहे थे। पांचाली की चलने की गति कुंठित हो गई थी, इसलिए नकुल और सहदेव जो उसके पीछे-पीछे आ रहे थे, पीछे पड़ गए थे। भीम हथ-बैसाखी के सहारे युधिष्ठिर और पार्थ के पास आया, जो चट्टान से सटकर खड़े थे। चट्टान नाले के पास था, जो हिम से आवृत्त होता हुआ, शाम की रोशनी में जगमगा रहा था।

महायान-२

पार्थ ने भीम से कहा, "पांचाली को चलना मुश्किल हो रहा है, वह कुछ दूर घोड़े पर सवार होकर आए।" भीम छोटे चट्टान पर बैठ गया और जोर से साँस लेते हुए सुस्ताने लगा। कुछ देर के बाद मुसकराया, उसकी छोटी मूँछों पर हिम की जो बूँदें जगमगा रही थीं, साफ करते हुए कहा, "भैया, जवानी में माता सहित आप सभी को अकेला उठाकर चला था न! अब मैं खुद के लिए भी बोझ बन गया हूँ।"

पार्थ ने कहा, "मैं भी यही बात कहने वाला था। सालों पहले जब शबरशंकरजी के दर्शन के लिए आया था, आरोहण-मार्ग में दौड़ते हुए गया था। पर्वतवासी मातुली को भी पीछे छोड़कर जाता था। वह शक्ति अब कहाँ गई?"

"तब तुम पतली लकड़ी के जैसे थे। भैया अब भी ऐसे ही हैं, वैसे तब तुम थे?" भीम हँसा।

"भीम, अब मुझे भी साँस लेना मुश्किल हो रहा है। मैं तो दुबला हूँ, इसलिए आपसे कुछ हल्का हूँ, बस।"

वे बातें कर रहे थे, तभी पांचाली, नकुल और सहदेव भी आए। पांचाली नकुल और सहदेव, के कंधों पर हाथ टेककर धीरे-धीरे आ रही थी।

"सम्राज्ञी को यहाँ भी पालकी-सेवा सुलभ हो रही है।" भीम ने छेड़ा।

पांचाली चट्टान पर बैठती हुई बोली, "पार्थ, मेरी उम्र भी बढ़ी है, क्या मैं सोलह साल की षोड्शी हूँ?" इधर पलंग में भी पांचाली यही बात कभी-कभी कह रही थी, याद आई, "स्त्रियों का कभी उम्र बढ़ जाता है क्या, पांचाली?" भीम अब जोर से हँसा। पांचाली को अपने पतियों की उम्र अच्छी तरह से याद थी, मगर उसे हमेशा अपनी उम्र याद नहीं रहती थी।

"अपने पिताजी की ढलती उम्र में मैं पैदा हुई थी, इसलिए मेरी उम्र कम ही है। बूढ़े पिताजी से जो बेटी जन्म लेती है, हमेशा चिरंजीवी होती है!" यह विलक्षण तर्क है, सोचते हुए युधिष्ठिर ने पांचाली की ओर देखा।

"फिलहाल मुझे उम्र से क्या लेना-देना है? मुझे तो अब स्वयंवर नहीं करना है। मेरा विवाह हुआ, बच्चे भी हुए···" पांचाली ने तुरंत कहा और अपनी बात बीच में ही काट दी। बच्चे मर गए थे, यह बात शायद उसे याद आई होगी। जब युद्ध खत्म हो गया था, पापी अश्वत्थामा ने रातोरात डेरे में घुसकर पाँचों बेटों को मार डाला था न।

"शायद यहाँ उसकी भेंट भी हो सकती है।" पांचाली ने धीरे से मानो अपने आप से कहा।

"कौन?" भीम ने पूछा।

"और कौन? वह पापी अश्वत्थामा। तपस्या करने की बात करते हुए वही तो हिमालय आया था न?"

अर्जुन ने दु:ख भरी आवाज में कहा, "वह परम पापी है। बचपन का दोस्त और एकवचन में बातचीत करने वाला मित्र। हम साथ-साथ गुल्ली-डंडा खेलते थे। संस्कृत को अनोखे ढंग से बोलता था। मुझे याद कर आश्चर्य होता है कि उस सुसंस्कृत के अंदर कितना भयानक राक्षस घर कर बैठा था।"

युधिष्ठिर ने धीरे से कहा, "जो हो चुका है, उसे याद करते हुए बदला लेना अच्छी बात नहीं है। काल-देश-हालात आदमी के बर्ताव को रूपित करते हैं। जिन्हें इतिहास के बारे में शौक है, उन्हें इतिहास का अलक्ष्य करना चाहिए।"

महायान-3

"पुत्रशोक लगातार रहता है। जन्म देने वाली माता ही यह जान सकती है। पुरुषों को यह समझ में आना मुश्किल है।" द्रौपदी ने कहा।

अर्जुन को लगा, बात राह भटककर कहीं और जा रही है।

"उस बात को जाने दो। जो मृत्यु-मार्ग भूलकर मृत्युंजय-मार्ग को अपनाता है, उसे इससे क्या लेना-देना है?"

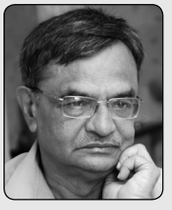

श्री डी.एन. श्रीनाथ कन्नड़-हिंदी के ख्यातीप्राप्त अनुवादक हैं। अब तक १७४ किताबें अनूदित और प्रकाशित। केंद्रीय हिंदी निदेशालय, केंद्रीय साहित्य अकादेमी से अनुवाद के लिए पुरस्कृत। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का सौहार्द सम्मान, गोइंका अनुवाद पुरस्कार, कुवेंपु भाषा भारती प्राधिकार, बेंगलुरु से गौरव प्रशस्ति और अनूदित पुस्तक पुरस्कार योजना के अंतर्गत पुरस्कृत।

"अगर अचानक अश्वत्थामा इस तराई में हमारे सामने प्रत्यक्ष हो गया तो, हमें देखकर मुँह मोड़कर जाएगा? या हमसे बात करेगा कि कैसे हैं आप लोग? आप भी आए? आइए!"

"वह बात कैसे करेगा, पता नहीं। मैं तो उससे बात करता हूँ। उसके कंधे पर हाथ रखकर बात करता हूँ कि मित्र, इस सुनसान हिमधाम में क्या तुम्हें शांति मिली?"

भीम ने दाँत कटकटाए, "अगर वह मेरे पहचान में आया तो भी, मैं अपरिचित के समान आगे चला जाऊँगा।"

"भैया, जो तपस्वी बनने जा रहा है, उसे कोप से मुक्त होना चाहिए!" पार्थ ने ठंडी आवाज में कहा।

"समझदार लोग कहते हैं कि मरण सहज है; जीवन बनावटी है। अश्वत्थामा के लिए मृत्यु भी दुर्लभ है। शांति से मरने के लिए भी पुण्य कमाकर आना पड़ता है।"

"विना दैन्येन जीवनम्, निरायासेन मरणम्···आसानी से प्राप्त नहीं होता है।" यह कहने वाला शायद युधिष्ठिर ही होगा।

हिम अधिक बढ़ गया। जाड़े का मौसम सारे बदन को कँपा रहा था।

"रात में ठहरने के लिए समीप ही कोई गुहा मिला जाए तो बेहतर होगा।"

"ढूँढ़ना चाहिए। इस मैदान में खड़े रहना संभव नहीं है। लेटने के लिए एक आड़ चाहिए ही। पांचाली, तुम घोड़े पर बैठ जाओ। मैं उसकी लगाम पकड़कर चलता आऊँगा। बाकी धीरे-धीरे मेरा पीछा करें। अगर किसी चट्टान के नीचे आसरा मिल जाए या गुहा मिल जाए तो वहीं, पेट की आग बुझाकर किसी भी तरह रात गुजारी जा सकती है। सुबह सूर्योदय के बाद कैलास पहुँचना आसान होगा।"

अर्जुन ने पांचाली को घोड़े पर बिठाया। फिर इन यात्रियों का आरोहण आरंभ हुआ। सूर्य आसमान में दिखाई नहीं दे रहा था। धीमी रोशनी संकेत दे रही थी कि अभी सूर्यास्त नहीं हुआ है।

घोड़ा आगे-आगे चला। उसके खुरपुट में जो छोटे-छोटे पत्थर फँस गए थे, सुदूर से उसकी स्फोटक आवाज सुनाई पड़ रही थी।

"यह अत्यंत दुर्गम मार्ग है। क्या तुम शिव-दर्शन के लिए इसी मार्ग से गए थे?" पांचाली ने पूछा।

"यही मार्ग है, यह मैं निश्चित रूप से कह नहीं सकता। शाम होते- होते हिम लगातार बरसता है, इसलिए हिमपर्वत में मार्ग मैदान के साथ घुल-मिल जाते हैं। ऐसी जगहों में मनुष्य से जानवर बेहतर हैं। उन्हें

मार्ग का पता किसी तरह मिल जाता है। अब हमें घोड़े को ही आगे ले जाना है।"

"पार्थ, पीछे कोई दिखाई नहीं दे रहा है। शायद वे सब पीछे ही छूट गए होंगे?" अर्जुन ने घोड़े को रोका और आवाज सुनने की कोशिश की। धीमी से कुछ आवाज हुई।

"ओह! वह वृकोदर के शंख की ध्वनि नहीं है? वे समीप में ही हैं।"

महायान-४

"पार्थ, तुम घोड़े पर चढ़ जाओ। तुम्हारे शरीर की गरमी शायद मुझे धैर्य देगी।"

पार्थ घोड़े पर सवार हुआ और पांचाली की पीठ से सटकर बैठ गया। घोड़ा एक बार पीछे मुड़कर देखा और किसी उत्साह में सिर उठाकर चलने लगा।

वह घोड़ा श्वेताश्व था, जिसने कुरुक्षेत्र में पार्थ का रथ खींचा था। उसके गले में लंबी अराल थी। श्रीकृष्ण घोड़े के कंधे और गले को सवारी करने से पूर्व कितने प्यार से सहलाता था। वह घोड़े से बातें करते समय ऐसा लगता था कि वह मनुष्य से बातें कर रहा है, "अश्वराज···क्या आज तुम्हारे दाएँ पैर का दर्द कुछ कम हुआ है? आज रात तुम्हारे पैर में तेल लगाकर मालिश करूँगा। अब तो हमें पार कराओ। यह लो, अमृततुल्य पानी पियो, यह घास-कुलथी खाओ। शाम होने से पहले हमें सैंधव को देखना ही चाहिए।"

कृष्ण ने जो गीता कही थी, शायद भूल गया होगा। मगर उसने घोड़ों के साथ दिल से जो-जो मधुर बातचीत की थी, कानों में अब भी गूँज रही है। इसलिए बुजुर्ग कहते हैं कि दिल की बात ही सत्यवाक्य होता है।

पांचाली ने फुसफुसाया, "पार्थ···मुझे कसकर गले लगाओ। सरोवर में जिस प्रकार सूर्य की किरणें उतरती हैं, उसी प्रकार तुम्हारे शरीर की गरमी मेरे शरीर में उतरे। पार्थ, मेरे हाथ-पैर धीरे-धीरे ठंडे हो रहे हैं। जब तक लक्ष्य तक न पहुँचें, मुझे बचा लो।"

पार्थ ने पांचाली के गरदन पर अपना मुँह लगाया और अपने होंठों से रगड़ने लगा। उसे बाँहों में कसकर भर लिया। दीप बाती को जिस प्रकार विश्वास दिलाता है, उसी प्रकार वह पांचाली को विश्वास दिला रहा था कि पांचाली तुम्हें बुझने नहीं दूँगा। पांचाली ने पार्थ के हाथों को अपने सीने में दबा लिया। द्रोण ने एक बार हँसते हुए कहा था। अति परिचय के बढ़ने के बाद वह बूढ़ा कुछ बेशर्म की बातें कहता हुआ अपना तन गरम करता था, यह बात पार्थ को अब क्यों याद आई! "सर्दी में गरम और गरमी में ठंड रहने वाली कौन सी चीज होती है, क्या तुझे यह पता है लड़के?"

पार्थ ने पांचाली के चेहरे को अपनी ओर घुमाया और उसके होंठ चूम लिये। बदन में धीरे-धीरे गरमी आने लगी। पार्थ की गरम साँस उसके देह को, जो ठंडी होती जा रही थी, धीरे-धीरे गरम करने लगी। पांचाली को लगा कि उसका कलेजा अब भी धड़क रहा है। नीचे घोड़े की पीठ। पीछे पार्थ का शरीर, जो उसे दबा रहा था। द्रौपदी ने फुसफुसाया, "मुझमें फिर से जान आ रही है।" सुदूर के पर्वत की चोटी में आधा चाँद दिखाई पड़ा। "पार्थ, शिखर पर चाँद उग रहा है। यहाँ-वहाँ तारे भी दिखाई दे रहे हैं। हिम की बारिश कम हो गई है न? पार्थ, शीघ्र ठहरने की जगह ढूँढ़ो, अपने छोटे-बड़े भाइयों को बचा लो। देखो, फिर से शंख की आवाज सुनाई पड़ रही है। कुछ ठहर जाइए, शायद इसकी सूचना होगी। वे भी आए और घोड़ा भी कुछ सुस्ताए। ठहरो पार्थ!"

"देखो पांचाली, गुहाद्वार जो महाशिला-फलकों से बना है, वहाँ दिखाई दे रहा है। वहाँ हम रात को ठहर सकते हैं।"

पार्थ घोड़े से उतर गया और पांचाली को घोड़े से नीचे उतरवाया। घोड़े के साथ वे दोनों उस शिला-गुहा में प्रवेश कर गए।

"हिमालय में ऐसे ही गुहाओं में तपस्वी लोग बसते हैं, ऐसा कहा जाता है। यह गुहा भी किसी तपस्वी का वासस्थल होगी। देखो···यहाँ लकड़ी जलाकर ठंड को कम किया गया होगा, इसकी निशानी यहाँ दिखाई दे रही है।"

महायान-५

अंगारे अभी बुझे नहीं हैं, लगता है कि ठंड से बचने के लिए वह भी राख का श्वेत कंबल ओढ़कर ऊँघ रहा है। पार्थ ने फूँककर आग को प्रज्वलित किया। कुछ सूखी लकड़ियाँ गुहा के कोने में पड़ी थीं। ओह, यह किसी तपस्वी का वासस्थल ही है, पार्थ ने सोचा। जो पीछे आ रहे थे, वे पहचान सकें, यह सोचकर उसने गुहा के द्वार पर आग जलाई। पार्थ और पांचाली गुहा के अंदर आग के सामने बैठकर ठंड दूर करने लगे। कुछ देर बाद बाकी यात्रियों की बातें और पावों की आहट सुनाई पड़ी। पांचाली के चेहरे पर खुशी उभर आई। भीम, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव एक-एक करके गुहा के अंदर आए।

पार्थ ने घोड़े को पानी पिलाया। घास-कुलथी दिया। सभी ने कंदमूल खाकर पेट की भूख शांत कर ली। पेट भर जाने के बाद स्वाद की ओर ध्यान जाता है न? द्रौपदी ने कहा, "आप सभी को कंदमूल पकाकर देती हूँ। कुछ समय दें।" कंदों को आग में पकाते वक्त उससे जो स्वाद निकला, गुहा भर में छा गया। तभी गुहा के द्वार पर लंबा कदवाला एक तपस्वी दिखाई पड़ा। लग रहा था कि वह कई सालों से हिमालय में रह रहा है। बारह महीने में एक बार पर्वत के नीचे जो-जो गाँव थे, वहाँ जाता है और कंदमूलों के साथ फिर गुहा में लौटकर आता है।

"क्या मैं आपका नाम पूछ सकता हूँ?" युधिष्ठिर ने विनयपूर्वक पूछा।

"मुझे यहाँ के लोग 'बारामासी' कहते हैं।" तपस्वी ने हँसकर कहा।

"बारामासी?"

"जो बारह महीने में एक बार दिखाई पड़ता है, वह बारामासी है।"

पार्थ ने सोचा, यह आवाज मैंने कहीं सुनी है। कूदती ज्वाला की आँख-मिचौनी में चेहरा असपष्ट।

"आपका पूर्वाश्रम? क्या आप हस्तिनावती के रहने वाले हैं?"

"पिछला जो था, भूला हूँ। भविष्य की चिंता नहीं है। मैं इसी पल में जीने वाला हूँ।" तपस्वी ने रुक-रुककर कहा और एक कोने के अंधकार में गायब हो गया, मानो उसे बातचीत करने में दिलचस्पी नहीं थी।

सभी गुहा के समतल चट्टान पर लेट गए, गहरी नींद ने सभी यात्रियों को घेर लिया। पलंग-बिस्तर शरीर के लिए आवश्यक है; मगर नींद के लिए उसकी आवश्यकता नहीं है। सुबह किसी ने सुप्रभात नहीं गाया, फिर भी सभी यात्री जाग गए। तपस्वी न जाने कब उठा था, उसने सभी यात्रियों के लिए माँड़ तैयार किया था।

गुहा के मुँह में रोशनी पड़ रही थी। सुबह की धूप रेंगती हुई अंदर प्रवेश किया था। तपस्वी ने पुकारा, "सभी बाहर आइए और प्रभात सूर्य का दर्शन करें।" पूर्व में गगनचुंबी महापर्वत का शिखर था। उसकी चोटी सोने के मुकुट सी चमक रही थी। सुदूर में कोई विलक्षण पक्षी कूक रहा था। पर्वतों ने जिस बर्फीले घूँघट को ओढ़ रखा था, धीरे-धीरे सरक रहा था। तपस्वी ने जिस पर्वत-शिखर को दिखाया था, सभी ध्यान से देख रहे थे। रात में जो आधा-चाँद दिखाई पड़ा था, उसी शिखर पर हैं न? सुवर्ण रंग अब शिखर से फिसलते हुए सारे पर्वत को ही सुवर्ण रंग में बदल रहा था। यही है न शंकर दर्शन? यहीं के लिए वे सब निकले थे न? अपने ध्यान में यह बात आए बिना ही यात्री अपने लक्ष्य तक पहुँच गए?

अब पर्वत-शिखर नीला रंग लेने लगा। जो हिम छाया था, पिघलने लगा और सोने का पर्वत नीले रंग में परिवर्तित होने लगा था। तपस्वी घोड़े की पीठ को सहलाते हुए सूर्योदय के महादर्शन में खो गया।

महायान-६

देखते-देखते ही पूरा पर्वत नीले रंग के महालिंग के रूप में शोभित हुआ। यात्री जहाँ खड़े थे, तपस्वी ने वहीं जाकर उन्हें गरम माँड़ दिया।

"क्या यही अमृत है?" युधिष्ठिर ने अर्जुन से पूछा।

तपस्वी ने कहा, "आप कुछ आराम करके लौट सकते हैं।"

"नहीं, हम सब सशरीर स्वर्ग-यान के लिए निकले हैं।"

"आगे का मार्ग कठिन है। सजीव रूप में कोई भी आगे चढ़ नहीं सकता है। वह ऐसा महा मैदान है, जहाँ आकार मिट जाते हैं। आप वह साहस न करें। अपने शरीर सहित अपने गाँव लौट जाइए।" उस तपस्वी ने टेढ़े की हँसी हँस दी।

उस हँसी से तुरंत पार्थ के मन में अचानक बिजली कौंधी।

"आप··आप अश्वत्थामा हैं न?"

सा/अ

'नवनीता'
दूसरा क्रॉस, अन्नाजी राव लेआउट,
प्रथम चरण, विनोबानगर,
शिमोगा-५७७२०४ (कर्नाटक)
दूरभाष : ०९६११८७३३१०

लघुकथा

बेटियाँ

● मोहम्मद तारिक असलम

यों तो दोनों पड़ोसी शांत चित्त दिख रहे थे, किंतु उनके हृदय में तूफान-सा उठ रहा था।

उनकी नजरों के सामने लंबी-चौड़ी सड़क और उसके दोनों किनारों पर बसी दुकानें सजी थीं। जो भीड़ भरी थी और सड़कों से स्कूल, कॉलेज और कोचिंग क्लासेज के लिए आती-जाती युवतियाँ दिख रही थीं।

यह देखकर सक्सेना साहब ने मौन भंग करते हुए कहा, "मेरी समझ में नहीं आता है कि दरो-दीवार से लेकर सड़कों और बाजारों तक में होर्डिंग्स लगवाने का क्या अर्थ निकलता है?"

"कैसे होर्डिंग्स भाई? मैं तो कुछ समझा नहीं।" दिपेन बाबू अचकचाकर पूछ बैठे।

"यही 'बेटी पढ़ाओ-बेटी बचाओ'। बेटियाँ तो पढ़ रही हैं, किंतु उन हैवानों की हैवानियत से बेटियों को किस तरह बचाएँ, जबकि शासन, प्रशासन, पुलिस और न्यायालय तक पर वे हावी हो गए हैं। मानवता किताब के पन्नों में सिमटकर रह गई है। सफेदपोश राजनीतिज्ञ इन दरिंदों के पोषक-पालक बने हुए हैं··कौन सा ऐसा मामला है, जिसमें इनकी सहभागिता नहीं होती। इनके अपने चहेते शामिल नहीं होते। क्या हम एक बार फिर मुगलकाल के समान अपनी बहू, बेटियों और बीवियों को लोहे के परदे के पीछे कैद कर दें? जैसी कि सैकड़ों वर्ष पहले परंपरा थी, जब मनुष्य की पशुता से रक्षा के लिए सती होती या जौहर कर लिया करती थीं।"

"मगर सक्सेना साहब, उन लोगों से अधिक कसूरवार तो हम लोग हैं, जो जानवरों को इनसान समझकर चुनावों में जीतने का अवसर देते हैं। उसी का दंड भोगने को विवश हैं हम लोग।"

सा/अ

हारून नगर कॉलोनी, प्लाट-६,
सेक्टर-२, रोड नं.-३, फुलवारी शरीफ,
पटना-८०१५०५ (बिहार)
दूरभाष : ६२०२७४३६५५

नरक से वापसी

• प्रिया राणा

उसे नशे की लत लग चुकी थी। कमाल की बात तो यह है कि यह लत उसकी नौकरी बचाए रखने के लिए जरूरी थी। पाँच साल फूड इंडस्ट्री में काम करने के दौरान एक सड़क एक्सीडेंट के चलते वह लगभग एक वर्ष तक घर में पड़े अपने शरीर के टूटे-फूटे अंजर-पंजरों के ठीक होने की प्रतीक्षा में था। जिस कंपनी में वह काम करता था, इस एक साल में वहाँ अब तक दो नए मैनेजर बदले जा चुके थे। नए मैनेजर से उसकी बात बन नहीं पा रही थी। पहले ही कंपनी में कर्मचारियों की संख्या ज्यादा थी। उसकी जगह पर कोई नया फूड क्वालिटी कंट्रोल मैनेजर उसके एक्सीडेंट के तुरंत बाद भरती किया जा चुका था।

रमेश पहले ही अपने जीवन में आए इस अवरोध के कारण मानसिक रूप से परेशान रहने लगा था। ऐसे में बूचड़खाने में पशु-गुणवत्ता की जाँच करने वाले प्रबंधक की नौकरी के अवसर को गँवाना उसने उचित नहीं समझा।

नौकरी मिलने के अगले ही दिन वहाँ काम करने वाले कर्मचारी लखन और रामसिंह ने उसे पूरे बूचड़खाने का मुआयना कराया।

एक बात जो उसने वहाँ देखी थी, वह थी कि वह हमेशा कसाइयों का मतलब मुसलमान से लेता था, लेकिन वह देख पा रहा था कि इस बूचड़खाने में हिंदू और मुसलमान, दोनों ही लगभग बराबर संख्या में थे। लखन और बब्बन हिंदू कसाई थे, बाकी अन्य मुसलमान कसाई थे। ये सभी लोग सुबह-शाम की शिफ्ट के अनुसार अपना-अपना कार्य करते थे।

चूँकि यह नौकरी उसे एक वर्ष के लंबे अंतराल के पश्चात् मिली थी, इसी कारण उसे आँखों देखा नरक भी नरक प्रतीत नहीं हो रहा था। इस बूचड़खाने में रोज लगभग दो सौ की संख्या में पशु काटे जाते थे। रमेश को 'फिट फॉर स्लॉटर सर्टिफिकेट' के हिसाब से पशुओं के चुनाव का कार्य मिला था। जिस पशु के पास उसकी मृत्यु का यह सर्टिफिकेट होता था, उसे ही इस बूचड़खाने में निर्मम मृत्यु के बाद संसार से भी मुक्ति प्राप्त हो जाती थी। बाकी के बचे पशु बेचारे अपनी कम उम्र के कारण मनुष्य के स्वार्थ की बलि चढ़ जाते थे, क्योंकि वे अभी भी दुधारू थे। उनकी उम्र चौदह वर्ष से अधिक नहीं हुई थी और वे अभी भी अपने दुग्ध से मनुष्य का पापी पेट भर सकते थे। वे बेचारे मनुष्य का साथी बन उसका बोझ उठा लेने की पूरी क्षमता लिए समर्थ थे। साथ ही भविष्य में मनुष्य को किसी हाल में भी उनकी कमी न पड़ जाए, इसीलिए अभी भी वे इस पूरी सृष्टि के रचनाचक्र के तहत प्रजनन कर सकते थे।

कमाल के होते हैं ये चार टाँगों वाले जीव। जीवित रहते हुए भी मनुष्य के काम आते हैं और जब काम के नहीं रह जाते तो मरने के उपरांत इसी मनुष्य के पापी पेट को भरने के काम आते हैं।

सुपरिचित रचनाकार। 'नया धर्मग्रंथ' (आलोचना), 'अपराजिता' (कविता-संग्रह), 'सुभद्राकुमारी चौहान की चुनिंदा कविताएँ', 'प्रेमचंद की स्त्री केंद्रित कहानियाँ (चयन व संपादन)। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं व साझा संकलनों में रचनाएँ व शोध-आलेख प्रकाशित। संप्रति अतिथि प्राध्यापक (हिंदी), मंगलुरु विश्वविद्यालय, कर्नाटक।

उस दिन रामसिंह से बातों-ही-बातों में कसाई अब्दुल मलिक ने इन पशुओं को मारने के पीछे का कारण बताया था—

"अरे चचा, अगर कुदरत ने हमें इन्हें मारने का हुकुम न दिया होता तो सोचो···! यही हमें खा रहे होते, और तो और, इतने तो रोज मरते हैं, फिर भी इतने ही आ जाते हैं।"

इसी क्रम में मछली, मुरगी और बकरों का जिक्र भी कसाई अब्दुल कर रहा था।

लेकिन इन सबके बीच भी एक बात जो सोचने पर विवश करती थी कि रोज इतने पशुओं को मारने वाले, यहाँ काम करने वाले ज्यादातर लोग मांस खाने से परहेज करते थे। कारण, हलवाई अपनी मिठाई स्वयं कम खाता है। मिठाई की मिठास उसके नथुनों से चढ़कर उसके दिमाग में यों रच-बस जाती है, जिससे कि उसकी स्वयं मिठाई खाने की कोई इच्छा ही शेष नहीं रहती।

खून से सने हाथ, कपड़े···अपना ही शरीर दुर्गंध मारने लगता है। बूचड़खानों में कहाँ खून नहीं है···! फर्श पर फैला, नालियों में बहता, रक्तरंजित दीवारें···मानो आँखें लाल देखने की आदी हो जाती हैं। नाक के नथुनों में भर जाती थी वह गंध, जिसे कोई भी सूँघना नहीं चाहता था, किंतु अब यहाँ काम करने वालों की नाक कोई और खुशबू नहीं पहचान पाती। कानों में असंख्य चीखें अपनी जगह बना लेती हैं। चारों ओर नकारात्मकता! धरती पर अगर कहीं नरक है तो यही है, यही है।

शुरू-शुरू में इन बूचड़खानों के दृश्यों को स्वाभाविकता के चश्मे में फिट करने वाले यहाँ के लोग कब और कैसे अवसाद की बलि चढ़ जाते हैं, उन्हें पता ही नहीं चलता। नशा करना तो जैसे यहाँ काम करने वाले हरेक के जीवन की अनिवार्य शर्त होती है।

एक समय में शराब की दुकान के आसपास भी खड़े होने या दिखने

में घर-परिवार, समाज में जो शर्मिंदगी का भाव उत्पन्न हुआ करता था, वह रमेश के अंदर वहाँ काम करने के छह माह के भीतर ही समाप्त हो गया था। अब तो हालत यह थी कि उसके घर-परिवार, यहाँ तक कि आस-पड़ोस की भी मौन स्वीकृति थी। बूचड़खाने के लोग एक समय बाद सामान्य से अधिक नर पिशाच सी जिंदगी जीने लगते हैं, क्योंकि बिना नशे की हालत में न तो पशुओं को कत्ल किया जा सकता है और न ही मरे हुओं को देखा ही जा सकता है। रमेश भी इस जीवन में प्रवेश कर चुका था, लेकिन उसकी जिम्मेदारी बड़ी थी। 'फिट फॉर स्लॉटर सर्टिफिकेट' का काम नशे की हालत में किया जाना संभव नहीं था। रामसिंह का भी यही हाल था, क्योंकि उसका जिम्मा उस पूरे बूचड़खाने की देखभाल का था। पूरे दिन में तय संख्या यानी दो सौ···पशुओं की मृत्यु का हिसाब वही रखता था। बूचड़खाने का वह कमरा, जहाँ पशुओं के कटे सर रखे जाते थे, रमेश के कमरे की सीध में ही था। रमेश द्वारा इस बूचड़खाने में प्रवेश के समय तथा निकासी के दौरान जानवरों के कटे सरों में लगी सैकड़ों आँखों से दो-चार होना रोज की बात थी।

कभी-कभी तो उसे लगता था कि जानवरों के कटे सरों में लगी सैकड़ों आँखें आते-जाते उसे घूरती हैं। ऐसा लगता था, मानो उसे कह रही हों कि तुम चाहते तो हमारा मरना रुकवा सकते थे। रोज-रोज इन मृत आँखों की मृत याचनाएँ उसके जीवित मन-मस्तिष्क को जकड़े रहती थीं। आखिर रमेश ने उन मृत पड़े चेहरों को अनदेखा करना शुरू कर दिया था, लेकिन उसका अवचेतन मन उसके अनदेखे को भीतर-ही-भीतर इकट्ठा करने लगा था।

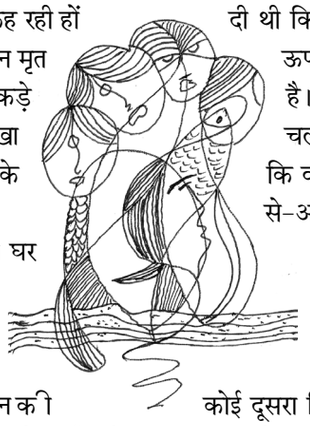

उसे शराब की तगड़ी लत लग गई थी। नौकरी से घर लौटते समय वह ठेके से पहले व्हिस्की का एक क्वार्टर लेकर ही लौटा करता था। समय के साथ-साथ क्वार्टर से हाफ तथा हाफ से फुल बोतल तक पहुँचने की उसकी गति सामान्य से भी तेज थी, क्योंकि उसके अवचेतन मन की सामग्री उसके सपनों में उस पर तीव्र प्रहार करती थी। चारों ओर आँसुओं से भरी आँखें एकदम से लाल खून से भर जाती थीं और जानवरों की चीखों का स्वर इतना तेज होता था कि वह मनुष्य की भाषा भूलने लगा था। शुरू-शुरू में सपनों से वह भाग आने का प्रयास करता था, लेकिन बाद में वह स्वयं को निरीह रूप में देखने लगा था, बिल्कुल निरीह··· जैसे कि वे सभी पशु अपने मरने से पहले उसकी ओर देख रहे थे। शराब कभी-कभी उसे इस स्वप्नजाल से बचा लेती थी।

एक दिन बेचारे किसानों के दुग्ध देने वाले पशु और कभी-कभी पशुओं को रखने का स्थान न जुटा पाने के लिए खाने-पीने के लिए खेत-खलिहानों में छोड़े गए पशुओं को चुराने वाले पशु माफिया गफ्फार को रमेश ने बिना किसी कारण इतना लताड़ दिया कि बात रमेश की जान तक पर बन आई थी। गफ्फार ने अपने गिरोह के आदमियों से रमेश को मार डालने की धमकी तक दे डाली थी। दरअसल गफ्फार किसी किसान की अच्छी-खासी गाय को चुराकर बूचड़खाने को बेचने का प्रयास कर रहा था। वह कह रहा था कि चाहे कीमत कम ही क्यों न हो, लेकिन इसे बूचड़खाने के लिए ले डालो। रमेश इस बात के लिए तैयार न था। हालाँकि ऐसा नहीं था कि पहले ऐसा कभी हुआ नहीं था। पहले भी न जाने कितने ही पशु माफिया और गफ्फार जैसे लोग पशुओं की पूर्ति करने में सहयोग करते रहे थे, लेकिन उस दिन रमेश किसी भी हाल में न माना, क्योंकि इस बूचड़खाने में उसके समक्ष ऐसा पहली बार हुआ था। उसने गफ्फार द्वारा लाई गई गाय को सर्टिफिकेट देने से मना कर दिया और वापस ले जाने को कहा। धीरे-धीरे बात इतनी बढ़ी कि बढ़ती ही चली गई। रामसिंह के दखल से बात सुलझी। वह पहले से गफ्फार को जानता था। रमेश के सामने तो वह उसी का समर्थन करता रहा था, लेकिन बाद में गफ्फार को समझाया कि यह साहब नया है! पुराने ढर्रे को सीखने में अभी समय लगेगा। गफ्फार मुश्किल से समझा और किसी तरह मामला रफा-दफा हुआ।

लेकिन बूचड़खाने के इस परिदृश्य में मात्र आठ माह में रमेश ऐसी स्थिति में पहुँच चुका था, जहाँ उसे यह भी समझ आना बंद हो चुका था कि अब करना क्या है? नौकरी में रहना है या यह नौकरी छोड़ देनी है?

उसके परिवार में माँ-बाप, पत्नी और एक बच्चा था। वह अकेला कमाऊ था। एक्सीडेंट होने के बाद उसके एक पैर में थोड़ी कमी आ गई थी, जिसके चलते उसे पहले की कंपनी वालों ने यह कहकर नौकरी नहीं दी थी कि एक तो पहले से ही कर्मचारियों की संख्या अधिक है, ऊपर से उसकी जगह कोई और नौकरी पर रख लिया गया है। जबकि सच्चाई यह थी कि उसके पैर में आई कमी के चलते कंपनी वाले उससे अधिक काम नहीं ले पाते। जैसा कि वर्तमान में सभी प्राइवेट नौकरियों की सच्चाई है—अधिक-से-अधिक काम और तनख्वाह में अधिक-से-अधिक कटौती!

इधर आजकल उसकी पत्नी पिछले चार-पाँच महीनों से उसके अंदर आए बदलाव को निरंतर महसूस कर रही थी। उसने रमेश को इस नौकरी को छोड़ देने के लिए कितनी ही बार कहा था, लेकिन रमेश के पास फिलहाल कोई दूसरा विकल्प मौजूद नहीं था। उसका व्यवहार परिवार के प्रति भी बदलने लगा था। अब या तो वह शराब पीकर चिल्लाता था या फिर एकदम चुप रहने लगा था।

इन सबके बीच एक दिन एक और घटना बूचड़खाने में घटी। उस दिन वह अपना काम खत्म कर अपनी सीट पर आँखें बंद किए सो रहा था। अचानक जानवरों के शोर से अलग किसी आदमी के चीखने-चिल्लाने का शोर उसके कानों में पड़ा। पहले तो उसे लगा कि वह स्वयं उसका ही स्वर है और वह किसी सपने में कैद है, लेकिन थोड़ी देर में अचानक ही हड़बड़ाकर उठा और उस शोर का पीछा करने लगा।

उसने देखा, लखन कसाई बहुत तेज आवाज में रो रहा था। बब्बन, रामसिंह और अन्य लोग उसको पकड़कर शांत करने की कोशिश कर रहे थे। रमेश ने यह भी देखा कि लखन के जैसे भाव ही लगभग वहाँ खड़े सभी लोगों के चेहरों पर थे। अंतर केवल इतना था कि वे लखन की भाँति बेसुध नहीं थे, बल्कि संयम के संतुलन में प्रयासरत थे।

यह···यह···क्या हुआ···! मैंने···किया···कैसे?

लखन बार-बार टूटे-फूटे वाक्यों में यह सबकुछ कहने का प्रयास कर रहा था।

कितने ही मृत पशु रमेश के आसपास खुले हुए से पड़े थे। अचानक ही उसने कुछ ऐसा देखा कि उसका दिमाग एकदम से सन्ना गया। एक भैंस के फटे पेट से निकला उसका भ्रूण रूपी बछड़ा अपने पूरा बनने की प्रक्रिया में फेल हुआ, बराबर में गिरा पड़ा था। भैंस का पेट चीरते वक्त अचानक ही वह लखन के सामने आ गिरा था और तभी से लखन अपने होश-हवास गँवा बैठा था। स्थिति को समझते हुए निसहाय सा रमेश वहाँ से चला गया था। उसे लगा, वह एक बार फिर अनदेखा कर पाने में सफल हो गया है, लेकिन उसके अवचेतन मन ने उस दृश्य को एक चिट्ठी की भाँति तय कर अपनी तिजोरी में बंद करके रख लिया था। जहाँ पहले भी न जाने ऐसे कितने ही अनगिनत दृश्यों की भरमार थी, जो रात को रमेश के सपनों में अपना रूप बदल-बदलकर आने की कतार में लगे रहते थे।

अगले दिन एक पशु पर बेहोशी का इंजेक्शन लगाने के बाद भी जब असर न हुआ तो उसने उसको मारने जा रहे अब्दुल को अच्छी खासी चोटें पहुँचाई थीं। यह भी बूचड़खानों में अकसर देखने को मिल ही जाता है, जहाँ जानवर मरने से पहले पूरी तरह बेहोश नहीं हो पाते और स्वयं को बचाने के प्रयास में सामने वाले पर हमला कर देते हैं।

खैर, रमेश ने रामसिंह को थोड़े पैसे दिए, जिससे कि अब्दुल को इलाज के बाद उसके घर छोड़कर आया जा सके। इसके बाद रमेश फिर अपने काम में लग गया था। पूरे दिन उसकी सारी ऊर्जा उसको मिले काम से अधिक उस बूचड़खाने की गंध, जानवरों के रोते-बिलखते स्वरों और केवल लाल··· लाल और लाल को अनदेखा करने में ही जाती। इन सबका आदी हो जाने के लिए वह सदैव प्रयासरत रहता था। अब धीरे-धीरे वह अपने मन को मनाने लगा था कि वह इन सबका आदी हो चुका है।

रमेश उसकी मौत वाले दिन उसके घर न जा सका था, पैर उस ओर पड़ते ही न थे। एक महीने बाद हिम्मत करके वह उसके परिवार वालों से मिलने गया था। उसकी माँ के आँसू अभी भी निरंतर बह रहे थे। माँ का कहना था कि लखन के पिता भी पहले इसी बूचड़खाने में कसाई का काम करते थे। पिता की मृत्यु के बाद न चाहते हुए भी लखन इस काम को करने के लिए तैयार हुआ था।

लेकिन उस दिन उस खबर ने उसके पैरों के नीचे से जमीन खींच ली थी। उसको लगा, मानो उसने स्वयं की मौत हो जाने की खबर सुनी हो। रामसिंह का तड़के छह बजे उसके पास फोन आया था। लखन ने सालों के अवसाद के चलते आत्महत्या कर ली थी। यह सुनते ही रमेश की आँखों के सामने विगत दिनों की वह तस्वीर घूम गई, जहाँ वह लखन को मुँह पर कपड़ा बाँधे सर नीचे किए हुए जानवरों को काटते हुए देखा करता था और आखिरी बार का उसका वह रोता-बिलखता चेहरा एक बार फिर से सामने आ गया था।

थोड़ा समय बीत जाने के बाद रमेश को यह लगने लगा कि लखन की मौत उसे बचाने का मार्ग सुझा रही है।

ऐसा लगा, जैसे कि वह कह रहा हो कि "तुम लौट जाओ··· वापस···यहाँ रहना है तो तुम्हें लखन बनना होगा···अगर तुम लखन बनना चाहते हो तो ठहर जाओ···वरना लौट जाओ!"

रामसिंह ने बताया था कि उसने फाँसी लगाकर खुद को खत्म किया था। उसकी फाँसी वाले दिन से ही रमेश लखन के लगाए हुए फंदे में अपने सर को अपनी नग्न आँखों से देखने लगा था। उसे ऐसा भी लगता था, जैसे कि लखन हर पल उसे बचाने का प्रयास कर रहा हो।

रमेश उसकी मौत वाले दिन उसके घर न जा सका था, पैर उस ओर पड़ते ही न थे। एक महीने बाद हिम्मत करके वह उसके परिवार वालों से मिलने गया था। उसकी माँ के आँसू अभी भी निरंतर बह रहे थे। माँ का कहना था कि लखन के पिता भी पहले इसी बूचड़खाने में कसाई का काम करते थे। पिता की मृत्यु के बाद न चाहते हुए भी लखन इस काम को करने के लिए तैयार हुआ था। पिता से मिलने कई बार वह बूचड़खाने जाया करता था। उसे उस जगह की आदत थी, लेकिन वहाँ काम शुरू करने के बाद वह अवसाद में रहने लगा था। कमरे को बंद करके रोता रहता था। पूछने पर कहता था—"पिता याद आते हैं, उन्होंने कितना किया था हमारे लिए।"

कभी-कभी मुझसे पूछा भी करता था—"माँ, तुम्हें पिता में से खून की गंध नहीं आती थी?"

मैं कहती थी—"गंध तो आती है, लेकिन मेहनत की!"

आज सोचती हूँ तो ऐसा लगता है काश! बेटे से ऐसी ही मेहनत की अपेक्षा न की होती तो कितना अच्छा होता, कसाई का बेटा कसाई ही हो, ऐसा जरूरी तो नहीं।"

और इतना कहकर वह फिर से रोने लगी थी। रमेश ने सांत्वना भरा हाथ उनके कंधे पर रखा और वहाँ से उठकर चल दिया।

घर पहुँचते ही उसने पत्नी से एक गिलास पानी लाने को कहा और साथ ही उससे बोला, "अच्छा, जरा सुनो! वह अखबार तो दिखाना, जिसमें तुमने होटल पैराडाइज में नौकरी के इश्तिहार के बारे में कल कुछ बताया था!"

पत्नी ने उसे अनपेक्षित भाव से देखा और फिर अखबार ढूँढ़ने चली गई। इतने में उसने अपनी जेब से फोन निकाला तथा अपने साइकोलॉजिस्ट मित्र उज्ज्वल को फोन लगाया।

"हैलो"···

"हैलो···उज्ज्वल!"

"कैसे हो डॉक्टर साहब?"

"हाँ, मैं ठीक हूँ!" डॉ. उज्ज्वल ने जवाब दिया और बोला, "आज बड़े दिनों बाद मुझे याद किया, कहो! ठीक तो हो?"

रमेश बोल पड़ा था—"नहीं, मुझे तुम्हारी जरूरत है।"

लगभग एक वर्ष बाद रमेश सही रास्ते की ओर बढ़ चला था।

९०१/ई, राणा प्रताप गली नंबर-२,
निकट छज्जू गेट, बाबरपुर,
शाहदरा, दिल्ली-११००३२
दूरभाष : ९५२६४१४०८७

कला, संस्कृति और सिनेमा

• विजय कुमार मिश्र

किसी भी देश में कला का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। यह उस देश के साझा दृष्टिकोण, मूल्य, परंपरा एवं लक्ष्य को प्रकट करती है। देश की समस्त आर्थिक, सामाजिक एवं अन्य गतिविधियों में सांस्कृतिक रचनात्मकता का समावेश होता है। मानव सभ्यता का विकास संस्कृति के विकास से अनुस्यूत है। सभ्यतागत विकास के साथ ही संस्कृति का स्वरूप भी निर्धारित होता चला जाता है। विविध कलारूपों के माध्यम से मनुष्य अपनी रचनात्मकता को अभिव्यक्त करता है। मनुष्य का कला से संबंध आदि काल से ही रहा है। काव्यशास्त्र में चौंसठ कलाएँ मानी गई हैं। इन चौंसठ कलाओं में भी स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत तथा रंगमंच को विशेष स्थान प्राप्त है। भरतमुनि नाट्य के लिए दृश्यकाव्य शब्द का प्रयोग करते हैं। सिनेमा दरअसल दृश्यकाव्य का ही विकास है। आधुनिक काल में विविध कलारूपों के संगम से निर्मित सिनेमा कला सर्वाधिक प्रभावशाली एवं आकर्षक कला माध्यम के रूप में सामने आया है। सिनेमा भी अन्य कलाओं की तरह अपने समय की बुनियादी चिंताओं, अपेक्षाओं, जिज्ञासाओं को अपनी रचनाशीलता का हिस्सा बनाता है।

सिनेमा और दृश्य (तथा अन्य कलाओं) के बीच संबंध फिल्म के आविष्कार के बाद से तेजी से चर्चा और विमर्श का विषय बनता गया। इन संबंधों पर दार्शनिक और सैद्धांतिक चिंतन तथा कला के रूप में फिल्म के संबंध में तर्कों ने सांस्कृतिक विमर्श के नए पहलुओं को भी सामने लाने का कार्य किया। फिल्म समीक्षक सतीश बहादुर के अनुसार—

"इस किस्म की बौद्धिक कवायद पहले 'फिल्म सराहना (Film Appreciation) कही जाती थी। यह नाम चालीसवें दशक तक, बल्कि पचासवें दशक के पूर्वार्द्ध तक समीचीन माना जा सकता है। जब सिनेमा अपने आपको २०वीं सदी की एक नई कला-विधा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए संघर्ष करते हुए कला विधाओं की श्रेणी में प्रवेश के लिए प्रयासरत था। आज लगभग पूरे १०० वर्षों से फिल्म हमारे साथ है। इस दौरान निश्चित रूप से इसने अपने लिए एक शास्त्रीय कला-विधा के रूप में जगह बना ली है।"

प्रदर्शनकारी कलाएँ मूलत: मानव व्यवहार और उसकी अंत:क्रियाओं पर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, सक्रिय भागीदारी और सामाजिक प्रभावों के रूप में कार्य करती हैं। उनमें सहानुभूति पैदा करने, परस्पर संवाद को बढ़ावा देने, चिंतन को प्रेरित करने और नए रिश्तों तथा विचारों की पहचान करने की क्षमता होती है। प्रदर्शनकारी कलाएँ मानवीय मूल्यों को साझा करने, आकार देने और अभिव्यक्ति का एक प्रभावशाली और लोकतांत्रिक मंच तथा माध्यम भी प्रदान करती हैं। वे हमें अपनी आंतरिक क्षमताओं का पता लगाने, हमारी कल्पनाशीलता की परख करने और एक-दूसरे से जुड़ने के लिए विभिन्न साधनों के उपयोग का तरीका बताती हैं।

जाने-माने लेखक। अब तक 5 पुस्तकें एवं देश-विदेश की अनेक शोध-पत्रिकाओं में पंद्रह शोध-पत्र प्रकाशित। विविध प्रतिष्ठित मंचों से भाषा, साहित्य, संस्कृति, सिनेमा आदि से संबंधित वक्तव्य। साहित्य संस्कृति फाउंडेशन के अध्यक्ष के रूप में भी साहित्य और संस्कृति के उन्नयन के लिए कार्यरत।

प्रदर्शन कला अभिव्यक्ति का एक रूप है, संचार का एक साधन है, जिसके माध्यम से कलाकार स्वयं से और दर्शकों से भी जुड़ता है। इन कलारूपों के माध्यम से मानवीय भावनाओं की व्यापकता को प्रस्तुत किया जा सकता है। इन कलारूपों की उत्पत्ति मुख्य रूप से धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक सुधारों को प्रदर्शित करने एवं प्रचारित करने के उद्देश्य से हुई। बाद में ये कलारूप दुनिया भर में अभिव्यक्ति और मनोरंजन का साधन बन गए। कभी-कभी ऐसा भी लगा कि ये कलारूप इतिहास के पन्नों में खो जाएँगे, किंतु श्रेष्ठ गुरुओं और शिष्यों की परंपरा ने निरंतर हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को पुनर्जीवित करते रहने का कार्य किया।

विरासत में मिली कलाएँ उस समृद्ध अतीत की, जहाँ उनकी उत्पत्ति हुई और उस वर्तमान का प्रतिनिधित्व करती हैं, जहाँ वे कुशल गुरुओं और उत्साही शिष्यों के माध्यम से जीवित हैं। प्रदर्शनकारी कलाओं की विशिष्टता इस तथ्य में निहित है कि वे प्राचीन परंपराओं से प्रेरणा लेती हैं और आधुनिक गुरुओं तथा शिष्यों के प्रयोगात्मक दृष्टिकोण को जोड़ते हैं। कला के अधिकांश रूप समुदायों, राज्यों और व्यापक अर्थों में राष्ट्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह प्रदर्शन कलाओं की विविधता में योगदान देता है और उन समूहों को पहचान, विशिष्टता और निरंतरता की भावना देता है, जिनसे वे मूल रूप से संबंधित थे। प्रदर्शनकारी कलाएँ समय के साथ संस्कृतियों और समाज के विकास और बदलाव को प्रभावित करती हैं। इन कलारूपों का उपयोग सांस्कृतिक समूहों को एक-दूसरे से अलग करने या लोगों के बीच समानताएँ या अंतर बताने के लिए किया जाता है।

प्रदर्शनकारी कलाओं के मामले में भी विविधता में एकता देखी जा सकती है। इन कलाओं में समाहित ज्ञान न केवल पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानांतरित होता है, बल्कि समुदायों के बीच साझा भी होता है। ये न

केवल व्यापक अर्थों में एक समुदाय और समाज के लोगों की मदद करती हैं, बल्कि हमें अतीत और भविष्य से जोड़ती भी हैं। कला का मनुष्य जीवन के विविध क्षेत्रों से जुड़ाव का लंबा इतिहास रहा है।

कला और मनुष्य के साथ ही अन्य अनुशासनों के बीच अंतर्संबंध अनंत है। दृश्य और प्रदर्शन कलाएँ संचार के शक्तिशाली उपकरण हैं। वे कलाकारों को समाज के किसी पहलू के संबंध में विशेष दृष्टिकोणों को संप्रेषित करने की अनुमति देते हैं, जो अकसर व्यक्तिगत अनुभव से उत्पन्न होते हैं। वे कलाकारों को अपने दर्शकों में विशेष प्रतिक्रियाएँ विकसित करने की भी अनुमति देते हैं, जो उनकी सामाजिक आलोचनाओं को दरशाती हैं। विभिन्न कलारूप भी एक-दूसरे के पूरक हैं और अधिक गहन प्रभाव के लिए इन्हें एक-दूसरे से जोड़ा जा सकता है। उदहारण के लिए, जब दृश्य कला, नाटक और संगीत को सिनेमैटोग्राफी के रूप में संयोजित किया जाता है, तो कला की सूचना देने और प्रेरित करने की शक्ति बेहद तीव्र हो जाती है।

ये कलारूप न केवल हमारी सांस्कृतिक विरासत को पुनर्जीवित करने का एक साधन हैं, बल्कि उन लोगों को शिक्षित करने और मुक्त करने के साधन के रूप में भी काम करते हैं, जो इन्हें सीखना शुरू करते हैं। जब कोई शिष्य किसी योग्य गुरु के मार्गदर्शन में कलाकार बनने की यात्रा पर निकलता है, तो वह अनुशासन, समर्पण, विनम्रता और करुणा जैसे मूल्यों के माध्यम से उस विशेष कला के लिए एक ठोस नींव रखता है और स्वयं भी निरंतर उत्कर्ष को प्राप्त करता है।

कला और मनुष्य के साथ ही अन्य अनुशासनों के बीच अंतर्संबंध अनंत है। दृश्य और प्रदर्शन कलाएँ संचार के शक्तिशाली उपकरण हैं। वे कलाकारों को समाज के किसी पहलू के संबंध में विशेष दृष्टिकोणों को संप्रेषित करने की अनुमति देते हैं, जो अकसर व्यक्तिगत अनुभव से उत्पन्न होते हैं। वे कलाकारों को अपने दर्शकों में विशेष प्रतिक्रियाएँ विकसित करने की भी अनुमति देते हैं, जो उनकी सामाजिक आलोचनाओं को दरशाती हैं।

फिल्में विशेष सभ्यताओं द्वारा बनाई गई सांस्कृतिक कलाकृतियाँ हैं। वे इन संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करती हैं और उन्हें प्रभावित करती हैं। फिल्म एक महत्त्वपूर्ण कला के साथ ही लोकप्रिय मनोरंजन का एक स्रोत भी है, साथ ही यह नागरिकों को प्रशिक्षित करने का एक शक्तिशाली माध्यम भी है। सिनेमा अतीत की यात्रा कराने वाला एक जटिल किंतु मनोरंजक माध्यम है। एक लोकप्रिय कला के रूप में सिनेमा आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिदृश्य से संबंधित अंधकार को हटाकर उसे प्रकाश में लाने का कार्य करता है। फिल्म के माध्यम से निर्मित होने वाले विमर्शों के समग्र आकलन के लिए फिल्म के अध्येताओं को कुछ हद तक इतिहासकार और कला का व्याख्याकार होना जरूरी है, जो फिल्म के संदर्भों के वस्तुनिष्ठ परीक्षण के साथ ही उसके अनुभव के बृहत्तर संदर्भों को और उसमें होने वाले बदलावों को ठीक से समझ सके।

सिनेमा न केवल संस्कृति का एक अच्छा सूचकांक है, बल्कि शायद पेंटिंग, संगीत या कविता से भी बेहतर है, क्योंकि यह स्पष्ट रूप से सांस्कृतिक जीवन का हिस्सा है। इसके साथ ही जीवन को दरशाने के लिए कलात्मक संघर्ष के जिन समाधानों तक पहुँचना संभव हो पाता है, उनको व्यापक सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है। ऐसा इसलिए, क्योंकि यह समाज के प्रभु वर्ग की समझ के बजाय, व्यापक समूह से जुड़े होते हैं। यह अपने युग से संबंधित होते हैं। सांस्कृतिक चिह्नों, प्रतीकों और उससे जुड़े दृश्यों को निर्मित करने की दृष्टि से कैमरे की क्षमता और उसका प्रभाव बहुत अधिक है। सिनेमा का वस्तुत: किसी संस्कृति की आत्म-छवि में विशेष योगदान होता है। सिनेमा का सांस्कृतिक इतिहास युगबोध के पुनर्निर्माण से संबंधित होता है। सिनेमा का यह सांस्कृतिक इतिहास हमें बताता है कि फिल्में संस्कृति की, व्यक्ति की कल्पना का निर्माण करने के साथ-साथ उसे प्रदर्शित करने का कार्य भी करती हैं। सिनेमा विविध कलारूपों का संगम है। दृश्यकला, प्रदर्शन कला और साहित्य के संयोजन वाला यह जटिल कलारूप अत्यंत ही आकर्षक है।

यह कला माध्यम एक मशीन (कैमरा) से संबंधित है। यह मूल रूप से फोटोग्राफी कला है। हालाँकि यह स्थिर नहीं, गतिशील फोटो अथवा चित्र से संबंधित कला है। इसे समावेशी शिल्प कला के रूप में भी समझा जा सकता है, जो आस्वाद में कालातीत प्रवृत्ति से युक्त है। यह निरंतर प्रगतिशील कलारूप है, जो नए-नए आयामों के साथ सामने आता रहता है। वेब सीरीज इसका नवीनतम संस्करण है। प्रसिद्ध विद्वान् और फिल्म समीक्षक किशोर वासवानी फिल्म को सातवीं कला मानते हैं—*"जो पहले की छह कलाओं अर्थात् चित्रकला, वास्तुकला, दृश्य कला, नृत्य, नाटक, संगीत और साहित्य का एक मिश्रण है।"*

उनके अनुसार फिल्मों का विश्लेषण और उसकी आलोचना कला के सभी रूपों के लिए उपयुक्त मापदंडों के आधार पर की जानी चाहिए। इसी प्रकार लेखक श्यामला गुप्ता का कथन है—*"सिनेमा कला ललित कला, शिल्प और तकनीक संवर्धित कला का एक जटिल रूप है।"*

ये दोनों ही विद्वान् इस बात पर सहमत हैं कि थिएटर की तरह सिनेमा भी संगीत और नृत्य जैसी प्रदर्शन कलाओं से आकार पाता है, जो अभिनेताओं द्वारा अभिनीत होते हैं, जिसकी पटकथा और पटकथा द्वारा चित्रित कला साहित्यिक रूप से निर्मित होता है। पेंटिंग और तस्वीरों की तरह स्क्रीन पर इसकी छवि महत्त्वपूर्ण है। सिनेमा की शैली वृत्तचित्र, समानांतर, कला, वाणिज्यिक सिनेमा आदि के रूप में अलग-अलग हो सकती है और इसकी पटकथा, कथा सिनेमा का अंग है।

भारतीय साहित्य परंपरा में सौंदर्यानुभूति के उत्कर्ष को रस से जोड़कर देखा गया है। भरत द्वारा स्थापित 'रस सिद्धांत' का १०वीं शताब्दी के विचारक अभिनवगुप्त ने विश्लेषण किया। महाकाव्य कविता और नाटक ही नहीं, यह सभी प्रदर्शन कलाओं पर लागू होता है। अभिनवगुप्त ने अपने मौलिक पाठ में रस सिद्धांत में साधारणीकरण की अवधारणा पर प्रकाश डालते हुए सौंदर्य आनंद (रस) की अवधारणा को जोड़ा।

भरत का नाट्य सिद्धांत और रस हमारी प्रदर्शनकारी कलाओं तथा दर्शकों की प्रतिक्रियाओं को आकार देने की दृष्टि से बेहद अहम है। यह लोकप्रिय हिंदी सिनेमा में भी कई तत्त्वों को आकार और स्थिति प्रदान करने के समय ध्यान में रखा जाता है। संगीत सभी रंगमंचों और नाट्य परंपरा में बड़ी भूमिका निभाता है। ये सभी प्रदर्शनकारी कलाएँ हमारी सांस्कृतिक निर्मितियों में बड़ी भूमिका निभाती हैं। दूसरी कलाओं की भाँति ही सिनेमा की भी सांस्कृतिक निर्मिति में प्रभावी भूमिका है। सिनेमा भी संस्कृति का ही हिस्सा है, जो यथार्थ की पुन: प्रस्तुति का कार्य करता है। यह संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण घटक है, जिसे उससे अलग करके नहीं देखा जा सकता है। इसे समाज के विविध पहलुओं, यथा दार्शनिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, नैतिक, सामाजिक आदि से जोड़कर देखा जाता है।

महाकाव्य, नाटक और उपन्यास आदि समकालीन समाज की संस्कृति को प्रतिबिंबित करते हैं। वे एक आदर्श समाज का मॉडल भी प्रदान करते हैं और संस्कृति के अधिक परिष्कृत मानदंड स्थापित करते हैं। रंगमंच और फिल्म जैसे दृश्य माध्यम बड़ी संख्या में दर्शकों को आकर्षित और प्रभावित करते हैं। सिनेमा अत्यंत लोकप्रिय जन माध्यम है, जो लोगों के मत निर्धारण, छवियों की निर्मिति और प्रमुख सांस्कृतिक मूल्यों को मजबूत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सिनेमा ने दुनिया भर में रंगमंच को बेहद प्रभावित किया। हिंदी में जयशंकर प्रसाद जिस समय अपने ऐतिहासिक नाटक लिख रहे थे, पश्चिम में सिनेमा अपने विकास के कई आरंभिक पड़ावों को पार कर चुका था। पश्चिम में प्रसिद्ध कृतियों का सिने-रूपांतरण शुरू हो चुका था। सिनेमा ने विकासमान हिंदी रंगमंच को बेहद प्रभावित किया।

जयशंकर प्रसाद भी अत्यंत पीड़ा के साथ सिनेमा के आगमन से प्रभावित रंगमंच की चर्चा करते हैं—*"हिंदी का कोई अपना रंगमंच नहीं है। जब उसके पनपने का अवसर था, तभी सस्ती भावुकता लेकर वर्तमान सिनेमा में बोलने वाले चित्रपटों का अभ्युदय हो गया, फलत: अभिनयों का रंगमंच नहीं-सा हो गया``साहित्यिक सुरुचि पर सिनेमा ने ऐसा धावा बोल दिया है कि कुरुचि को नेतृत्व करने का संपूर्ण अवसर मिल गया है।"*

"सिनेमा के आने से रंगमंच चाहे जितना प्रभावित हुआ हो, सिनेमा का विकास उन्हीं स्थानों पर हुआ, जहाँ रंगमंच सुदृढ़ स्थिति में था। यथा भारतवर्ष में महाराष्ट्र तथा बंगाल में सिनेमा का सर्वाधिक विकास हुआ। जबकि हिंदीभाषी क्षेत्रों में आज सौ साल पूरे होने के बावजूद फिल्म निर्माण की सुनियोजित नींव भी नहीं डाली गई। हिंदी सिनेमा के वस्तु-विकास में पारसी थिएटर, पृथ्वी थिएटर और भाँड़, जात्रा, लावनी, नौटंकी आदि पारंपरिक नाट्य-रूपों का विशेष योगदान रहा है। हैरानी की बात यह भी है कि महाराष्ट्र और बंगाल में रंगमंच आज भी अबाध गति से विकासमान है।"

सिनेमा ने पूर्ववर्ती सभी ललित कलाओं, उपयोगी कलाओं तथा कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास आदि साहित्यिक विधाओं को अपने भीतर समाहित कर विज्ञान और व्यवसाय के समुचित संतुलन से अपना स्वरूप निर्मित किया। आरंभ में ऐसा लगा कि पूर्ववर्ती बहुत सी अभिव्यक्ति शैलियाँ स्थगित हो जाएँगी। किंतु कोई भी कला-विद्या किसी नई कला-विधा के आने से समाप्त नहीं हो जाती, बल्कि नवीन रूप धारण करती है। सिनेमा अन्य कला विधाओं के प्रचार-प्रसार का भी माध्यम बना। एक उपन्यास, कहानी या नाटक आदि को वह ज्यादा लोगों तक पहुँचाने में सक्षम साबित हुआ। इंदुप्रकाश कानूनगो का कहना है—

"अन्य कलाओं से फिल्म कुछ खास तरह से भिन्न है। चित्रकला को देर तक देखा जा सकता है। उपन्यास पढ़ते-पढ़ते पीछे पलटकर फिर से पढ़ा जा सकता है। फिल्म देखते हुए न धीमा हुआ जा सकता है न तेज। उसे देखते हुए मानसिक प्रक्रिया को पूरे समय सरेख रखना ही पड़ता है। फिल्म एक प्रत्यक्ष कला-घटना है। अत: फिल्म के मूल्य परफार्मिंग कलाओं (जैसे नाटक, संगीत) की तरह ही हैं।"

अन्य कला विधाओं से फिल्म मूल्यों की तात्कालिकता के चलते भिन्न है। फिल्म में एक बिंब यदि छूटा तो पलटकर देखने की छूट नहीं। वस्तुत: प्रत्येक कला-विधा एक-दूसरे से कुछ-न-कुछ लेती है। किंतु सिनेमा ने अपनी पूर्ववर्ती सभी कलाओं के कार्य व्यापार और उनकी पहचान को समूचा ही समाहित कर लिया।

एक जन माध्यम के रूप में हिंदी सिनेमा ने अपनी अलग शैली और शिल्प को गढ़ने का कार्य किया है। इसमें गीत-संगीत जैसे लोकप्रिय तत्त्वों का विशेष समावेश है। यह भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ के साथ ही विश्वबोध और विश्वदृष्टि के साथ संचार करती है। फिल्मों के प्रभाव आदि की सम्यक् और संतुलित समीक्षा के लिए समीक्षक को इतिहास और कला का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

कहा जा सकता है कि कला मनुष्य की रचनात्मक शक्ति की अभिव्यक्ति है। हमारी जो सोच, जो मूल्य, अमूर्त अवधारणाएँ अनुभव में परिणत होती हैं, कला उसे ठोस रूप में प्रस्तुत करती है और यह विशिष्ट सौंदर्य-बोध के साथ सामने आती है। हमारी ये भावनाएँ, हमारे ये मूल्य भौतिक रूप में संस्कृति के ताने-बाने को बुनते हैं, जो एक-दूसरे के पूरक होते हैं और मानव जीवन को नए अर्थों से अलंकृत करते हैं। अपनी सघन संवेदनशीलता के कारण कलाकार जीवन की वास्तविकताओं पर दृढ़तापूर्वक प्रतिक्रिया करता है, इसलिए जीवन की घटनाएँ उसे उस विशेष माध्यम में रचनात्मक तरीके से व्यक्त करने के लिए प्रेरित करती हैं, जो वह सोचता है और महसूस करता है। अपनी दूरदर्शिता के दम पर वे एक बेहतर दुनिया की झलक देने का कार्य करते हैं और संस्कृति के नए मानदंड स्थापित करते हैं। कह सकते हैं कि पारस्परिक आदान-प्रदान कला और संस्कृति के बीच के संबंधों के रोचक कारक बनते हैं। सभी रूपंकर कलाओं से समन्वित सिनेमा आज अपनी कलात्मक क्षमता की व्यापकता और प्रभाव के कारण सांस्कृतिक निर्मिति में सर्वाधिक सक्रिय और प्रभावी भूमिका निभा रहा है।

सा.अ.

यू-८९, परिवार अपार्टमेंट, सुभाष पार्क,
उत्तम नगर, नई दिल्ली-११००५९
दूरभाष : ८९२०११६८२२

सौ पत्ते-सौ साल

मूल : **जॉन गल्सवर्थी**

अनुवाद : **बंशीधर तातेड़**

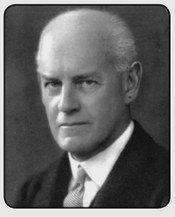

जॉन गल्सवर्थी का जन्म ७४ अगस्त, १८६७ को किंग्सटन अपॉन टेम्स, सरे (इंग्लैंड) में हुआ। अपनी पढ़ाई के साथ ही उन्होंने लेखन के क्षेत्र में प्रवेश किया। एक अंग्रेजी कवि, उपन्यासकार और नाटककार के रूप में उन्होंने प्रसिद्धि पाई। उनकी सर्वाधिक लोकप्रिय कृति 'द फोर्साइट सागा' मानी जाती है। इसके साथ ही 'ए मॉडर्न कॉमेडी' और 'ऐंड ऑफ द चैप्टर' उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। उनकी कविताएँ उनके उपन्यासों एवं नाटकों के समान लोकप्रिय हैं। उन कविताओं का भावनात्मक प्रभाव उनकी संयमित भाषा और शांत चिंतन तथा आंतरिक संघर्ष के क्षणों को पकड़ने की उनकी क्षमता से प्रतिबिंबित होता है। उनकी रचनाएँ तत्कालीन लेखकों यथा थॉमस हार्डी और एच.जी. वेल्स के साथ समानता रखती हैं। साहित्य के क्षेत्र में उन्हें वर्ष १९३२ में 'नोबेल पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। ६५ वर्ष की आयु में ३१ जनवरी, १९३३ को हैम्पस्टेड, लंदन (इंग्लैंड) में उनका स्वर्गवास हो गया।

इंग्लैंड पुरुषों को मुक्त करेगा

मेरे खून के लोग, हे अंग्रेज जनो!
धुँधली पहाड़ियों और धुँधले दलदलों से,
झोंपड़ी और नगर, और हल/खेत से
और मैदान से।
अंदर आओ—इससे पहले कि मैं
दरवाजा बंद कर दूँ।
पत्थरों से पटे मेरे आँगन में
जो नाम रखते हैं
वे हड्डियों को भी रखते हैं,
केवल उन अंग्रेजों का जो आए थे
अपने जीवन से मुक्त
मेरी प्रसिद्धि की रक्षा के लिए।

मैं तुम्हारी जन्मभूमि हूँ
जिसने तुम्हें जन्म दिया
पालन-पोषण किया
न संचालित दिल, न संचालित दिमाग,
मैं हर समुद्र में झंडा फहराता हूँ
स्वतंत्रता की, पुरानी पृथ्वी के चहुँओर।
मैं वह भूमि हूँ, जो मुकुट का दावा करती है,
सूर्य उगता है, सूर्य ढलता है
और मेरे बारे में कोई मनुष्य
कभी कुछ नहीं कह सकता,
मेरी एक नस्ल है, जो स्वतंत्र नहीं है।

मेरे पास एक फूलमाला है,
मेरा माथा उसे पहनता है
सौ पत्ते-सौ साल
मैंने ये शब्द कभी नहीं सुने/नहीं जानता था
'आपको अवश्य'
और क्या—मेरी माला फिर मिट्टी में मिल जाएगी?
स्वतंत्र आदमी!
दरवाजा अभी आधा खुला है;
उत्तरी तारे से दक्षिणी तारे तक,
हे! तुम जो गिनते हो और
तुम जो गहराई से खोजते हो,
अंदर आओ
मेरी घड़ी में बारह बजने से पहले।

डेवोन मेरे लिए

जहाँ मेरे पिता खड़े थे
समुद्र को देखना
तूफान में डूबी हेरिंग नावें
आश्रय को गले लगाते हुए;
वहाँ रहती है मेरी माँ
दलदली भूमि और पेड़
फूल को देखो-खिलने का नजारा
डेवोन मेरे लिए।

जहाँ मेरे पिता/पुरखे चले थे,
हल चलाते हुए;
पूरे दिल से सीटी बजाते थे
अब सीटी कौन बजाता है?
वहाँ मेरी माँ जलाती है
आग की लकड़ियाँ, बिना किसी रोक के,
जलाऊ लकड़ी के धुएँ की खुशबू!
डेवोन मेरे लिए!

जहाँ मेरे पिता/पुरखे बैठे थे
अपने कटोरे पास/पार करते हुए
उनके पास अब कोई साइडर नहीं है,
ईश्वर उनकी आत्मा को शांति दे!
वहीं मेरी माँ खाना खिलाती है
तीन लाल मवेशियों को।
मलाई के बरतन का स्वाद
डेवोन मेरे लिए।

जहाँ मेरे पिता सोते हैं,

मिट्टी में मिलते हुए
यह वृद्ध शरीर फैंक दूँगा
जब मरना होगा मुझे!
वहीं मेरी माँ बुलाती है
वह जाग्रत् है!
पश्चिमी-हवा की आवाज/ध्वनि
डेवोन मेरे लिए।

जहाँ मेरे पिता झूठ बोलते हैं
जब मैं चला जाता हूँ
मुझे मृत होने पर
किसे दया करने की जरूरत है
कभी नहीं/कोई नहीं!
वहाँ मेरी माँ मुझे गले लगाती है/लिपटती है
मुझे! मुझे रहने दो
लाल धरती को महसूस करो
डेवोन मेरे लिए।

अतीत

मेरे दिल में घंटियाँ बज रही हैं
मकड़ी के जाले जैसी उनकी झनकार;
मरने वाले/बीते दिनों की पुरानी बड़बड़ाहट
उनकी सिसकियों का बहना
मेरे दिल में घंटियाँ बज रही हैं।

तारे टिमटिमाए और बुझ गए
खबूसूरत मोमबत्तियाँ बुझा दी गईं!
जोश कम हो गया और
कमजोर हो गया है
वह राख की आग, जो कभी भड़क उठी थी
तारे टिमटिमाए और बुझ गए।

त्रुटि

आओ! आइए हम भाला टिकाएँ,
और एक जंगली आकाश के नीचे
पवनचक्कियों पर वार करें/झुकें
क्योंकि—कौन इतना तुच्छ और
अपवित्र जीवन जीएगा,
क्या वह मरने से पहले किसी चीज पर
वार करने की हिम्मत नहीं करेगा,
क्या वह मर जाएगा?
अपितु सुरक्षित बहुमत से जाँच की गई
अपने छोटे से जीवन को
छोटे-छोटे कार्यों/उद्देश्यों के लिए सुरक्षित रखें,
और कभी विद्रोही युद्ध पुकार न निकालें!

सुपरिचित लेखक एवं अनुवादक। अब तक 'आँख और धन को', 'सुनहरी धूप से संवाद' (हिंदी गजलें), 'कर्म का अटल सिद्धांत'; 'धोराँ खिल्या गुलाब' (राजस्थानी काव्य), 'कितनी सुहानी भोर' (हिंदी गीत)। तीन दर्जन विदेशी लेखकों की कहानियों और कविताओं का राजस्थानी में अनुवाद। 'स्टेट अवार्ड २०१५', 'पद्मश्री मगराज जैन सम्मान' एवं अन्य सम्मान।

केशव कुंज,
स्कूल नं. ४ के पास,
बाड़मेर-३४४००१ (राज.)
दूरभाष : ९४१३५२६६४०

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

असम के चाय श्रमिकों के जीवन की संघर्ष गाथा : एक सांस्कृतिक मूल्यांकन

● दीपिका दास

सांस्कृतिक दृष्टि से असम अत्यंत उन्नत राज्य है। विभिन्न भाषाई समाज एवं सांस्कृतिक विविधता और इस विविधता में एकता का सुंदर एवं सार्थक दृश्य असम में पाया जाता है। असम की संस्कृति को उन्नत बनाने में चाय श्रमिकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ये श्रमिक विभिन्न प्रलोभनों में पड़कर, अपनी मातृभूमि को छोड़कर जब असम आए, तब वे अपने साथ विरासत स्वरूप अपनी संस्कृति ही साथ लाए थे। सदैव कल्पना से वास्तविकता ज्यादा रूढ़ होती है। इसका अहसास उन्हें भी बहुत जल्द हो गया। इसी कारण इस सांस्कृतिक विरासत के अतिरिक्त यदि इनके पास कुछ था तो केवल कष्ट, दु:ख, पीड़ा। अपने स्थान से दूर शहरों की तरफ रुख किए इन श्रमिकों का जीवन एक ओर संघर्षमय होता है, वहीं दूसरी ओर अपनी मातृभूमि से बिछड़ने की पीड़ा और वेदना इनके मन को अंदर-ही-अंदर कुंठित कर रहा होता है। सामाजिक अस्तित्ववाद और राजनीतिक अर्थतंत्र के दोहरे प्रहार से व्यथित ये जन समुदाय बहुत हद तक खंडित जीवन जीने को बाध्य रहे हैं। जंगलों, झाड़ियों को साफ कर असम की उर्वर भूमि को चाय खेती के योग्य बनाने में इन चाय श्रमिकों का अद्वितीय योगदान रहा है। पहले चाहे जो भी हो, असम के चाय श्रमिकों का जनसमूह आज असम के परिवेश और संस्कृति के अनुकूल एक विचित्र सम्मिश्रित समाज के रूप में अपनी सत्ता बरकरार रखने में सक्षम है।

बीज शब्द : असम, चाय, श्रमिक, समाज, ब्रिटिश, मजदूर, संसाधन, संस्कृति आदि।

असम विशिष्ट कला और संस्कृति हेतु दुनिया भर में प्रसिद्ध है। असम उत्तम शिल्प, कलाकृतियों एवं चाय, कोयला, खनिज तेल, जीवाश्म ईंधन आदि जैसे बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण है। यहाँ का परिवेश, वातावरण, संस्कृति और प्राकृतिक छटा मानव मन को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करती है। पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध संसाधनों के कारण सन् १८२३ में ब्रिटिश अधिकारी भी असम के प्रति आकर्षित हुए। इन संसाधनों के निर्यात के बहाने धीरे-धीरे इन्होंने संपूर्ण असम पर कब्जा कर लिया। विशेष बात यह है कि ब्रिटिश अधिकारी सी.ए. ब्रूस को चाय की खोज का आधिकारिक श्रेय प्राप्त है, जबकि चाय के पौधे असम के जंगलों में पहले से मौजूद थे। इन पौधों का उपयोग स्थानीय निवासी औषधि के रूप में करते थे। किसी तरह का कोई लिखित दस्तावेज न

शोधार्थी, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय। मूलतः तिनसुकिया (असम) की निवासी। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों में आलेख प्रकाशित। राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में शोध-पत्र का वाचन। पूर्वोत्तर भाषा, साहित्य एवं संस्कृति में विशेष रुचि।

होने के कारण चाय की खोज ब्रिटिशों के नाम हो गई। इसके पश्चात् सन् १८२६ में यानडाबू संधि के तुरंत बाद ही भारत के अन्य राज्यों की तरह पूर्वोत्तर राज्य असम भी पूरी तरह ब्रिटिशों के अधीन हो गया। निश्चित रूप से असम की भाषा, साहित्य, संस्कृति, शिक्षा आदि सभी दिशाओं में कमोबेश परिवर्तन होने लगा। इनमें से कुछ परिवर्तन अत्यंत सकारात्मक सिद्ध हुए, जैसे—उन्नत यातायात व्यवस्था, शिक्षानुष्ठान, औद्योगिक और वाणिज्यिक केंद्र की स्थापना आदि। इस क्षेत्र में चाय बागानों और चाय उद्योगों की स्थापना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

चाय बागान और श्रमिक

देश-विदेश में चाय की बढ़ती माँग और इसकी आपूर्ति ने ब्रिटिश शासनाधिकारियों की चिंता का विषय बन गया। इसका कारण यह था कि असम के स्थानीय लोग ब्रिटिशों के शर्ताधीन होकर बागानों में दिन-रात मजदूरी करने के लिए तैयार न थे। अपनी मातृभूमि पर दूसरों की शर्तों पर मजदूरी करने से इन्होंने खेती करना अधिक श्रेयस्कर समझा। इसका उल्लेख तत्कालीन असमिया पत्रिकाओं में भी मिलता है—*"आमार तेने असमिया मानुह नाइ, जी आसे ही धन लई परर चाकरी करार अभ्यास नाथकर कारणते हउक बा अहंकार एलाहर बशवर्ती होवार कारणते हउक बा आपोन परियल पाली आन कम नकरिबले इच्छुक नुहोवाते हउक एतीया नकइ उलोवा काम करीब नोखोजे। अमार माटी सस्ता। प्राय लोकेई खेतियक। प्रजाइ अपोनर जी माटी आस तारे खेती करी जी अलप अभाव आसे ताके मारी थाके।" (नेउग सइकिया, असम बंधू, पृष्ठ संख्या-१३३)*

अर्थात् हमारे यहाँ ऐसा कोई असमिया व्यक्ति नहीं है, जो है उसके अंदर पैसे लेकर मजदूरी करने की आदत नहीं है या अहंकार अथवा आलस्य के वशीभूत अथवा अपने परिवार के भरण-पोषण करने के

अतिरिक्त कोई अन्य काम करने की इच्छा नहीं है। अधिकतर लोग कृषक हैं और सभी के पास अपनी भूमि है। वे अपने अभावों की पूर्ति उसी के माध्यम से कर लेते हैं। इस प्रकार बागानों के रख-रखाव व कम पारिश्रमिक में अधिक-से-अधिक मजदूरी कराने हेतु दूसरे राज्यों से मजदूरों को लाने के अलावा अंग्रेजों के पास अन्य कोई विकल्प नहीं था। इस संदर्भ में अंजन बरुआ का कथन है—*"एई कतई देखुवाय जे चाह खेतिर बाबे एटी कामिला जातिर प्रयोजन। तेउलोके जे निजेई काम करिबा एने नहय ; तेउलोके तेउलोकर तिरुता आरू संतान हकलको हेई एके पात तोला आरू बसा काम करिबले अनुमति दिब।" (बरुवा, अंजन, चाह शिल्पर भूमिका आरू असम, पृष्ठ संख्या-५५)*

अर्थात् इससे यह प्रमाणित होता है कि चाय की खेती हेतु परिश्रमी लोगों की आवश्यकता है। ऐसे लोग, जो न केवल स्वयं काम करें, बल्कि अपनी स्त्री और संतानों को भी पत्ते तोड़ने की अनुमति दें। इसका उल्लेख भी तत्कालीन पत्रिका में मिलता है—"एतीया चाहबाड़ी रेलवे प्रभृति विभागत काम करिबले विस्तर लोकर प्रयोजन। आरू एने लोकर प्रयोजन जी उन्नत रूपे कार्य करीब पारे।" (सइकिया, नेउग, असम बंधू, पृष्ठ संख्या-१३३) अर्थात् अब चाय बागान और रेलवे विभाग में कार्य करने हेतु ऐसे लोगों की आवश्यकता है, जो उन्नत रूप से कार्य कर सकें। मजदूरों के अभाव की स्थिति में कुछ बिचौलिए भारत के अलग-अलग राज्यों से मजदूरों को लाने में जुट गए। ये लोग दूसरे राज्यों में जाकर वहाँ के गरीब और निसहाय लोगों को झूठे प्रलोभन देकर तथा कभी-कभी जबरन असम आने को मजबूर करते थे। तमाम तरह की बातें सुनकर इन श्रमिकों के मन में भी असम की विचित्र और अति मनमोहक छवि निर्मित हुई, जिसे कुछ इस प्रकार लयबद्ध किया गया है—

"चल मिनी आसाम जाबो
देशे बर दु:ख ग'
आसाम जाये सुखे खाबो
आसाम सोनार देश ग'॥"
(तांती, मिंटू, झर-झर, पृष्ठ संख्या-०३)

उपर्युक्त पंक्तियाँ चाय श्रमिकों के असम आने के पूर्व की स्थिति को रेखांकित करती हैं। जब इन आदिवासी श्रमिकों के सामने असम की एक ऐसी छवि प्रस्तुत की गई; जिसे सुनकर ये स्वत: असम आने को चल पड़े। अपने मूल स्थान में व्याप्त दु:ख, तकलीफ, चिंता, वंचना आदि सभी कुसंस्कृतियों से निजात पाने के लिए इन्हें असम आना अधिक श्रेयस्कर लगा। इसीलिए ये मजदूर अपनी संगिनी से कहते हैं कि हमारे देश में बहुत दु:ख है। सुना है, असम सोने का देश है। अत: हमें वहाँ जाकर ही सुख की रोटी नसीब होगी।

आरकठिया और चाय जनागोष्ठी

असम राज्य में चाय खेती के लिए जिन श्रमिकों को लाया गया, वे मूलत: तत्कालीन बिहार, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, तेलंगाना, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों के आदिवासी थे। इन आदिवासी लोगों के परिश्रमी व्यक्तित्व और निश्छल स्वभाव का बखूबी फायदा उठाया ब्रिटिश सरकार ने। सन् १८४१ में भारत के छोटानागपुर अंचल से पहली बार असम की ओर मजदूरों का प्रव्रजन हुआ। उसके बाद अंतत: सन् १९६० में असम सरकार द्वारा श्रमिक-आव्रजन पर रोक लगा दी गई। अकसर हम यह सुनते आए हैं कि पेट की आग सबसे भयावह होती है। अपने दु:खों से निजात पाने और परिवार को दो वक्त की रोटी देने की प्रत्याशा में ये आदिवासी मजदूर अपनी मातृभूमि छोड़ अन्य राज्यों में प्रव्रजन हेतु उन्मुख हुए। सन् १८४१ से लेकर १९६० तक कई पालियों में लगातार श्रमिकों को असम की धरती पर लाया जाता रहा। इससे इन्हें रोजगार तो मिला, परंतु सबसे बड़ी विडंबना यह थी कि असम आए इन मजदूरों को स्वदेश लौटने की इजाजत न थी। असम लाकर निरक्षर श्रमिकों से कॉण्ट्रैक्ट पर छल से मंजूरी ले ली जाती थी। जिसके कारण असम के बागानों में काम करते हुए चाहे इनकी मौत ही क्यों न हो जाए; ये अपनी मातृभूमि को वापस नहीं जा सकते थे—

"सरदार बोले काम-काम
बाबू बोले धरे आन
साहाब बोले लिबो पीठेर चाम
उहे आरकठिया
फाँकि दिये आनिल आसाम॥"
(कुर्मी, नकुल, डहर, अरुण काँवर, पृष्ठ संख्या-१६१)

चाय जनागोष्ठी में प्रचलित यह गीत प्रारंभिक दौर में आए चाय मजदूरों की मन:स्थिति को स्पष्टत: उजागर करता है। असम आने के बाद चाय श्रमिक वास्तविकता से रूबरू हुए। ये सभी मजदूर अपनी आँखों में जिन सपनों को सँजोए हुए थे; उसके सामने यहाँ की वास्तविकता वीभत्स साबित हुई। इनके सारे सपने जैसे क्षण भर में निष्क्रिय हो गए। असम के बागानों में इन मजदूरों से दिन-रात श्रम कराया जाता था। *"असमलइ आहुते प्रतिटो संप्रदाय निजर लगत लइ आहिसिल कठोर परिश्रमर बाबे हातदूखन आरो पितृभूमिर संस्कृति।"* (घटवार, नारायण : संपादक, शिरीष, (समीर ताती के लेख नि:संगतार दुर्ग से) पृष्ठ संख्या-०७) अर्थात् असम आते समय सभी जाति के लोग अपने साथ लाए थे—अपनी संस्कृति और परिश्रम हेतु अपने दो हाथ। जब ये मजदूर थक-हारकर काम करने से मना करते थे; तब इन्हें धमकाया जाता था और मार-पीट भी की जाती थी। इसीलिए गीत की पंक्तियों में यह कहा गया है कि 'उहे आरकठिया' अर्थात् बिचौलिए इनकी मातृभूमि को जाकर, इनसे झूठे वायदे कर, इन्हें असम ले आए। वास्तविक परिस्थिति के समक्ष ये चाय श्रमिक अपने को बेसहारा और छला हुआ पाते हैं। असम के चाय बागान की पृष्ठभूमि और श्रमिक-जीवन की व्यथा को उजागर करती 'हीरो' फिल्म का गीत उल्लेखनीय है :

"फुसलाई के बिटिश ले आलो आसाम
खुलालो चाय के बागान।"

अर्थात् इन्हें बहला-फुसलाकर ब्रिटिश सरकार द्वारा असम ले आया गया, चाय बागान में काम कराने और चाय व्यापार को अधिकाधिक बढ़ाने हेतु। इस तरह भारत के अलग-अलग प्रांतों से आए ये प्रवासी

मजदूर जन तमाम यातना सहते हुए अपनी मातृभूमि को लौट न सके और 'आसामेर माटी पानी, आसाम जन्मभूमि' (संगृहीत तथ्य, संवाददाता : कुर्मी नरेश्वर, मोलानपोखरी) को स्वीकार कर हमेशा के लिए असम के हो गए। वर्तमान में इन श्रमिकों की पाँचवीं-छठी पीढ़ी असम की 'चाय जनगोष्ठी' के रूप में अपनी पहचान बरकरार रखे हुए है। नाना प्रांतों के ये मजदूर एकजुट होकर आज असम में सम्मिश्रित संस्कृति के माध्यम से अपनी विशिष्टता को कायम रखने में सक्षम हैं। असम की कुल जनसंख्या के लगभग १७ या १८ फीसदी चाय जनगोष्ठी की आबादी है, जिसमें से कुछ श्रमिक बराक घाटी के अंचलों में बसे हुए हैं तो कुछ ब्रह्मपुत्र घाटी में। क्षेत्र सर्वेक्षण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चाय जनगोष्ठी की पाँचवीं या छठी पीढ़ी आज भी कमोबेश उसी प्रकार संघर्ष कर रही है, जैसे कि पहले करती थी। बराक घाटी के अंचलों, जैसे कछार, करीमगंज, हैलाकांदी में चाय जनगोष्ठी के विशेषकर पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार और वर्तमान झारखंड के आव्रजित श्रमिक बसे हुए हैं। शेष प्रांतों से आए मजदूर ब्रह्मपुत्र घाटी के अंचलों, जैसे तिनसुकिया, डिब्रूगढ़, शिवसागर, जोरहाट, गोलाघाट, शोणितपुर आदि के चाय बागानों में कार्यरत हैं। बराक घाटी की तुलना में ब्रह्मपुत्र घाटी का श्रमिक समाज अपने उत्थान, विकास, संस्कृति और आजीविका के प्रति अधिक सचेत है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि भौगोलिक दृष्टि से बराक घाटी की यातायात व्यवस्था और जीवन-शैली आदि अत्यंत कष्टप्रद है। इससे इतर भाषागत समस्याएँ तो हैं ही, जिससे ये आज भी संघर्षरत हैं। बजाय इसके स्वयं को 'नतुन असमिया' कहनेवाले चाय श्रमिक पीढ़ी-दर-पीढ़ी असम की भूमि के प्रति पूर्ण समर्पित हैं—

"साहाबे आने रहे कलगाड़ी में चापाइके
घर-बाड़ी छोरे अइली बागाने काम कोरते ले
सोना-रूपा पाते ले
साहाब गेल बिदेश चोली मोर धोनी
जाबो हमरा कहाँ रे घुरी?"

उपर्युक्त गीत की पंक्ति का आशय है कि ब्रिटिश सरकार इन्हें कोयले के इंजन से चलने वाली गाड़ी में ठूसकर असम ले आई बागान में काम करने हेतु। ये श्रमिक भी सोना-चाँदी पाने की आशा में अपना घर-परिवार छोड़कर असम आ गए। स्वाधीनता संग्राम के पश्चात् ब्रिटिश तो वापस अपने देश लौट गए, ये मजदूर रह गए असम में सदैव मजदूरी करने हेतु।

चाय जनगोष्ठी में भी पहले पुरुष श्रमिकों को ही लाया जा रहा था। दूसरे चरण में पुरुषों के साथ महिलाओं को लाया जाने लगा। इसके पीछे कई कारण थे। पुरुष समय-समय पर अपने घर जाने की माँग करते थे। जब उनके परिजन भी असम आ जाएँगे तो पुन: अपनी मातृभूमि को लौटने की माँग ही समाप्त हो जाएगी। घर की आर्थिक स्थिति में सहयोग करने हेतु ये महिला श्रमिक पुरुषों से भी आधे वेतन में मजदूरी करने के लिए राजी हो जाती थी। हालाँकि आज भी इन महिला श्रमिकों की स्थिति में बहुत ज्यादा परिवर्तन नहीं आया है। असम के 'आधुनिक दास' कहे जानेवाले चाहे महिला हो या पुरुष श्रमिक, दोनों ही बराबर शोषण की मार को झेलते हुए संघर्षरत हैं। इनका सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शारीरिक और मानसिक शोषण प्रारंभ से अभी तक चल रहा है।

निष्कर्ष

सम्मिश्रित संस्कृति के समन्वय को परिभाषित करनेवाले चाय जनगोष्ठी भारत के नाना प्रांतों के भिन्न आदिवासी समूह हैं। इन भिन्न संप्रदाय के लोगों को लाने के पीछे एकमात्र उद्देश्य था—शोषण। इन श्रमिकों में भाषायी तथा जातिगत भिन्नता होने के कारण इनमें आपसी संपर्क नहीं हो पाएगा और ये अपने साथ हो रहे शोषण और अन्याय के विरुद्ध आवाज नहीं उठा पाएँगे, ऐसी मानसिकता लेकर अंग्रेज अधिकारी श्रमिकों को अलग-अलग राज्यों से ला रहे थे। परंतु स्थिति इसके विपरीत हुई। इन श्रमिकों ने असम आकर न केवल एक-दूसरे को अपनाया, सुख-दु:ख के साथी बने, बल्कि एक समन्वित संस्कृति और संप्रेषण हेतु मिश्रित भाषा भी प्रचलित की। वर्तमान चाय जनगोष्ठी समाज लगभग सौ से अधिक जाति व जनजातीय लोगों का समूह है। इसमें कोल, मुंडा, उड़िया, तेलेंगा, माझी, संथाल, कोइरी, ग्वाला, माली, पाहारिया, परजा, गोंड़, कंध, बाइगा, खाड़िया, असूर, कोल, भील, सबर, करुवा, गराईत, भूमिज, घटवार, भक्ता, गंजू, बराइक, चिक्, काँव'र, बाउरी, खदाल, कुमहार, केंउट, कंधेर, कैरी, कँहार काँसरी, बाउरी आदि अनेक जनजातीय आदिवासी समुदाय एक साथ एक 'कॉमन आइडेंटिटी', यानी सामान्य पहचान को सूचित करते हैं।

चाय जनगोष्ठी में जो लोग शिक्षा की तरफ उन्मुख हुए, उनकी स्थिति में काफी कुछ सुधार आया है। ऐसे लोग संख्या में कम हैं, लेकिन अपने समाज के विकास और जागरूकता के लिए तत्पर हैं। तो वहीं दूसरी ओर वे श्रमिक जो निरक्षर हैं, उनमें अंधविश्वास अपने चरम पर है। यही कारण है कि चाय-श्रमिकों को असभ्य और मूर्ख समझा जाता है। भले ही अन्य सभी दिशाओं में चाय जनगोष्ठी पिछड़ी हुई है, संघर्षरत है, लेकिन इनका लोकसाहित्य, कला और संस्कृति अत्यंत समृद्ध है। चाय जनगोष्ठी समाज में प्रकृति के प्रति आत्मीय भाव है। अत: ये प्रकृति के मध्य ही अपना जीवन-यापन करते हैं तथा उसके रचाव-बचाव के लिए स्वयं को संरक्षक की भूमिका में देखते हैं। स्वयं घोर यातना, वंचना, दरिद्रता, और पिछड़ेपन को झेलते हुए भी असम की चाय जनगोष्ठी में जीवन के प्रति सकारात्मकता, अदम्य जिजीविषा और आनंद का भाव है। भाषायी और सांस्कृतिक विविधता के बावजूद आपसी सहअस्तित्व, समता, सामूहिकता, सहभागिता और सामंजस्य से असम में चाय जनगोष्ठी तमाम संघर्षों के बरक्स अपनी अस्मिता और संस्कृति को कायम किए हुए हैं। अन्य समुदाय के लोगों की तरह असम को अपनी जन्मभूमि, कर्मभूमि स्वीकार कर 'असमिया चाय जनगोष्ठी' असम राज्य तथा असम की संस्कृति का अविच्छिन्न अंग है।

शोधार्थी, हिंदी विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-२२१००५ (उ.प्र.)
दूरभाष : ८७२४९६९९१७

शरद ऋतु

● माणक तुलसीराम गौड़

फसलें अब पकने लगीं, और साथ में ख्वाब।
कठिन कर्म अनुरूप ही, कुदरत देत जवाब॥

पावन दिन नवरात में, पूजें माँ के पाँव।
पूजन भावों से करें, मिलती माँ की छाँव॥

रात भर जागरण करें, माँ का हो गुणगान।
माता के आशीष से, पूरे हों अरमान॥

भजन-डांडिया रात को, नृत्य करें नर-नार।
नन्हे पग थकते नहीं, माया अपरंपार॥

कौओं को पुकार रहे, छत पर चढ़कर लोग।
देखो इनके दिन फिरे, पाएँ पहले भोग॥

जिनके फसल ठीक हुई, हुए मुदित किसान।
लगे मानने वे सभी, प्रभु का फिर अहसान॥

तपन जलन बढ़ने लगी, जब से आया क्वार।
खेतों में पकने लगे, मोठ बाजरा ग्वार॥

सुनो क्वार में आ गया, ज्येष्ठ सरीखा ताप।
अंग-अंग जलने लगा, अरे! बाप रे बाप॥

ले अनाज घर आ गए, नाच रहे अरमान।
दिल में सपने पल रहे, मुख पर है मुसकान॥

कार्तिक-दीपावली

दिन में अब गरमी रहे, पड़े रात में ठंड।
जी मौसम का क्या कहें, हो गया यह उद्दंड॥

भोर नहाती नारियाँ, गाएँ मंगल गीत।
यह देश की परंपरा, यही देश की रीत॥

करवाचौथ मना रहीं, स्त्रियाँ रख उपवास।
लंबी वय की कामना, यह इनका विश्वास॥

मौसम बड़ा सुहावना, सम शीत और ताप।
इससे कुछ शिकवा नहीं, नहीं कोई प्रलाप॥

बच्चे बड़े प्रसन्न हैं, लिये पटाखे हाथ।
इनको तब ही फोड़ना, रहें बड़े जब साथ॥

साफ-सफाई सब रखें, देता है संदेश।
रोग-दोष व्यापे नहीं, स्वस्थ रहे परिवेश॥

लक्ष्मी पूजन सब करे, निर्धन अरु धनवान।
मुँह मीठा सब जन करें, घर-घर में पकवान॥

हर घर में ही हो रहा, लक्ष्मी का सत्कार।
पूजा अर्चन आरती, माँ की जय-जयकार॥

नई फसल उमंग नई, है नव लोकाचार।
माँ के आशीर्वाद से, भरे रहें भंडार॥

करते मंगलकामना, सुख बरसे चहुँओर।
तन-मन नित निरोग रहे, रह लें आत्मविभोर॥

झिलमिल कर दीपक जले, घी बाती ले संग।
हर मन में भरते सदा, हर दिन नई उमंग॥

लक्ष्मी मात पधारिए, ले गणेश को संग।
पूजा अर्चन हम करें, चाहे पता न ढंग॥

चाहत घर करने लगी, बाहर हो उजियार।
तब-तब ही मैंने किया, नित दीपक से प्यार॥

सुपरिचित साहित्यकार। साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लेखन। अब तक पैंतीस पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति बैंक कार्यपालक के पद से सेवा-निवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन।

मैं करता शुभकामना, जीवन हो सुखधाम।
दीवाली हर दिन रहे, क्या सुबह और शाम॥

दीप पर्व लाना सदा, सुख वैभव सम्मान।
भीतर का तम मेटकर, भरो वहाँ नित ज्ञान॥

दीपक इक लड़ता रहा, सारी-सारी रात।
जहाँ मनोबल नित रहे, तब बन पाती बात॥

दीपक से बाती कहे, मुझे न जाना भूल।
मुझसे ही है रोशनी, कर तू इसे कबूल॥

माँ लक्ष्मी पूरी करे, हम सबकी जो आस।
सबका दु:ख वह जानती, मन में हो विश्वास॥

दीपक नित हमसे कहे, जीओ सीना तान।
बिन प्रयास संसार में, कब होती पहचान॥

साअ

हाऊस-१२१, दूसरी मंजिल,
फेज १, मेन रोड
ग्रीनविष्टा ले आउट,
चिकबेलंदुर विलेज, करमेलाराम पोस्ट
बेंगलुरु-५६००३५ (कर्नाटक)
दूरभाष : ८७४२९ १६९५७

बस्तर : लोक-जीवन का पर्व—ककसाड़

• चुन्नीलाल

छत्तीसगढ़ सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध राज्य है। राज्य की स्थापना मध्य प्रदेश राज्य पुनर्गठन अधिनियम २००० के अंतर्गत १ नवंबर, २००० को हुई और यह देश का २६वाँ राज्य बना। वर्तमान स्थिति में छत्तीसगढ़ ५ संभागों और ३३ जिलों वाला धन-धान्य, प्राकृतिक संसाधनों और सांस्कृतिक विविधता से संपन्न राज्य है। यहाँ का सांस्कृतिक आयाम देश-प्रदेश स्तर पर महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वहीं छत्तीसगढ़ का बस्तर संभाग, जिसके तहत ७ जिले स्थापित हैं (कांकेर, कोंडागाँव, सुकमा, बस्तर, नारायणपुर, दंतेवाड़ा, बीजापुर) आदिवासी संस्कृति एवं देवी-देवताओं के प्रति आस्था की भूमि है। ये लोग पूरे साल अपने देवी-देवताओं को प्रसन्न रखने के लिए परंपरागत पर्व-उत्सव आयोजित करते रहते हैं। यहाँ के आदिवासी समुदाय ने अपने नृत्यगान एवं सांस्कृतिक वस्त्राभूषण द्वारा देश-प्रदेश स्तर पर अपनी विशेष पहचान बनाई है। छत्तीसगढ़ को देश के सांस्कृतिक पटल पर स्थापित करने में आदिवासी समुदाय एवं छत्तीसगढ़ की लोक-संस्कृति का विशेष योगदान है। वहीं छत्तीसगढ़ का बस्तर संभाग जनजातीय समाज की संस्कृतियों की धरोहर है। इस संभाग में जीवन-यापन करने वाली आदिवासी समुदाय लोक देवी-देवता एवं लोक-संस्कृति के पोषक हैं। यहाँ के निवासी अपने लोक देवी-देवताओं के प्रति अपार श्रद्धा एवं कृतज्ञता का भाव अभिव्यक्त करते हैं। इस तरह का भाव उनके कार्य एवं लोक-व्यवहार में दिखाई देता है।

जनजातीय समुदाय तीज-त्योहार, सभी तरह की पूजा-पद्धति, धार्मिक कार्य—सब अपने देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए करते हैं। साथ ही प्रकृति के प्रति आभार प्रकट करने के लिए करते हैं। इन लोगों का मानना है कि जब हमारे देवी-देवता प्रसन्न रहेंगे तो हमारा जीवन भी सुखमय व्यतीत होगा। शिवकुमार पांडेय के अनुसार—"उनका मानना है कि उनके लोक-देवता हर्ष, आनंद से देवगुड़ी (मंदिर) के आँगन में खेलेंगे तो सालभर गाँव का जीवन सुखमय होगा। इसलिए वह साल में कई अवसरों पर देवताओं की सामूहिक पूजा का आयोजन करते हैं, जिससे देवतागण प्रसन्न होकर आनंद से खेलें और उनका जीवन सुखमय हो।" इस तरह की सामूहिक पूजा-पद्धति का नाम 'ककसाड़' है। इस पर्व के माध्यम से जनजातीय समाज अपने इष्टदेव लिंगोपेन की पूजा करते हैं।

इस पर्व में मुख्य रूप से अच्छी फसल और गाँव के सुखमय जीवन के लिए 'गोत्रदेव' की पूजा-याचना की जाती है। यह पर्व विशेष रूप से 'गोत्रदेव पूजन' का पर्व है। इस पर्व में नृत्य समारोह का भी आयोजन

यू.जी.सी. द्वारा पंजीकृत पत्रिकाओं में लगभग एक दर्जन शोध-पत्र प्रकाशित। विभिन्न सेमिनार, संगोष्ठी, परिचर्चा में राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भागीदारी एवं सहभागिता। 'हिंदी प्रज्ञा सम्मान' दिल्ली, डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम रिसर्चर अवॉर्ड, भारत शिक्षा पुरस्कार, साहित्य मंथन शिक्षक शिरोमणि सम्मान।

होता है, जिसके संदर्भ में गीतेश कुमार अमरोहित लिखते हैं—"वैसे तो इस पर्व को अबूझमाड़ जनजाति ही मनाती है, लेकिन दोरला और माड़िया जनजाति के लोग भी इस त्योहार में शामिल रहते हैं। इस त्योहार को मनाने का प्रमुख ध्येय अच्छी फसल के लिए गोत्रदेव से मनौती माँगना है।"

ककसाड़ पर्व सामूहिक पूजा-पद्धति एवं देव-जातरा का पर्व है, जिसे 'देव उत्सव' भी कहा जाता है। ककसाड़ शब्द के पर्याय के संदर्भ में शिवकुमार पांडेय की अभिव्यक्ति है—"ककसाड़ या करसाड़ का अर्थ जनजाति समाज के लोगों के बताए अनुसार हिंदी में 'देव क्रीड़ा' से लगाया जा सकता है। उनके बताए अनुसार ककसाड़ का मतलब 'करसीहियाना' होता है। इस गोंड़ी शब्द का अर्थ हिंदी में देवताओं का खेलना होता है। पुरुष वर्ग ढोल बजाते हैं, महिलाएँ रिलो पाटा (रिलो गीत) गाती हैं और सिरहो के ऊपर देवता सवारी करके मंदिर के आँगन में खेलते हैं। गीत-संगीत प्रधान इस सामूहिक वार्षिक पूजा को ककसाड़ के नाम से पुकारते हैं। इस उत्सव का सामूहिक आयोजन होता है एवं सभी की समान भागीदारी होती है।" बस्तर का जनजातीय समाज लोक देवी-देवताओं के प्रति अपार श्रद्धा भाव प्रगट करता है। वे हमेशा से ही देवताओं के प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त करने के लिए अवसर की तलाश में रहते हैं।

प्रकृति से उपजे या श्रम से उत्पादित फसल को वे सर्वप्रथम अपने कुल देवता या देवी को अर्पित करते हैं। इसके पूर्व खाने या छूने की मनाही है। इस तरह की भावना सार को 'जोगानी' भी कहते हैं, जिसके संदर्भ में शिवकुमार पांडेय लिखते हैं—"जोगानी से अर्थ जाग्रत् करने से है। उसका मानना है कि प्रकृति से प्राप्त या श्रम से उपजाई फसल पर सबसे पहले देवताओं का अधिकार होता है, जिसे वह सबसे पहले अपने देवों को अर्पित करता है, फिर स्वयं ग्रहण करता है। इस प्रक्रिया को जोगानी करना कहते हैं। इसके पूर्व उस उपज को खाना या छूना भी वर्जित होता

है।" इस प्रकार से जनजातीय समाज सुखमय जीवन-यापन के लिए लोक देवी-देवताओं की पूजा प्रत्येक वर्ष एक नियत तिथि में करते हैं, जिसे 'जातरा' कहा जाता है। साथ ही ककसाड़ पर्व में देवगुड़ी (मंदिर) परिसर का भी अपना एक महत्त्व है। कहा जाता है कि जब देवगुड़ी परिसर में देवता खेलते हैं, अर्थात् प्रसन्न रहते हैं, तब गाँव में खुशहाली बनी रहती है—"बस्तर के जनजाति समाज का मानना है कि उसके लोक-देवता जब प्रसन्न होते हैं, तब वे अपने गुड़ी (मंदिर) के आँगन में हर्ष-उल्लास के साथ खेलते हैं। उनका खेलना इस बात का सूचक है कि देवता अपने भक्तों की सेवा से खुश हैं और अपनी खुशी को व्यक्त करने के लिए अपने आँगन में खेलते हैं। जनजाति समाज भी देवताओं के प्रसन्न होकर खेलने से यह अनुमान लगाता है कि आने वाले समय में उसका जीवन और उसके गाँव का जीवन सुखमय होगा।" एक तरह से देखें तो ककसाड़ केवल नृत्य विशेष न होकर पूजा-पद्धति है, जिसमें जनजाति समाज की आस्था जुड़ी हुई है, जिसे सामूहिक रूप से मनाया जाता है।

बस्तर में जनजातीय समुदाय परगना में बँटे हुए हैं। सभी के अपने छोटे-बड़े गोत्र देवता या कुलदेवता हैं, इन सबकी सामूहिक पूजा को ही ककसाड़ के नाम से अभिव्यक्त किया गया है—"ककसाड़ गोत्र देवताओं की सामूहिक पूजा है। बस्तर का जनजातीय समाज विभिन्न परगनाओं में निवास करता है और प्रत्येक परगना का एक मंडादेव (मुख्य देव) या गोत्रदेव होता है। इस देव के सगा अर्थात् पुत्रियों के पारिवारिक देव और सहोदर मतलब पुत्र परिवार के समस्त गोत्र देवताओं की सामूहिक पूजा का नाम ककसाड़ है। इस आयोजन में मंडादेव के सभी पारिवारिक देवताओं का मेल-मिलाप तो होता ही है, साथ में इन देवताओं को मानने वाले विभिन्न गोत्र के लोग भी आपस में मिलते हैं और अपने-अपने कुल देवताओं की पूजा कर कृतार्थ होते हैं।" साथ ही ककसाड़ पर्व एक बड़े स्तर का पर्व है। इसके आयोजन के लिए धन, अन्न और जन का सहयोग आवश्यक है।

पर्व आयोजन के पूर्व देवताओं को निमंत्रण दिया जाता है, साथ ही परगना के अंतर्गत इस गोत्र के जो लोग आसपास के गाँवों में बसे हुए हैं, उन तक सूचना पहुँचाई जाती है, जो सूचना या निमंत्रण देने जाते हैं, उन्हें 'पेन जोड़िंग' कहा जाता है। शिवकुमार पांडेय के अनुसार—"ककसाड़ की सूचना देने वाले दो-तीन व्यक्तियों के कई समूह बना दिए जाते हैं, जो देवता के प्रतीक लेकर परगना के गाँवों में जाते हैं। इसे पेन जोड़िंग कहा जाता है, जिसका अर्थ देवता का निमंत्रण होता है। पेन का अर्थ देवता और जोड़िंग का अर्थ बुलावा या निमंत्रण होता है। ये जोड़िंग के लोग देवता की तोड़ी (दुंदुभी जैसा वाद्य) या बैरक (झंडा) लेकर निकलते हैं। अलग-अलग दिशा के गाँव में अलग-अलग जोड़िंग दल निकलते हैं कि देव निमंत्रण है। कुछ गाँव में इनके दिन की और रात के खाने, सोने की व्यवस्था होती है।" इस पर्व में पेन जोड़िंग की भूमिका और योगदान महत्त्वपूर्ण है, ये मंडादेव (मुख्य देव) के विषम गोत्र के होते हैं, इसके द्वारा दी गई सूचना परगना के समस्त जन के लिए लागू होती है। पेन जोड़िंग सूचना देकर जब लौटते हैं तो उन्हें सीधे घर न जाकर मंडादेव के परिसर में ही खाना और विश्राम करना होता है।

इस पर्व के आयोजन के दिन दोपहर के बाद परगना से आए सभी लोगों को देवगुड़ी परिसर में ठहराव दिया जाता है। तत्पश्चात् आमंत्रित समस्त देवताओं की धूपबत्ती से पूजा की जाती है। सभी देवता प्रसन्न मन से आए हैं कि नहीं, इस बात की पुष्टि के लिए चूजे को चावल चबाने का रस्म अदायगी होती है—"इस समय सब देवता अपनी सब शक्तियों के साथ आए हैं या नहीं, इस बात की भी परीक्षा ली जाती है। सब देवों के सामने एक चूजे से चावल टोकाया जाता है, चूजे ने चावल खा लिया तो समझा जाता है कि देव सभी संसाधन के साथ अच्छी भावना के साथ आए हैं, वहीं चावल नहीं टोकने से माना जाता है कि देव प्रसन्न नहीं हैं, उन्हें उनके गांयता के माध्यम से प्रसन्न किया जाता है।" यह एक तरह से उत्साहित पर्व है, जिसे देखने के लिए आसपास के गाँव वाले बड़ी तादाद में आते हैं, लड़के-लड़कियों की टोलियाँ नृत्य करती हैं, पुरुष ढोल बजाते हुए नाचते हैं और महिलाएँ हाथ डाले गले में बाँह डाले रिलो नृत्य एवं गीत का प्रदर्शन करती हैं, जोकि देव अराधना का गीत है। उन गीतों के माध्यम से देवी-देवताओं के जस (यश) का बखान किया जाता है।

मधुरता के प्रसार के लिए बजने वाले विशेष वाद्य-यंत्र मादर की थाप से लोगों के ऊपर देवता सवार होते हैं—महिलाएँ कतारबद्ध होकर रिलो नृत्य करते हुए रिलो पाटा गाती हैं। यह गीत देव आराधना गीत है, जिसमें उन आगत लोक-देवताओं के जस का वर्णन होता है। इस समय यहाँ पर देव नगारा और मोहरी भी बजाया जाता है। ढोल बजने के साथ ही सिरहाओं के सिर देवता चढ़ता है और वे ढोल, नगाड़े की थाप में खेलने लगते हैं। यहाँ पर बताना आवश्यक है कि देवताओं का एक विशेष ताल होता है, जिसे कुशल नगांरची ही बजाता है, इसे 'देवपाड़' कहा जाता है। देवता अपने पाड़ में बड़े ही उमंग के साथ खेलते हैं। ऐसा लगता है, मानो सारे देवता पृथ्वी पर आकर खेल रहे हों, यही तो ककसाड़ मनाने का उद्देश्य भी है। यह क्रम देर रात तक जारी रहता है। देवताओं के खेलने के बाद कोकरेंण नृत्य होता है। कोकरेंण नृत्य एक तरह का देवगीत है, जो बस्तर संभागातंर्गत आने वाले नारायणपुर जिला में आयोजित होता है। इस नृत्य में एक विशेष वस्त्राभूषण के रूप में सफेद रंग की पोशाक पुरुष एवं महिला वर्ग के द्वारा पहनी जाती है। कमर में छोटी-बड़ी घंटी बाँधे रहते हैं और एक छोटा टँगिया रखे रहते हैं, साथ ही सिर पर जंगली पक्षी का पंख लगाए रहते हैं, उसी प्रकार महिलाएँ सफेद रंग की साड़ी घुटने तक पहने रहती हैं, बालों को गजरे से सजाए रहते हैं और हाथ में एक पतला सा डंडा पकड़े रहते हैं, जिसके ऊपरी हिस्से पर घुँघरू बँधे रहते हैं। दोनों समूह अलग-अलग कतार में रहते हैं, पुरुष आगे महिला उनके पीछे रहती हैं। दोनों समूह अपना-अपना घेरा बनाकर नृत्य का प्रदर्शन करते हैं और नृत्य का आलाप रिलो के साथ प्रारंभ होता है। पुरुषों के कमर में बँधी घंटी और महिलाओं के हाथों में घुँघरू वाली छड़ी की ध्वनि का समागम होता है, इससे जो ध्वनि विस्तारित होती है, उससे पूरा वातावरण लयबद्ध हो जाता है। यह नृत्य-गान रात भर चलता है। लोग बड़ी संख्या में इसका रस लेने उपस्थित रहते हैं। दूसरे पहर सुबह जो ककसाड़ पर्व का महत्त्वपूर्ण दिन होता है। नृत्यगान समाप्त होने के बाद मुख्य देवता के साथ आगत देवताओं की पूजा होती है और उन्हें गाँव में घुमाया जाता है तथा प्रत्येक घर के चौखट के सामने गोबर से लिपाई की जाती है, जिसे शुद्धीकरण माना जाता है।

देवता को गाँव के प्रत्येक घर ले जाया जाता है, साथ ही विधिवत् पूजर-संस्कार होता है, तत्पश्चात् सामूहिक भोजन का व्यवहार होता

है—"इस दिन गाँव के हर घर का आँको पहले से ही गोबर से लिपकर शुद्ध किया जाता है। अपने देवों के आगमन और स्वागत करने के लिए यथाशक्ति धूप, दीप, लाली, सुपारी, नारियल आदि से देवताओं की पूजा की जाती है और हल्दी-तेल का लेप करते हैं। यह पूजा गाँव के हर घर में की जाती है। इस दिन सभी लोगों के लिए सामूहिक भोजन बनाया जाता है।" भोजन के बाद दोपहर में पुन: रिलोपाटा नृत्य-गीत शुरू होता है। ढोल एवं देवनगाड़ा और मोहरी की धुन में पूरा वातावरण मन मुग्ध हो जाता है। लोग देवी-देवताओं को कंधे पर उठाकर नाचते हैं और देवता चढ़ते हैं। महिलाएँ देवताओं पर आस्था से शराब चढ़ाती हैं, शाम को विसर्जन का कार्यक्रम होता है—"दोपहर को एक बार फिर ढोल बजाया जाता है और महिलाएँ रिलो पाटा गाकर नृत्य करती हैं। एक-एक करके सभी देव सिरहाओं पर देवता चढ़ता है और सभी रिलो गीत और ढोल की ताल में खेलते हैं। देवताओं के विग्रह आंगा और देवियों के विग्रह डोली को युवक कंधे पर उठाकर खेलाते हैं। मोहरी और देवनगारा भी बजता रहता है, बहुत पवित्र और उल्लासमय वातावरण होता है। मंत्रमुग्ध होकर महिला-पुरुष अपने देवताओं को खेलते देखते हैं। बुजुर्ग महिलाएँ अपने साथ शराब लेकर आई होती हैं, जो इस समय अपने देवताओं को शराब का तर्पण करती हैं। यह तर्पण उनके देवों पर अपनी आस्था का प्रदर्शन है।"

तीन दिनों तक निरंतर ककसाड़ का यह पर्व चलता है। तीसरा दिन अंतिम रस्म देवताओं के ससम्मान विदाई का होता है, जिसमें पशु-बलि देने की प्रथा है। बलि दिए गए पशु के सर को मुख्य देवता को अर्पित कर बाकी का शरीर गाँव वालों को दे दिया जाता है, जिसे वे पकाकर खाते हैं, तत्पश्चात् पूजन समाप्ति के बाद सभी अपने घर की ओर प्रस्थान करते हैं। "यह देवताओं की बलि का दिन होता है। परगना के लोग अपने मंडादेव के सम्मान में पहले से निर्धारित बलि देते हैं, इसके बाद सब गाँवों से आए देवों को मानने वाले बलि देते हैं। वध्य पशु पूर्व से तय होता है। बलि पशु के सिर को मंडादेव को अर्पित करके धड़ को उस गाँव के लोगों को दिया जाता है, उसे वहीं बनाकर खाते हैं। दोपहर भोजन के बाद सब अपने देवताओं के साथ जाते हैं। दोपहर भोजन के बाद सब अपने देवताओं के साथ अपने गाँव की ओर प्रस्थान करते हैं।" ककसाड़ में देवताओं की वार्षिक पूजा होती है, जो प्रत्येक वर्ष आयोजित होती है, जिसे जातरा कहा जाता है, किंतु तीन-चार साल में एक बार आयोजित होने वाले पर्व को ही ककसाड़ कहा जाता है। शिवकुमार पांडेय के अनुसार, "मंडादेव का ककसाड़ होने के बाद अन्य देवताओं के जातरा का आयोजन किया जाता है। ककसाड़ देवताओं की वार्षिक पूजा है, जो हर वर्ष आयोजित होती है। सामान्यत: इन्हें जातरा कह दिया जाता है, मगर तीन साल और सात साल में होने वाली सामूहिक पूजा को ही ककसाड़ कहते हैं।"

सार शब्दों में कहें तो ककसाड़ बस्तर अंचल का स्थानीय पर्व है, जिसे आदिवासी कुटुंब मिल-जुलकर पूर्ण आस्था-विश्वास के साथ आयोजित करते हैं। इस पर्व में प्रमुख रूप से रिलो नृत्य-गान का प्रदर्शन होता है। महिला और पुरुष दोनों वर्ग समान रूप से भाग लेते हैं। आसपास के गाँव से बड़ी संख्या में लोग इस पर्व के प्रति आदिवासी समाज की आस्था को देखने के लिए उपस्थित होते हैं।

ग्राम-मौरीखुर्द, पोस्ट-भैसमुंडी,
तहसील-कुरुद,
जिला-धमतरी-४९३६६३ (छ.ग.)
दूरभाष : ९३०२१४८०५०

लघुकथा

बार्गेनिंग

• सेवा सदन प्रसाद

मुखर्जी साहब अपनी पत्नी एवं आठ वर्षीय बेटी का ड्रेस खरीदने निकले। दो-तीन दुकानों में देखने के बाद एक बहुत बड़े स्टोर में घुसे।

सेल्समैन ने मुसकराते हुए पूछा, "बोलिए सर, क्या चाहिए?"

मुखर्जी साहब ने कहा, "कल मेरी बेटी का 'बर्थडे' है, एक अच्छा सा ड्रेस निकालो।"

बर्थडे की खरीदी पर सेल्समैन पहले ही खुश हो गया और एक-से-एक ड्रेस दिखलाए, पर दाम सुनकर मिसेज मुखर्जी बिदक गईं। एक पिंक कलर का ड्रेस पसंद आया तो बार्गेनिंग करने लगीं, तभी सेल्समैन ने साफ-साफ कह दिया, "मैडम, यहाँ फिक्स रेट है, नो बार्गेनिंग।"

मैडम भड़ककर दुकान से बाहर निकल पड़ीं। पीछे-पीछे मुखर्जी साहब भी बेटी को घसीटते हुए चल पड़े।

मिसेज मुखर्जी तब फुटपाथ की दुकानों में ड्रेस देखने लगीं। कुछ पसंद नहीं आया, तभी सेल्समैन की मोबाइल की घंटी बजी और धीमे-धीमे गुजराती में कुछ बातें हुईं।

तब सेल्समैन ने कहा, "मैडम, आप थोड़ा रुकें तो गोडाउन से माल मँगवा लेता हूँ।" और अपने बंदे को भेज दिया।

चंद मिनटों में ही वह बंदा उसी स्टोर से कुछ ड्रेस लेकर आ गया। मिसेज मुखर्जी ने झट से वही पिंक वाली ड्रेस उठा ली और पूछा, "यह कितने का है?"

"मैडम, वैसे इसका प्राईस तो तीन हजार है, पर आपको ढाई हजार में दे दूँगा बस एक ही पीस बचा है।"

मिसेज मुखर्जी ने झट से ड्रेस ले ली। मुखर्जी साहब सिर्फ मुसकराकर रह गए। ढाई हजार तो स्टोर वाला भी बोला था, पर नो बार्गेनिंग।

६०१, महावीर दर्शन सोसायटी
प्लॉट नं. ११-सी,
सेक्टर-२० खारघर,
नवी मुंबई-४१०२१०
दूरभाष : ९६१९०२५०९४

करूँगा मैं भी खोज

• लाल देवेंद्र कुमार श्रीवास्तव

पिकनिक पर

बच्चे सब आए पिकनिक पर,
ताली खूब बजाए।
गाना गाकर, गीत सुनाकर,
सबका मन बहलाए।

घर से जो खाना लाए थे,
मिलकर हम सब खाए।
हवा चल रही ठंडी-ठंडी,
खूब पतंग उड़ाए।

सुंदर-सुंदर फूल खिले थे,
सबके मन को भाए।
चारों ओर छाई हरियाली,
देखकर जी हर्षाए।

फिक्र नहीं पढ़ने-लिखने की,
आजादी हम पाए।
शोर-शराबा व खेल-कूद,
खुश होकर बतियाए।

आया था आनंद बहुत ही,
नया ज्ञान भी पाए।
सीखी अच्छी बातें हमने,
साथी नए बनाए।।

मेरे दादू बहुत भले हैं

दादू मुझको रोज सुनाएँ,
अच्छी-अच्छी कविता।
चित्र दिखाएँ, लगते सुंदर,
पर्वत, झरने, सरिता।

गणित, विज्ञान और कई विषय,
दादू मुझे पढ़ाते।
इतिहास, भूगोल और कला,
अच्छे से समझाते।

दादू संग मैं नित शाम को,
पार्क टहला करता।
झट खरीद देते हैं दादू,
जो लेने को कहता।

सदाचार, संस्कार की बातें,
अकसर ही बतलाते।
राजा-रानी की कहानियाँ,
दादू मुझे सुनाते।

सुबह-सुबह वह जग जाते हैं,
नित्य टहलने जाते।
कभी जलेबी और दही को,
दादू लेकर आते।

विविध पेड़ हर साल लगाते,
करते हैं रखवाली।
कहते पेड़ों से जीवन है,
पेड़ों से खुशहाली।

मेरे दादू बहुत भले हैं,
वे बेहतर इनसान।
दुलार करें वह मेरा खूब,
मुझे उन पर अभिमान।

विज्ञान की खोजें

विज्ञान की खोजों से सबको,
मिली बहुत खुशहाली।
आसान हुआ सच में जीवन,
खोजें कई निराली।

हम ज्यों ही टी.वी. ऑन करें,
देखें कई प्रोग्राम।
कार्टून और फिल्म देखते,
जब न होता है काम।

गूगल से मिलता हमें ज्ञान,
विविध विषय बतलाए।
मोबाइल से पैसा भेजें,
दूजा झट पा जाए।।

वायुयान है उड़ता नभ में,
मशीन करे बहु काज।
टेलीपैथी से होते हैं,
अब रोगों के इलाज।

जब पड़ने लगती है गरमी,
चुए खूब पसीना।
पंखा-कूलर से हो राहत,
वरन् कठिन हो जीना।

एक बड़ा वैज्ञानिक बनकर,
करूँगा मैं भी खोज।
देश और समाज के हित में,
कार्य करूँगा रोज।

सुपरिचित लेखक। अब तक काव्य संकलन, बाल-कविताएँ एवं देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। 'कलमकार पुरस्कार', 'काव्य भागीरथ सम्मान', 'अभजना साहित्य सम्मान', 'अभिति साहित्य सम्मान' सहित कई सम्मान।

मुझको पढ़ना है विज्ञान

सदा मिले सत्य का ज्ञान।
मुझको पढ़ना है विज्ञान॥

कार जल्द सबको पहुँचाए,
बल्ब से घर रोशन हो जाए।
रोग सभी हों दवा से दूर,
ग्रह के सब रहस्य बताए।

गूगल लोग कहें महान।
मुझको पढ़ना है विज्ञान॥

जहाज मुझे सैर करवाए,
मोबाइल झट बात कराए।
टी.वी. से सब देखें पिक्चर,
नाना विषय मुझे सिखलाए।

जिज्ञासा का करें निदान।
मुझको पढ़ना है विज्ञान॥

धरा पर क्यों होते दिन-रात,
ऋतुओं की क्यों मिली सौगात,
सजीवों के क्या होते लक्षण,
सूरज की दूरी मुझको ज्ञात।

यंत्रों का हुआ संधान।
मुझको पढ़ना है विज्ञान॥

गरमी में सब फ्रिज चलाते,
एसी से ठंडक हम पाते।
विज्ञान ने दी कई सुविधाएँ,
ठंड में गीजर से नहाते।

शंका का हो समाधान।
मुझको पढ़ना है विज्ञान॥

सा
अ

मोहल्ला-बरगदवा (नई बस्ती),
निकट गीता पब्लिक स्कूल
पोस्ट-मड़वा नगर
(पुरानी बस्ती)
जिला-बस्ती-२७२००२ (उ.प्र.)
दूरभाष : ७३५५३०९४२८

खजाने की आय

● तरुण कुमार दाधीच

पात्र

विक्रम सिंह
चतुर सिंह
राम सिंह
सेवक

(मोहनगढ़ के राजा विक्रम सिंह अपने महामंत्री चतुर सिंह के साथ महल में बैठे गंभीर विषय पर बातचीत कर रहे हैं।)

(अंक-१)

दृश्य-१

विक्रम सिंह : *(गंभीर स्वर में)* चतुर सिंहजी! हमारे खजाने की आय दिनोदिन क्यों घटती जा रही है?

चतुर सिंह : *(सोचते हुए)* वही तो मैं भी सोच रहा हूँ महाराज कि पिछले कुछ महीनों से खजाने की आय बढ़ने की बजाय घटती जा रही है। राज-काज सब ठीक चल रहा है, फिर ऐसा क्यों हो रहा है। यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है।

विक्रम सिंह : *(शांत भाव से)* महामंत्री! आप पता लगाओ कि हमारे राज की आय क्यों घट रही है?

चतुर सिंह : *(हाथ जोड़कर)* जी महाराज, मैं इसका पता लगाने की पूरी कोशिश करता हूँ। आप चिंता न करें।

विक्रम सिंह : *(समझाते हुए)* यदि ऐसा ही चलता रहा तो एक दिन ऐसा आएगा कि हमारा खजाना ही खाली हो जाएगा। आप जाओ और इसका पता लगाओ।

चतुर सिंह : *(उठते हुए)* जी महाराज, मैं जल्दी ही इसका पता लगाकर आपको बताता हूँ। अब आज्ञा दीजिए।

विक्रम सिंह : *(शांत होते हुए)* हाँ जाइए, महामंत्रीजी।

(महामंत्री चतुर सिंह महाराजा को प्रणाम करते हैं और उठकर बाहर आ जाते हैं।)

सुपरिचित लेखक। अब तक एक खंडकाव्य, सात बालकथा-संग्रह, दो निबंध, एक आलोचना, दो नाटक-संग्रह, एक कविता-संग्रह तथा आकाशवाणी उदयपुर से विविध वार्त्ताएँ प्रसारित। पत्र-पत्रिकाओं में अनेक रचनाएँ प्रकाशित।

दृश्य-२

(कुछ दिन निकलने के बाद महामंत्री चतुर सिंह राजा विक्रम सिंह के महल में प्रवेश करते हैं। महाराजा के आसपास बैठे सभी लोग उठकर वहाँ से चले जाते हैं।)

चतुर सिंह : *(प्रणाम करते हुए)* खम्मा घणी हुकुम!

विक्रम सिंह : *(प्रसन्न भाव से)* खम्मा घणी महामंत्रीजी! क्या समाचार लाए हो?

चतुर सिंह : *(निराश भाव से)* चारों तरफ पता कर लिया, महाराज! सबकुछ सही चल रहा है। फिर खजाने की आय कम क्यों हो रही है?

विक्रम सिंह : *(क्रोधित होकर)* जब सबकुछ सही चल रहा है तो फिर खजाने की आय कम क्यों हो रही है?

चतुर सिंह : *(निवेदन करते हुए)* महाराज! हमें प्रजा पर कुछ कर लगा देने चाहिए। कर बढ़ाने से खजाने की आय बढ़ने लगेगी।

विक्रम सिंह : *(गंभीर स्वर में)* पर अभी बात तो खजाने की आय कम होने की हो रही है। कर बढ़ाने से क्या होगा?

चतुर सिंह : *(हाथ जोड़कर)* आप प्रजा पर थोड़ा कर बढ़ा दीजिए। फिर देखना, कैसे खजाने की आय बढ़ती है।

विक्रम सिंह : *(सोचते हुए)* ठीक है, अगर कर बढ़ाने से खजाने की आय बढ़ती है तो कुछ चीजों पर कर बढ़ा दीजिए।

चतुर सिंह : *(शांत भाव से)* जी महाराज, मैं जल्दी ही यह व्यवस्था करता हूँ। आप आज्ञा दीजिए।

विक्रम सिंह : *(उठते हुए)* मेरी आज्ञा है महामंत्री।

(महाराजा को प्रणाम करते हुए चतुर सिंह वहाँ से बाहर आ जाते हैं।)

(अंक-२)

दृश्य-१

(महल में महाराजा विक्रम सिंह अपनी महारानी के साथ बातचीत कर रहे हैं।)

(सेवक का प्रवेश)

सेवक : *(हाथ जोड़कर)* महाराज की जय हो! हुकुम, हमारे पुराने महामंत्री राम सिंहजी आपसे मिलने पधारे हैं।

विक्रम सिंह : *(प्रसन्न होकर)* हाँ-हाँ, उन्हें बहुत ही आदर और सम्मान के साथ यहाँ ले आओ।

सेवक : *(सिर झुकाए हुए)* जी महाराज।

(पुराने महामंत्री राम सिंहजी सेवक के साथ प्रवेश करते हैं।)

राम सिंह : *(अभिवादन करते हुए)* खम्मा घणी हुकुम।

विक्रम सिंह : *(हाथ जोड़कर उठते हुए)* खम्मा घणी राम सिंहजी। आज कैसे पधारना हुआ?

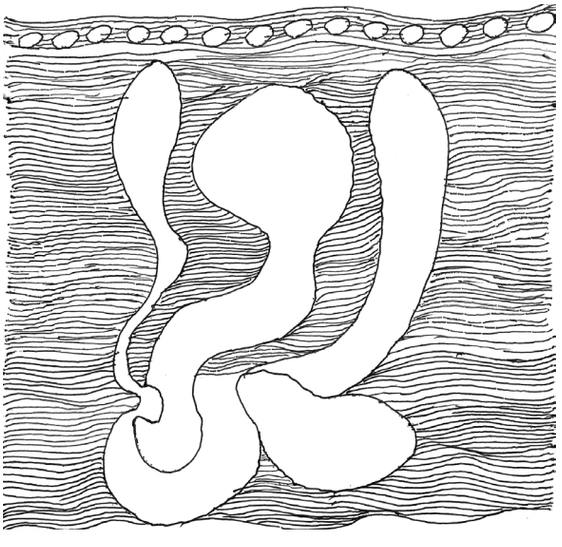

राम सिंह : *(झुककर)* आपके खजाने की आय पर बात करने हाजिर हुआ हूँ, महाराज।

विक्रम सिंह : *(शांत भाव से)* आप इस राज्य के पुराने और अनुभवी महामंत्री रहे हैं। आप ही बताइए कि खजाने की आय क्यों घट रही है?

राम सिंह : *(हँसते हुए)* कल बताऊँगा महाराज।

विक्रम सिंह : *(आश्चर्य से)* आज क्यों नहीं?

राम सिंह : *(शांत भाव से)* यह जगह उपयुक्त नहीं है।

विक्रम सिंह : *(उत्सुकता से)* तो कौन सी जगह उपयुक्त है?

राम सिंह : *(सहजता से)* कल सुबह दरबार में आप अपने सभी मंत्रियों को बुलवाइए। साथ में एक बर्फ का बड़ा टुकड़ा भी मँगवाना होगा। मैं कल सुबह दरबार में उपस्थित होता हूँ।

विक्रम सिंह : *(सोचते हुए)* ठीक है, राम सिंहजी, सुबह दरबार में मिलना होगा।

राम सिंह : *(हाथ जोड़कर)* अब आज्ञा दीजिए, महाराज।

विक्रम सिंह : *(राम सिंहजी को देखते हुए)* ठीक है, राम सिंहजी। कल मिलते हैं।

दृश्य-२

(राज दरबार में राजा विक्रम सिंह शांत भाव से बैठे हैं। उनके सामने घेरे में मंत्रिगण बैठे हैं। थोड़ी देर बाद राम सिंह का प्रवेश।)

विक्रम सिंह : *(मुसकराते हुए)* आइए, राम सिंहजी। आपका स्वागत है।

(सभी मंत्री उनके सम्मान में उठकर खड़े हो जाते हैं और राम सिंहजी अपने आसन पर बैठ जाते हैं।)

राम सिंह : *(शांत भाव से)* बर्फ का टुकड़ा मँगवाइए, महाराज।

विक्रम सिंह : *(आदेश देते हुए)* बर्फ का बड़ा टुकड़ा लाया जाए।

(एक सेवक थाल में बर्फ का बड़ा टुकड़ा लेकर आता है और राम सिंह के पास रख देता है।)

राम सिंह : *(सहज भाव से) महाराज की जय हो। मैं यह चाहता हूँ कि यह बर्फ का टुकड़ा हर एक मंत्री के हाथों से होता हुआ आप तक पहुँचे।*

विक्रम सिंह : *(आश्चर्य से)* इससे क्या होगा राम सिंहजी?

राम सिंह : *(गंभीर स्वर में)* अभी सब पता चल जाएगा महाराज।

(राम सिंहजी बर्फ का बड़ा टुकड़ा अपने पास बैठे मंत्री को देते हैं और उसे आगे-से-आगे देने को कहते हैं। आखिर में बर्फ का टुकड़ा राजा विक्रम सिंह तक पहुँचता है। विक्रम सिंह ध्यान से देख रहे हैं कि बर्फ का बड़ा टुकड़ा काफी छोटा हो गया है।

राम सिंह : *(समझाते हुए)* बस महाराज, हमारे दरबार के भ्रष्ट और बेईमान मंत्रियों के कारण जो खजाने की आय होनी चाहिए, वह बढ़ने के बजाय घटती जा रही है।

विक्रम सिंह : *(आवेश में)* ओह! अब समझा। इस बारे में तो मैंने कभी सोचा ही नहीं कि मेरे यहाँ ऐसे लोग भी हो सकते हैं। मैं आज ही इन बेईमान मंत्रियों को बर्खास्त करता हूँ। नए मंत्रियों को कार्य भार सौंपता हूँ।

(नए ईमानदार मंत्रियों ने ईमानदारी और निष्ठा से काम शुरू किया। कुछ ही दिनों में खजाने की आय बढ़ने लगी।)

(परदा गिरता है।)

साअ

३६, सर्वऋतु विलास, मेन रोड,
उदयपुर-३१३००१ (राज.)
दूरभाष : ९४१४१७७५७२

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' के अगस्त अंक में प्रकाशित नरेंद्र कुमार कुलमित्र का आलेख 'दुनिया के लिए जरूरी है जनजातीय संस्कृति' मुझे विशेष रूप से पसंद आया। इस आलेख से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित महापुरुषों की कहानियाँ, लेख, कविताएँ, पत्रकारिता के संदर्भ बहुत सामयिक हैं। शेष सामग्री भी पूर्ववत् रोचक और स्तरीय है। ऐसा संग्रहणीय अंक निकालने के लिए 'साहित्य अमृत' की पूरी टीम को बधाई।

—डॉ. ओम प्रकाश शर्मा, दिल्ली

मई से अगस्त तक के अंक देखे। अगस्त अंक का संपादकीय 'यों गूँजी राष्ट्रीय चेतना' महत्त्वपूर्ण और बोधगम्य है। निश्चय ही स्वाधीनता आंदोलन में जहाँ हजारों सत्याग्रहियों, क्रांतिकारियों, पत्रकारों का योगदान है, वहीं राष्ट्रीय चेतना को गाँव-गाँव, घर-घर पहुँचाने में कवियों और लोक कवियों का भी योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। सालों बाद आचार्य चतुरसेन शास्त्रीजी की 'सिंहवाहिनी' कथा पढ़ने को मिली। कर्तव्य की वेदी पर आत्मार्पण करती उद्युक्त नायिका आज की स्थिति में आदर्श है। अर्चना पैन्युली की कथा विदेशी धरती में विकसित-पनपती मानसिकता को उजागर करती है। 'हूबहू' कहानी गोलियाथ कुत्ते की कहानी हृदयद्रावक है। विज्ञान की प्रगति में नित्य नए होते प्रयोगों और खोजों की उपलब्धि को तो हम स्वीकारते हैं, पर उसके साथ ही लगाव, आत्मीयता, प्रेम, स्नेहभाव किस प्रकार से लुप्त होता जा रहा है, यह इस कहानी में व्यक्त है। दिवान सिंह 'दानु' शौर्य-सम्मान महावीर चक्र से सम्मानित कहानी इस अंक की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। कारण विर्थी गाँव के निवासी सूबेदार मेजर किशन सिंह वृथवाल जी ने गाँव में उनके नाम से स्कूल स्थापित कर उनकी स्मृति को अजरामर बना दिया है। 'स्वाधीनता संग्राम और वीर सावरकर' श्री अजीत कुमार पुरीजी का आलेख महत्त्वपूर्ण है। उसी प्रकार सुश्री मालती शर्मा का रक्षाबंधन पर लेख, ललित निबंध पपीहा चातक और बरसात लेख विशेष जानकारी प्रस्तुत करते हैं। मैं सभी उत्तम मौलिक पठनीय सामग्री परोसने के लिए मन:पूर्वक आपको धन्यवाद देती हूँ।

—डॉ. विद्या केशव चिटको, नाशिक (महाराष्ट्र)

'साहित्य अमृत' का अगस्त अंक का आवरण पृष्ठ विशेष आकर्षक, स्वतंत्रता संग्राम की जीवन-गाथा को जीवंत करता है। अधिकांश रचनाएँ स्वतंत्रता के वीर शहीदों के बलिदानों पर स्वतंत्रता की दर्द भरी दास्ताँ कहती हैं। आलेख 'स्वतंत्रता पूर्व हिंदी पत्रिकाएँ' में श्री राजेंद्र पटोरिया का अध्ययन, चिंतन एवं परिशोधन कार्य अत्यंत दुर्लभ ही नहीं, अपितु बहुत ही परिश्रमपूर्ण कार्य है। अमूल्य सामग्री प्रस्तुति के लिए पत्रिका मंडल के पदाधिकारियों एवं प्रबुद्ध रचनाकारों को स्वतंत्रता दिवस की हार्दिक बधाई।

—कुलभूषण सोनी, दिल्ली

'साहित्य अमृत' का आद्योपांत पठनीय सितंबर का शुभांक प्राप्त हुआ। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' आलेख जितनी बार पढ़ा, उतनी बार नई स्फूर्ति मिली। जननी-जन्मभूमि स्वर्ग से महान् है—यह हमारा रोजमर्रा का मंत्र होना चाहिए। नई पीढ़ी वरिष्ठ-जनों से ही नैतिकता के पाठ पढ़ती है, इसलिए प्रत्येक को अपने-अपने दायित्व का बोध हो और ईमानदारी से सब उसका निर्वहन करें।

—योगराज, खरड़ (पंजाब)

'साहित्य अमृत' का सितंबर अंक हिंदी को समर्पित रहा। हिंदी दिवस पर विजेताओं को खाली लिफाफे पुरस्कारस्वरूप देते हुए फोटो खिंचवाकर ऊपर भेजने वाला आइडिया कोई नया नहीं है, पर धूर्तता की अति है। प्रतिस्मृति में पंडित विद्यानिवास मिश्र का आलेख 'अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी की क्षमता' एक सामयिक प्रस्तुति है। डॉ. कुलदीप चंद्र अग्निहोत्री का आलेख 'उत्तरी अमेरिका के इंडियन' उपनिवेशवादी ताकतों की छद्म सभ्यता के कई पन्नों को उघाड़ने में सफल रहा। संतोष श्रीवास्तव की कहानी 'इक्कीसवाँ मिनट' अपनी बात पहुँचाने में सफल रही। साहित्य का विश्व परिपार्श्व के अंतर्गत छपी गाब्रियल गार्सीया मार्केस की पाँच स्पेनिश लघुकथाएँ सर्वाधिक पसंद आईं। अपने देश के लघुकथाकारों को इससे काफी कुछ सीखने की जरूरत है। अन्य कहानियाँ, कविताएँ, गजलें, नवगीत और आलेख भी बेहतरीन हैं, जिन्हें पढ़कर प्रतिक्रिया लिखने से खुद को रोक नहीं पाया।

—चित्रगुप्त, बहराइच (उ.प्र.)

आकर्षक मुखपृष्ठ के साथ 'साहित्य अमृत' का सितंबर अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय 'हिंदी की याद...' सारगर्भित है, हिंदी को समर्पित है। संतोष श्रीवास्तव की कहानी 'इक्कीसवाँ मिनट' रोचक है। प्रमोद कुमार अग्रवाल के आलेख 'वैदिक सनातन धर्म' में सनातन धर्म के गुणों को दरशाया गया है। यह आलेख हमें मानवता का दर्शन कराता है। रेनू सैनी की कहानी 'युवक, बेटा, पिता और वृद्ध' समाज का दर्पण है। ममता मेहता ने अपनी कहानी के माध्यम से बचत के महत्त्व को बड़े ही सरल ढंग से बताया है। इस अंक की अन्य कहानियाँ लघुकथा, कविता आदि रोचक, आनंददायी और ज्ञानवर्धक हैं। इस अंक में हिंदी दिवस को ध्यान में रखकर अनेक लेख प्रकाशित हैं, जो श्लाघनीय हैं। कुल मिलाकर यह अंक पठनीय है, संग्रहणीय है।

—अमित कुमार, हरिद्वार (उत्तराखंड)

'साहित्य अमृत' का अगस्त अंक कुछ विलंब से मिला। संपादकीय 'यों गूँजी राष्ट्रीय चेतना' को पढ़कर ज्ञात होता है कि कवियों और लोककवियों ने भी अपने कविताओं व लोकगीतों के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को ऊर्जा देने का काम किया। अर्चना पैन्यूली की कहानी 'मुझ पर एक टैग लग गया है' में भारतीय नारी की दयनीय स्थिति के साथ ही उसके अदम्य साहस को भी चित्रित किया गया है। इस कहानी में पति और ससुराल वालों द्वारा प्रताड़ित किए जाने के बाद भी तापसी अपने आत्मबल और काबिलीयत का परिचय देते हुए विदेशी धरती पर सफलता का परचम लहराती है। राजेंद्र पटोरिया का आलेख 'स्वतंत्रता पूर्व हिंदी पत्रिकाएँ' परतंत्र भारत में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं का संपूर्ण इतिहास-दर्शन है। प्रतिस्मृति में आचार्य चतुरसेन की कहानी 'सिंहवाहिनी' में नारी के हर रूप का चित्रण किया गया है। मालती शर्मा का आलेख रक्षाबंधन के महत्त्व और भारत की समृद्ध परंपरा का अभिलेख है। तारा मंगल की कहानी 'घर के दुश्मन' समाज की उन दुष्ट महिलाओं की कहानी है, जो नारी होने का दुरुपयोग करके निर्दोष व्यक्तियों को फँसाती हैं और उन्हें लूट लेती हैं। सत्य शुचि की कहानी 'विश्वास का रोका' दिल को छू लेने वाली है। अजीत कुमार पुरी का आलेख वीर सावरकर के प्रति श्रद्धा बढ़ाने वाला है। माँ भारती के ऐसे वीर सपूत को शत-शत नमन!

—राजेश तिवारी, लखनऊ (उ.प्र.)

वर्ग पहेली (२२२)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे थे; उनके देहावसान के उपरांत अब **श्री ब्रह्मानंद खिच्ची** इसे तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ अक्तूबर, २०२४ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें तीन सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते दिसंबर २०२४ के अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली**', **साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

बाएँ से दाएँ—

१. गांधीजी का जन्म मास (४)
३. किवाड़, दरवाजा (३)
५. छिपाने लायक, रक्षणीय (४)
६. भेंट, सौगात, नजराना (४)
७. ईर्ष्या के कारण होने वाला मानसिक कष्ट (३)
१०. घूस लेने वाला, बहुत खाने वाला (२)
११. रह-रहकर पीड़ा होना (३)
१२. हर्ष या भय के कारण शरीर के रोओं का खड़ा होना (३)
१३. लकड़ी या पत्थर पर निशान डालने की डोरी, कच्चा धागा (२)
१५. तरंग, लहर, पेंग; प्रेमी (३)
१८. प्रस्थान, जाने की क्रिया (४)
१९. कमल, सरसिज (४)
२१. बिना चर्खे के सूत कातने और लपेटने का एक आला छोटा तकला (३)
२२. साथ चलने या साथ रहने वाला (४)

ऊपर से नीचे—

१. बुद्धि, समझ (२)
२. हो पाना; संभव होना (मुहा.) (२, ३)
३. दासी (३)
४. पाजेब, नूपुर (३)
५. नेपाल का एक प्रदेश, एक जाति (३)
८. नभ में गमन करने वाला, पक्षी (४)
९. फटे-पुराने कपड़े पहनने वाला, अत्यंत तुच्छ (४)
१२. एक क्रांतिकारी जिसे काकोरी कांड में फाँसी की सजा हुई थी (३,२)
१४. बहने वाला पदार्थ, अस्थिर, चंचल (३)
१६. खाल का बना पानी भरने का थैला, मच्छर (३)
१७. जमाई हुई बर्फी, किसी वस्तु का पतला टुकड़ा (३)
२०. मन बहलाव के लिए किया जाने वाला भ्रमण (२)

वर्ग पहेली (२२१) का हल अगले अंक में।

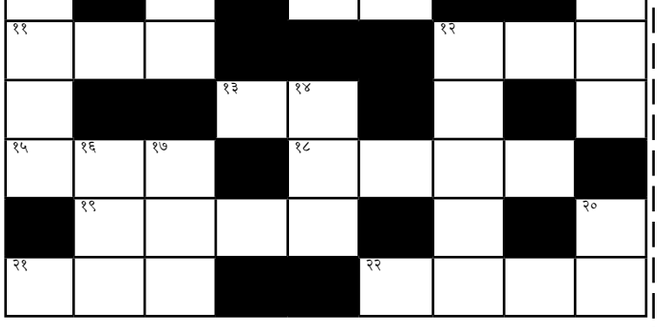

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

वर्ग पहेली (२२०) का शुद्ध हल

मि	थि	ला	■	उ	ग	ल	ना
त्र	■	प	र्या	व	र	ण	■	टा
ता	■	सी	■	रा	■	क	वि	■
दि	शा	■	चा	ह	त	■	रा	म
व	का	ल	त	■	नि	ष्का	स	न
स	हा	■	क	ल	का	■	त	ट
■	री	ता	■	ह	■	सौ	■	टो
खी	■	ज	ग	जा	हि	र	■	ल
रा	ष्ट्र	गी	त	■	■	भ	र	ना

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्रीमती उमा शर्मा**
डी-१५, देवी चिरंजीवी कॉलोनी
महेश नगर, जयपुर-३०२०१५ (राज.)
दूरभाष : ९८२९०६९८२७

२. **सुश्री काव्या टाँक**
पुत्री श्री सावन कुमार टाँक
डी.जी. खान स्कूल के पास
गली नं. १, श्याम नगर
पलवल-१२११०२ (हरि.)
दूरभाष : ८९५०२४०६६४

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली २२० के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री प्रह्लाद गोस्वामी (कोटा), बद्रीलाल व्यास (राजगढ़), माला श्रीवास्तव (ग्रेटर नोएडा), रेणु मिश्र (जयपुर), रुक्मणी संगल (पटियाला), सुनीता देवी (सिंगरौली), हरदेव सिंह धीमान् (शिमला), पूजा शर्मा (रायपुर), वाई.के. श्रीवास्तव (जबलपुर), प्रमीला पांड्या (फरीदाबाद), रामकिशन पंवार (हनुमानगढ़), ओम प्रकाश गोयल (शिवपुरी), प्रदीप कुमार यादव, मोनिका कपूर, दिनकर सहल, राजेंद्र कुमार (दिल्ली)।

व्याख्यानमाला संपन्न

१४ सितंबर को इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली के सभागार में 'दिव्यप्रेम सेवा मिशन' द्वारा कुंभ में आयोजित व्याख्यानमाला पर आधारित, श्री संजय चतुर्वेदी द्वारा संपादित और प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की शृंखला की तृतीय पुस्तक 'महाकुंभ : सनातन संस्कृति की अजस्र चेतना' का विमोचन हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल श्री शिवप्रताप शुक्ला, वरिष्ठ पत्रकार व इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष श्री रामबहादुर राय, सेवा मिशन के अध्यक्ष डॉ. आशीष गौतम एवं GNIOT के चेयरमैन श्री राजेश गुप्ता के करकमलों द्वारा संपन्न हुआ। इस अवसर पर अनेक साहित्यकार, समाजधर्मी और प्रबुद्धजन उपस्थित रहे।

□

पद्मभूषण भगवतीचरण वर्मा स्मृति समारोह संपन्न

विगत दिनों चेन्नई की हिंदी प्रचार सभा में भगवतीचरण वर्मा स्मृति संस्थान द्वारा स्मृति समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें प्रख्यात कथाकार डॉ. सूर्यबाला ने कहा कि भगवतीचरण वर्मा व्यावहारिक जीवन के मंत्रद्रष्टा थे। वे मानते थे कि विश्वास, अनुभव और प्रयोग के बिना लेखन अधूरा है। उन्हें समझौते कभी रास नहीं आए। बंबई विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय ने कहा कि जो साहित्य अपने समय का साक्षात्कार करते हुए नई दृष्टि नहीं देता, वह बुझ जाता है। कुलपति डॉ. पी. राधिका ने कहा कि वर्माजी उपदेशक नहीं थे। वे सामाजिक यथार्थ के साथ अंधविश्वासों पर चोट करनेवाले सशक्त कथाकार थे। मद्रास विश्वविद्यालय की हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. अन्नपूर्णा चिट्टी ने कहा कि वर्माजी ने संक्रांत जीवन को मूल्यपरक बनाया। वे भाग्यवादी नहीं, बल्कि कर्मनिष्ठ नियतिवादी दर्शन के रचनाकार थे। साहित्यकार श्री बी.एल. आच्छा ने कहा कि वर्माजी ने शास्त्र के बजाय अनुभव को केंद्रीय बनाया। डॉ. दीनानाथ सिंह ने उनके उपन्यासों की सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक चिंतन की पृष्ठभूमि को स्पष्ट किया। दक्षिण रेलवे के राजभाषा उपनिदेशक डॉ. सहदेव सिंह पूरती ने कहा कि उस काल की सभी समस्याओं का विमर्श उनके कथासाहित्य में असरदार है। इस अवसर पर 'भगवतीचरण वर्मा स्मृति व्यंग्य कथा-संग्रह' का विमोचन किया गया। संचालन सुश्री रोचिका शर्मा ने किया। द्वितीय सत्र में सर्वश्री मनोजकुमार सिंह, हर्षलता शाह, सुनीता जाजोदिया एवं खवासे ने शोधपत्रों का वाचन किया। सर्वश्री दिनेश छत्री, तेजस शर्मा और विनयश्री ने काव्यपाठ किया। सुश्री सीमा जौहरी ने आभार व्यक्त किया।

□

स्वतंत्रता सेनानी रामचंद्र नंदवाना स्मृति सम्मान घोषित

विगत दिनों चित्तौड़गढ़ में साहित्य संस्कृति के संस्थान 'संभावना' द्वारा आयोजित समारोह में प्रयागराज के प्रसिद्ध लेखक श्री प्रताप गोपेंद्र की कृति 'चंद्रशेखर आजाद : मिथक बनाम यथार्थ' को 'स्वतंत्रता सेनानी रामचंद्र नंदवाना स्मृति सम्मान' देने की घोषणा की गई। सम्मानस्वरूप लेखक को ग्यारह हजार रुपए की राशि, शॉल और प्रशस्ति-पत्र भेंट किया जाएगा।

□

काव्य-गोष्ठी संपन्न

५ सितंबर को शिक्षक दिवस पर श्रीमती अरुणा सिंह की अध्यक्षता में 'मंथन साहित्यिक परिवार' द्वारा आयोजित ऑनलाइन काव्य-गोष्ठी में मुख्य अतिथि श्रीमती जिया हिंदवाल, विशिष्ट अतिथि श्री रमेश माहेश्वरी तथा सर्वश्री संजय एम. तराणेकर, बच्चूलालजी दीक्षित, रामपंचभाई, टी. महादेव राव, राजकिशोर बाजपेयी, गिरीश पांडेय, एन.सी. खंडेलवाल, आशीष त्रिपाठी, रेखा राठौर, आशा झा, प्रतिभा पांडेय, प्रतिभा पुरोहित, गीता उनियाल, महेश गुप्ता, सुभाषचंद्र शर्मा, शिवदत्त शर्मा, कृष्णा जोशी, मनीष दवे ने काव्य पाठ किया। संचालन श्री मनीष दवे ने तथा आभार प्रो. राम पंचभाई यवतमाल ने व्यक्त किया।

□

अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन संपन्न

३ सितंबर को पंजाब में श्री सिद्धेश्वर प्रसाद की अध्यक्षता में स्वाभिमान साहित्यिक मंच द्वारा ऑनलाइन अखिल भारतीय कवि सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें सर्वश्री तेज नारायण, जसप्रीत कौर 'प्रीत', सोनिया आर्या, घनश्याम, जयप्रकाश अग्रवाल, भूपेंद्र देव सिंह, मृगनेंद्र कुमार श्रीवास्तव, बबिता जोशी, रविंद्र कुमार शर्मा, दिव्यांजली सोनी दिव्य, दास देविंदर महरम, सच्चिदानंद किरण, राजीव सक्सेना, हरि नारायण शायक, निर्मला कर्ण तथा सुधीर श्रीवास्तव ने काव्य पाठ किया। संचालन श्रीमती जागृति गौड़ ने किया तथा धन्यवाद श्री नरेश कुमार आष्टा ने ज्ञापित किया।

□

'उद्भ्रांत का रचनाकर्म' कृति लोकार्पित

विगत दिनों बर्रा के विकासिका इंटर कॉलेज में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था के तत्त्वावधान में चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ. लक्ष्मीकांत पांडेय की अध्यक्षता में दूरदर्शन के पूर्व उपमहानिदेशक श्री रमाकांत उद्भ्रांत पर केंद्रित श्री कैलाश बाजपेयी द्वारा संपादित पुस्तक 'उद्भ्रांत का रचनाकर्म' एवं पत्रिका 'समकालीन सांस्कृतिक प्रस्ताव' के नए अंक का लोकार्पण पूर्व विधायक श्री भूधर नारायण मिश्र के मुख्य आतिथ्य में संपन्न हुआ। श्री संजीव मिश्रा एवं डॉ. प्रमिला अवस्थी ने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. अरुण त्रिपाठी गोपाल ने किया तथा धन्यवाद श्री अशोक बाजपेयी ने ज्ञापित किया।

□

राष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न

विगत दिनों दिल्ली की हिंदी अकादमी और हिंदू महाविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में प्रतिबंधित हिंदी साहित्य पर राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गई। प्रथम सत्र में सर्वश्री सुरेंद्र शर्मा, संजय कुमार गर्ग, अंजू श्रीवास्तव, प्रदीप जैन, नरेंद्र शुक्ल, राकेश पांडेय, चंद्रपाल ने विचार व्यक्त किए। प्रो. संतोष भदौरिया की अध्यक्षता में आयोजित द्वितीय सत्र में सर्वश्री चमन लाल,

राजवंती मान, भैरव लाल दास ने विचार व्यक्त किए। धन्यवाद श्री ऋषि कुमार शर्मा ने ज्ञापित किया। प्रो. चमनलाल की अध्यक्षता में आयोजित तृतीय सत्र में प्रो. आशुतोष पांडेय एवं सुश्री ऋतु शर्मा ने तथा प्रो. सलिल मिश्रा की अध्यक्षता में आयोजित चतुर्थ सत्र में सर्वश्री गोपेश्वर, अमित मिश्रा, नितिन गोयल, निशांत कुमार ने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री राजमणि ने किया।

□

पुरस्कार समारोह संपन्न

१४ सितंबर को श्रीडूँगरगढ़ के संस्कृति भवन में प्रख्यात साहित्यकार श्री सूरज सिंह नेगी की अध्यक्षता में राष्ट्रभाषा हिंदी प्रचार समिति व जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित हिंदी दिवस समारोह में मुख्य अतिथि श्री ताराचंद सारस्वत, विशिष्ट अतिथि श्री बसंत हीरावत तथा सर्वश्री बृजरतन जोशी, प्रफुल्ल प्रभाकर, रिंकल शर्मा, श्याम महर्षि, रवि पुरोहित, सत्यदीप ने हिंदी भाषा के बढ़ते आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश को रेखांकित किया। इस अवसर पर श्री प्रफुल्ल प्रभाकर को सर्वोच्च मानद उपाधि 'मलाराम माली स्मृति साहित्यश्री', श्री प्रबोध कुमार गोविल को 'डॉ. नंदलाल महर्षि स्मृति हिंदी साहित्य सृजन पुरस्कार', सुश्री रिंकल शर्मा को 'शिवप्रसाद सिखवाल स्मृति महिला लेखन पुरस्कार', डॉ. नरेश गोयल को 'रामकिशन उपाध्याय स्मृति समाजसेवा सम्मान', श्रीमती सुमन बाजपेयी को 'श्यामसुंदर नागला स्मृति बाल साहित्य पुरस्कार', श्री प्रभु झिंगरन को 'सुरेश कंचन ओझा लेखन पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

□

परिचर्चा एवं काव्य-गोष्ठी संपन्न

१ सितंबर को नई दिल्ली के प्रेस क्लब ऑफ इंडिया के बंगबंधु सभागार में सुप्रसिद्ध गजलकार श्री दुष्यंत कुमार की जन्म जयंती के अवसर पर समाजसेवी एवं हिंदीप्रेमी श्री विजय शंकर चतुर्वेदी की अध्यक्षता में हिंदी अकादमी एवं यमुना युवक केंद्र के संयुक्त तत्त्वावधान में परिचर्चा एवं काव्य-गोष्ठी का आयोजन प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जगमोहन सिंह राजपूत के मुख्य आतिथ्य में किया गया, जिसमें सर्वश्री शिवकुमार बिलगरामी, भारत भूषण, ओंकार त्रिपाठी, ऋषि कुमार शर्मा ने रचना पाठ किया। संचालन सुश्री दर्शनी प्रिय ने किया तथा धन्यवाद श्री विजय शंकर चतुर्वेदी ने ज्ञापित किया।

□

'एक थी शांता' कृति लोकार्पित

२० अगस्त को दिल्ली में भारतीय साहित्य-कला परिषद् के तत्त्वावधान में 'अभी तक क्राइम टाइम' साप्ताहिक समाचार-पत्र, शाहदरा के कार्यालय में यशस्वी संपादक श्री राजेंद्र गुप्त की अध्यक्षता में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. राहुल की सद्य:प्रकाशित ७५वीं काव्य-कृति 'एक थी शांता' का विमोचन संपन्न हुआ। श्री उमेश चौहान ने अपने विचार व्यक्त किए। डॉ. राहुल ने आभार व्यक्त किया।

□

ऑनलाइन साहित्य पाठशाला सह कार्यशाला संपन्न

१८ अगस्त को पटना में भारतीय युवा साहित्यकार परिषद् के तत्त्वावधान में व्हाट्सएप के अवसर पर साहित्य यात्रा के पेज पर वरिष्ठ कथाकार-संपादक श्री योगराज प्रभाकर की अध्यक्षता में आयोजित ऑनलाइन साहित्य पाठशाला सह कार्यशाला के ५२वें एपिसोड में पचास से अधिक युवा साहित्यकारों ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री सिद्धेश्वर ने किया।

□

संगोष्ठी आयोजित

३० अगस्त को नई दिल्ली के त्रिवेणी कला संगम के सभागार में श्री लीलाधर मंडलोई की अध्यक्षता में हिंदी अकादमी के तत्त्वावधान में कविराज श्री शैलेंद्र की जन्मशती के अवसर पर आयोजित संगोष्ठी में मुख्य अतिथि श्री मनोज शैलेंद्र तथा सर्वश्री राजीव श्रीवास्तव, इंद्रजीत सिंह, भावना बेदी, प्रदीप शर्मा, जया शर्मा ने अपने विचार व्यक्त किए। श्रीमती अमला शैलेंद्र मजूमदार ने अपने पिता से जुड़े प्रकरणों और संस्मरणों को वीडियो संदेश द्वारा प्रदर्शित किया। संचालन श्री ऋषि कुमार ने किया तथा धन्यवाद श्री संजय कुमार गर्ग ने ज्ञापित किया।

□

महादेवी वर्माजी की ३७वीं पुण्यतिथि संपन्न

११ सितंबर को दिल्ली के साहित्यकार संसद् भवन में महीयसी महादेवी वर्माजी की ३७वीं पुण्यतिथि पर विचार-गोष्ठी एवं कवि-सम्मेलन आयोजित किया गया। सर्वश्री रामकिशोर शर्मा, करुणेश और कृष्ण बिहारी पांडेय ने वक्तव्य दिए। इस अवसर पर सर्वश्री प्रमोद कुमार अग्रवाल, गिरिजाशंकर गिरीश तथा मृगेंद्र राय का साहित्यकार संसद् द्वारा सारस्वत सम्मान किया गया। डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल की पुस्तक 'एक आई.ए.एस. की आत्मकथा' तथा श्री करुणेश की दो पुस्तकों 'बरसे करुणा छलके सोम' एवं 'शब्दों के रुद्राक्ष' का विमोचन भी किया गया।

□

लोकार्पण कार्यक्रम संपन्न

१८ अगस्त को नई दिल्ली के प्रवासी भवन में शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास के राष्ट्रीय सचिव श्री अतुल कोठारी की अध्यक्षता में विश्व हिंदी सचिवालय, केंद्रीय हिंदी संस्थान, अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद्, वातायन यू.के., वैश्विक हिंदी परिवार तथा भारतीय भाषा संघ के संयुक्त तत्त्वावधान में हिंदी की वैश्विक वेबसाइट 'vaishvikhindi.com' का लोकार्पण विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस की महासचिव डॉ. माधुरी रामधारी के मुख्य आतिथ्य एवं वरिष्ठ साहित्यकार श्रीमती ममता कालिया के विशिष्ट आतिथ्य में किया गया। सर्वश्री श्याम परांडे, सच्चिदानंद जोशी, पदमेश गुप्त, इंदिरा वढेरा, जयशंकर यादव, रमेश पोखरियाल 'निशंक', जय वर्मा, वेद प्रकाश, मनीष पांडेय, शैलजा सक्सेना, राहुल देव, अनिल जोशी ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री बरुण कुमार ने किया तथा धन्यवाद श्रीमती सुनीता पाहूजा ने ज्ञापित किया।

□

हिंदी सप्ताह का उद्घाटन संपन्न

विगत दिनों दिल्ली के हिंदू महाविद्यालय में 'हिंदी : राजभाषा से राष्ट्रभाषा तक' विषय पर हिंदी सप्ताह मनाया गया, जिसमें सर्वश्री जगदीश्वर चतुर्वेदी, रामेश्वर राय, अभिनव कमार झा, महा ठाकोर, पल्लव एवं नौशाद ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्रीमती खुशी ने किया तथा धन्यवाद डॉ. नीलम सिंह ने ज्ञापित किया। □

लोकार्पण कार्यक्रम संपन्न

७ सितंबर को नोएडा स्थित मारवाह स्टुडियो के सभागार में पूर्व उच्चायुक्त डॉ. अमरेंद्र खटुआ की अध्यक्षता में इंटरनेशनल चैंबर ऑफ मीडिया एंड एंटरटेनमेंट इंडस्ट्री की एजूकेशन कमेटी के सहयोग से साहित्यिक संस्था उद्भव एवं डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन फोरम के संयुक्त तत्त्वावधान में 'शिक्षक दिवस' मनाया गया। इस अवसर पर सुप्रसिद्ध लेखक डॉ. अरुण प्रकाश ढौंडियाल की नवीनतम कृति 'हॉर्स ड्राइवर' का लोकार्पण पूर्व केंद्रीय शिक्षा मंत्री श्री रमेश पोखरियाल 'निशंक' के मुख्य आतिथ्य एवं सर्वश्री संदीप मारवाह, इंद्रजीत शर्मा, जगदीश चंद्र ढौंडियाल के विशिष्ट आतिथ्य में किया गया। 'संवाद से राष्ट्र निर्माण' शीर्षक के अंतर्गत श्री संदीप मारवाह को 'सांस्कृतिक राजदूत' तथा डॉ. अरुण प्रकाश ढौंडियाल को 'हिमालय के अप्रतिम आंचलिक कथाकार' स्मृति-चिह्न प्रदान कर सम्मानित किया गया। संचालन डॉ. विवेक गौतम ने किया। □

विमोचन संपन्न

१८ सितंबर को नई दिल्ली के डॉ. आंबेडकर अंतरराष्ट्रीय केंद्र में पद्मविभूषित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर रचित वेदों के हिंदी सुबोध भाष्य के विमोचन के अवसर पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक डॉ. मोहन भागवत ने कहा कि वेद भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान की निधि व अखिल ब्रह्मांड के मूल हैं। ऋषियों ने विश्व कल्याण के लिए वेदों की रचना की थी। वेद व भारत समानार्थी हैं। विश्व ज्ञानेंद्रियों तक रुक गया, जबकि हजारों वर्ष पहले ऋषियों ने ज्ञानेंद्रियों से आगे बढ़कर मनेंद्रिय से देखना शुरू किया। इसलिए हमने कहा सब एकाकार हैं। संपूर्ण दुनिया अपनी है, जबकि शेष विश्व में हिंसा, अलगाव है, पुण्य-पाप की लड़ाई है। यह भाष्य १० खंडों में विभक्त है, जिसमें लगभग ८००० पृष्ठ हैं। चारों वेदों का यह भाष्य १० वर्षों की कठिन साधना से गुजरात के वलसाड स्थित स्वाध्याय मंडल ने तैयार किया है। इस अवसर पर विश्व हिंदू परिषद् के राष्ट्रीय संरक्षक श्री दिनेश चंद्र व महामंडलेश्वर स्वामी बालकानंद गिरी ने अपने विचार रखे। देश के प्रमुख संत, शिक्षा, समाजसेवा व राजनीति से जुड़े लोग उपस्थित रहे। □

हिंदी लाओ, देश बचाओ समारोह संपन्न

१४-१५ सितंबर को हिंदी दिवस के अवसर पर नाथद्वारा में साहित्य मंडल संस्था का दो दिवसीय 'हिंदी लाओ, देश बचाओ' समारोह संपन्न हुआ। प्रथम दिन हिंदी की नगर परिक्रमा निकाली गई। 'हिंदी उपनिषद्-१' के अंतर्गत हिंदी की दिशा और दशा पर विद्वान् लेखकों ने अपने-अपने आलेख पढ़े। उसके बाद कई विद्वानों को 'साहित्य वाग्विभूति' की मानद उपाधि से अलंकृत किया गया। चार विद्वानों को 'हिंदी साहित्य शिरोमणि सम्मान' से सम्मानित किया गया। अगले सत्र में विभिन्न साहित्यकार 'हिंदी भाषाभूषण' की मानद उपाधि से विभूषित किए गए। सायंकाल में अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन देर रात तक चला, जिसमें दो दर्जन से अधिक कवियों ने कविता-पाठ किया। अगले दिन 'हिंदी उपनिषद्-२' के अंतर्गत हिंदी की वर्तमान स्थिति पर आलेख वाचन हुआ। अगले सत्र में 'पत्रकार-संपादक रत्न' की मानद उपाधि से देश के विभिन्न भागों से आए चार संपादकों को, 'चिकित्सा सेवा रत्न' की मानद उपाधि से दो चिकित्सकों को तथा 'हिंदी काव्य भूषण' की मानद उपाधि से छह कवियों को समादृत किया गया। दर्जन भर से अधिक साहित्यकारों को 'हिंदी साहित्य विभूषण', 'हिंदी काव्य विभूषण' एवं हिंदी साहित्य भूषण की मानद उपाधियों से सम्मानित किया गया। दो दर्जन से अधिक पुस्तकों का लोकार्पण हुआ। संचालन और धन्यवाद ज्ञापन साहित्य मंडल के प्रधानमंत्री श्री श्यामप्रकाश देवपुरा ने किया। □

राजभाषा हीरक जयंती एवं चतुर्थ अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन

१४ सितंबर को केंद्रीय गृह एवं सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह द्वारा दिल्ली स्थित भारत मंडपम में राजभाषा हीरक जयंती समारोह और चतुर्थ अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन का उद्घाटन किया गया। इस अवसर पर राज्यसभा के उपसभापति श्री हरिवंश, संसदीय राजभाषा समिति के उपाध्यक्ष श्री भर्तृहरि महताब, गृह राज्य मंत्री श्री नित्यानंद राय और श्री बंडी संजय कुमार मंच पर उनके साथ उपस्थित थे। स्वागत संबोधन में राजभाषा विभाग की सचिव सुश्री अंशुली आर्या ने कहा कि राजभाषा विभाग और यह आयोजन माननीय प्रधान मंत्रीजी के पाँच प्रण के दो संकल्पों से प्रेरित हैं, गुलामी की हर सोच से मुक्ति और विरासत पर गर्व। मंचासीन अतिथियों द्वारा राजभाषा विभाग की हीरक जयंती विशेषांक स्मारिका, हीरक जयंती स्मारक डाक टिकट और स्मारक सिक्के का लोकार्पण किया गया। केंद्रीय गृह एवं सहकारिता मंत्री ने कहा कि भारतीय भाषा अनुभाग राजभाषा विभाग का पूरक अनुभाग होगा। राजभाषा का प्रचार तब तक नहीं हो सकता जब तक अन्य भाषाओं से उसका संबंध नहीं बनेगा। भारतीय भाषा अनुभाग के माध्यम से हिंदी और अन्य भाषाओं के बीच का संबंध सुदृढ़ होगा यह समय की जरूरत भी है। आवश्यक है कि आजादी के ७५ साल बाद हम अपनी भाषाओं के बीच समन्वय स्थापित करें। इसलिए आज का दिन सभी भारतीय भाषाओं के संबंधों का दिन है, राजभाषा को संपर्क भाषा बनाने का दिन है। राज्यसभा के उपसभापति हरिवंशजी ने कहा कि भारतीय भाषा अनुभाग एक ऐतिहासिक पहल है। महात्मा गांधी ने कहा था कि हिंदी बड़ी बहन है बाकी भाषाएँ छोटी बहनें हैं, किंतु इनके समन्वय का काम २०१४ के बाद ही शुरू हुआ है। २०१४ के बाद दुनिया में हिंदी को नई पहचान मिली है। नीट परीक्षा अन्य भारतीय भाषाओं में होने लगी है। राजभाषा विभाग द्वारा किए गए प्रयास अद्भुत ढंग से भाषायी समन्वय को सामने लाएँगे। भाषा के माध्यम से एक बड़ा बदलाव हम देश में देख रहे हैं। □